लघुत्रयी की शैलीगत रूढ़ियों का समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
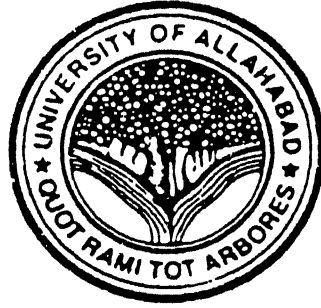
निर्देशक

पं० राज कुमार शुक्ल
भूतपूर्व उपाचार्य
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता

सिद्धार्थ पाण्डेय
एम.ए. (संस्कृत)
संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अप्रैल, 2002 ई०

विषय-सूची

पुरोवाक्

पुरोवाक्

सस्कृत साहित्य मे कालिदास उस विराट चेतना के सौन्दर्य का नाम है, जिसकी प्रभा से वसुधा का कण–कण सुन्दर प्रतीत होता है। कालिदास ने एक हिमालय को पृथ्वी के मापने वाले मानदण्ड माना है किन्तु उनकी प्रत्येक रचना वह हिमालय है जो सम्पूर्ण पृथ्वी के साहित्य को मापने वाला मापदण्ड है। इस महाकवि क काव्यसमुद्र का मथन तब तक चलता रहेगा जब तक इस पृथ्वी पर मानवी सृष्टि रहेगी।

सुरभारती सस्कृत भाषा के पावन मन्दिर मे प्रवेश दिलाने वाले मेरे परमपूज्य पितृ महाभाग श्री ज्ञानेन्द्र प्रकाश पाण्डेय एम ए. (संस्कृत) भूतपूर्व अपर जिला सहकारिता अधिकारी है, जिनके सस्कृत भाषा के प्रति अटूट अनुराग ने मुझे इस भाषा की सुखद छाया मे शरण लेने की प्रेरणा दी है। परास्नातक (सस्कृत साहित्य) मे उत्तीर्ण करने के पश्चात जब मैने गुरूवर प. राजकुमार शुक्ल से शोध कार्य करने की जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होने मुझे 'लघुत्रयी की शैलीगत रूढियो का समीक्षात्मक अध्ययन' कंरने का आदेश दिया। विषय की गम्भीरता ने मुझे एक क्षण विचलित कर दिया किन्तु उन्होने उत्साहवर्धन करते हुए कहा, ''क्लेश फलेन हि पुनर्ववर्ता' विधते।'

मेरे शोध निर्देशक प. राजकुमार शुक्ला भूतपूर्व उपाचार्य, संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की सत्प्रेरणा, स्नेहिल व्यवहार तथा आत्मीयता से पोषित हो मेरे शोध प्रबन्ध का नन्हा सा पौधा पुष्पित तथा पल्लवित हरित तरूवर का रूप धारण करने मे समर्थ हुआ है। मेरे कार्य के हर मोड पर उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग तथा समुचित मार्गदर्शन प्रदान किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनके शुभ आशीर्वचनो का ही परिणाम है। मै हृदय के अन्तस्तल से उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं शाब्दिक रूप से उनके प्रति

आभार प्रकट कर उनकी सद्भावना एव सहयोग की अवमानना करने की धृष्टता नही कर सकता। बस उनके सौजन्य रो मुझे आजीवन उनका ऋणी बना दिया है।

कालिदास के विषय मे मल्लिनाथ की यह वाणी—

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखौऽथवा साक्षाविदुर्नान्ये तु मादृशाः।।

रघुवश सजीवनी टीका

अक्षरस सत्य है। इसीलिये मेरा यह शोध कार्य कालिदास को पूर्णत कैसे समझ सकता है। यह शोध—प्रबन्ध कालिदास के चरणो मे समर्पित एक पुष्पमात्र है।

स्वर्गादपि गरीयसी ममताप्लावित वात्सल्यमयी पूजनीया जननी श्रीमती विमला पाण्डेय एव परमपूज्य पितृमहाभाग का कई जन्मो तक ऋणी रहूँगा जिनकी सतत प्रेरणा ने मुझे इस योग्य बनाया। इनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता नही कर सकता हूँ, जिन्होने गार्हस्थ्य के सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों से पूर्णत मुक्त रखकर मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान करने के लिये तन—मन—धन से सहयोग प्रदान किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में मेरे अनुज डा० सुधीर कुमार पाण्डेय (पशुधन प्रसार अधिकारी) का सहयोग किसी भी प्रकार विस्मृत नही किया जा सकता। ये केवल आशीर्वाद के पात्र है, ईश्वर इन्हें शिव की शक्ति, मीरा क़ी भक्ति, कर्ण का दान एव पाणिनि का ज्ञान प्रदान करे। इन्होने तन—मन—धन से सहायता किया, जिससे यह शोध प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हो सका।

मेरे शोध मार्ग में अनेक अवरोध प्रस्तुत हुए किन्तु उनके निवारण में प्रो. सुरेश चन्द्र पाण्डेय पूर्व विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद

विश्वविद्यालय, डा चन्द्रभूषण मिश्रा पूर्व आचार्य सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रो मृदुला त्रिपाठी विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति मै कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होने अपने अमूल्य समय मे से कुछ क्षण मुझे प्रदान कर मेरा मार्गदर्शन किया है।

मेरे परम मित्र डा राज कपूर पाण्डेय, श्री सजय पाण्डेय (खण्ड विकास अधिकारी), श्री जयसिह (प्रवक्ता, राजकीय महाविद्यालय) श्री धर्मराज मिश्रा (खाद्य निरीक्षक) डा० रामचन्द्र पाण्डेय, श्री देवी शरण त्रिपाठी एव गङ्गानाथ झा सस्कृत इस्टीट्यूट और इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियो एव अधिकारियो के प्रति कृतज्ञ हूँ , जिन्होने दुर्लभ ग्रन्थो को उपलब्ध कराकर मेरे शोध कार्य मे सहयोग दिया है अत इन सभी के प्रति मै आभार प्रकट करता हूँ। शोध प्रबन्ध को सुस्पष्ट ढग से एव अत्यल्प समय मे टङ्कित करने के लिए श्री विशाल वाजपेयी एव श्री रूपेश श्रीवास्तव धन्यवाद के पात्र है।

सस्कृत काव्य जगत के शिखरस्थ महाकवि कालिदास पर लिखने का उपक्रम मरे लिये दु स्साहस ही है तथा मैने यथामति उनकी कृतियो (रघुवश, कुमारसम्भव, मेघदूत) की समीक्षा करन की चेष्टा की है। आशा करता हूँ, कि सुधीजन मेरे त्रुटियो को क्षमा करेगे तथा अपने बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत करेगे।

दिनाङ्क २० अप्रैल २००२

सिद्धार्थ पाण्डेय

सिद्धार्थ पाण्डेय

भूमिका

मानव की अतृप्त वासना इसलिए प्यासी रहती है कि उसे पूर्ण सौन्दर्य के पान का रसास्वादन नही मिल पाता है। टुकडे—टुकडे मे विभक्त सौन्दर्य उसे थोडी ही तृप्ति मात्र देती है। उनकी कल्पना प्यासी ही रह जाती है। वह अतृप्त कल्पना की प्यास को दूर करने के लिए सृजनात्मक प्रक्रिया का आश्रय लेता है। इस प्रक्रिया मे उसे द्वैत का आशय लेना पडता है। इस द्वैतता की एकरूपता मे ही सर्जना जन्म लेती है। उसकी कोई भी सर्जना उसके समाधिस्थ मन मे होती है। पराकाष्ठा का प्राप्त समाधिस्थ मन से ही उत्कृष्ट सर्जना को सौन्दर्य प्रदान करता है। कलाकार की कला उसकी चेतना के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करता है। वस्तुत सौन्दर्य चेतना को अमरता प्रदान करता है। चेतना का वरदान तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति की अखण्ड तपस्या हो। साहित्य सङ्गीत और कला मे सौन्दर्य की अनुपम अनुभूति होती है। इसलिए रससिद्ध कवीश्वर अमरता को प्राप्त करते है। कवि की रचनाओं मे अद्भुत सौन्दर्य की अनुभूति होती है। यह सौन्दर्य क्या है, इसकी विवेचना भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यो ने अपनी प्रतिभा के अनुसार की है।

रसवादी भरतमुनि के मत मे रस ही काव्य का सौन्दर्य है। भामह ने काव्य सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिये अलङ्कार की विवेचना की। इनके मत मे अलङ्कार वस्तु के नैसर्गिक सौन्दर्य को उद्घाटित कर उसे लोक प्रत्यक्ष का विषय बना देते हैं। आचार्य दण्डी का कहना है कि काव्य शोभा को प्रस्तुत करने वाले धर्म अलङ्कार है। वामन ने तो अलङ्कार को सौन्दर्य मानकर सौन्दर्य को वस्तुगत स्वीकार किया है। गुण तथा अलङ्कारो

से युक्त शब्दार्थ मे सौन्दर्य रहता है। इन्होने गुणो के आधार पर रीतियो की विवेचना प्रस्तुत की है। उद्भट की दृष्टि मे नैसर्गिक गुण और कृतिम (अलङ्कार) दोनो समान रूप से कवि प्रतिभा से उद्भूत काव्य मे समवायवृति से रहते है। आनन्दवर्धन ने गुण को रसाश्रित मानकर एक नयी प्रक्रिया प्रारम्भ की जिसे बाद के आचार्यो ने भी स्वीकार किया। वामन आदि की रीतियो को इन्होने सघटना नाम दिया किन्तु दोनो की स्थिति मे अन्तर है। कुन्तक ने 'मार्ग' को कवि स्वभाव से उद्भूत मानकर मार्ग के सुकुमार मार्ग विचित्र आर मध्यम नाम दिया। मम्मट, कविराज विश्वनाथ, पण्डित राज जगन्नाथ आदि आचार्यो ने आनन्दवर्धन के सिद्धान्त—ध्वनिवाद को ही स्वीकार किया है। सम्पूर्ण काव्य एक अर्थ होता है, उसे अभिव्यक्त करने के लिये कवि शब्दो का चयन करता है। लोकभाषा और काव्य—भाषा मे पर्याप्त अन्तर होता है। काव्यभाषा के शब्दो मे जो अर्थ सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है वह लोकभाषा को स्वप्न मे भी प्राप्त नही हो सकता है। इसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये कवि, भिन्न—भिन्न शैलियो का आश्रय लेता है। पाश्चात्य विद्वानो ने शैली को विभिन्न रूपो मे परिभाषित किया है। इसकी विवेचना शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे की गयी है। शैली अभिव्यक्ति की प्रक्रिया है। कालिदास की रचनाओ मे तथा महाकवि हर्ष की रचनाओ मे शैलीगत पर्याप्त अन्तर है। कवि की शैली का उसका स्वभाव ही नही प्रभावित करती है वरन् देश काल और समाज की परिस्थितिया भी उसकी काव्यभाषा को एक नया रूप देती है। आचार्यो ने यह स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है कि काव्य सौन्दर्य वाच्य नही, वरन् व्यङ्ग्य हाता है। इस व्यङ्ग्यार्थ की सीमा नहीं होती है। जो जितना सहृदय होता है तथा जिसकी प्रतिभा जितनी निर्मल होती है उसकी अनुभूति की तीव्रता उतनी ही अधिक होती है। काव्य का अर्थ ही प्रधान होता है। सम्पूर्ण अर्थ को आचार्यो ने मुख्य रूप से रस, वस्तु, और अलङ्कार की सज्ञा दी है। इन अर्थो मे किसी एक की जब

प्रधानता तथा व्यङ्गता होती है तब उसे ध्वनि की सज्ञा प्राप्त हो जाती है। यह कवि को प्रतिभा पर निर्भर है कि अपने काव्य के अर्थ सौन्दर्य को किस रूप मे अभिव्यक्त करता है।

कालिदास मूलत सौन्दर्य के कवि है। इनका सौन्दर्य व्यङ्ग्य है। कालिदास का सौन्दर्य व्यापक तथा शाश्वत है। इनकी कल्पना मङ्गलमय सौन्दर्यात्मक भविष्य का निर्माण करती है। इनके प्रत्येक जडपात्र भी चेतन की भॉति आचरण करते है। उनकी दृष्टि मे सारा जगत शिव तत्व के चेतन सौन्दर्य से प्रतिभाषित है। शिव के अनुग्रह मात्र से धन्य पशु सिह भी मनुष्य की भाषा बोलता है, कोकिल भी बसन्त तथा चेतन का सन्देश देती है। तरू भी चेतन की भाति आचरण करते है। सरिता, समुद्र हिमालय सभी जड वस्तुए चेतनता की प्रतिमूर्ति है। इन वस्तुओ की चेतनता का दर्शन कालिदास की ही प्रतिभा कर सकती है। कालिदास की ही दिव्य प्रतिभा मेध से चिरकाल तक वार्ता कर सकती है और अपनी विरह वेदना बता सकती है। इनका तपोमूलक श्रृङ्गार शाश्वत सौन्दर्य की प्राप्ति का प्रमुख सोपान है।

इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे कविकलगुरू कालिदास के जीवन—चरित के विषय मे विस्तृत विवेचना की गयी है। महाकवि का आविर्भाव काल, जन्म स्थान तथा कृतियो आदि की विवेचना प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे पाश्चात्य और भारतीय आचार्यो के अनुसार शैली के स्वरूप की विस्तृत किन्तु सारगर्भित विवेचना की गयी है। शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे लघुत्रयी का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। कालिदास के काव्य केवल काव्यमात्र ही नही है, वरन् उनमे भारतीय सस्कृति, वैदिक सस्कृति, जीवन मूल्यो तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिक की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। जीवन का सत्य रूप का उद्भावन करना ही इनके काव्य की विशेषता है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय मे 'रूढि' शब्द का अर्थ तथा स्वरूप के विषय मे विवेचित किया है।

शोध प्रबन्ध के पञ्चम् अध्याय मे लघुत्रयी की शैलीगत रूढियो का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कवि के द्वारा प्रयुक्त एक शब्द भी वन्ध्‌ या नही है। इस अध्याय मे शैली की विशेषताओ का सूक्ष्म अध्ययन कर इनके काव्यो के अद्वितीय सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय मे कालिदास के काव्य सौन्दर्य की नयी समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। कालिदास के काव्य सौन्दर्य के विषय मे उन्ही की उक्ति को उद्‌धृत किया जा सकता है, जिसके माध्यम से उन्होने शकुन्तला के सौन्दर्य रचना की कल्पना की है।–

चित्रे निवेश्यपरिकल्पितसत्त्वयोगा

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।

स्त्रीरत्नसृष्टिपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या ।। अभि शा २/६
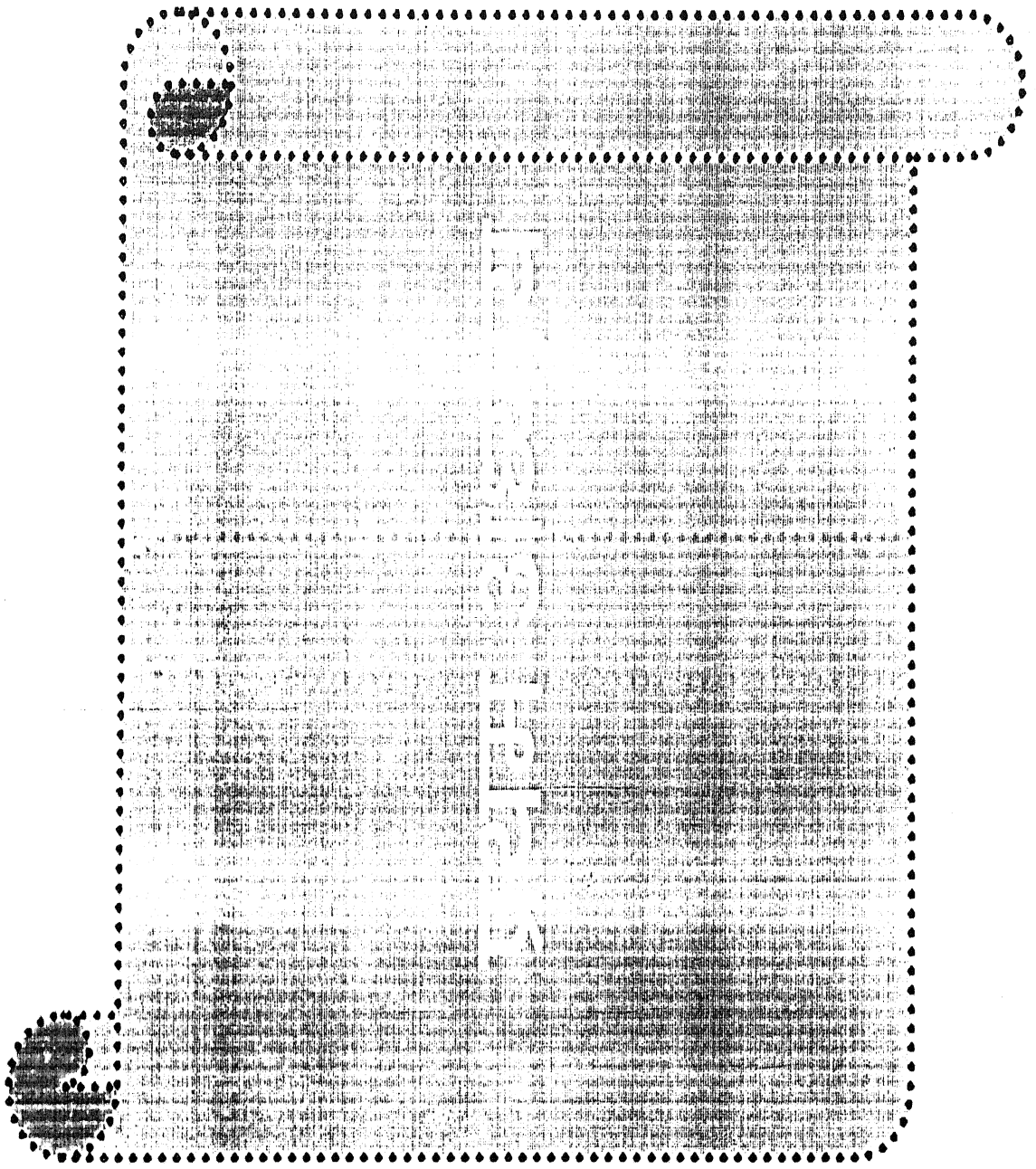
कवि परिचय

भारतीय सस्कृत वाङ्गमय का आदिश्रोत जिस सास्कृतिक आयाम मे विकसित हुआ, उसे इतिहासकारो ने आश्रम सस्कृति की सज्ञा दी। आर्थिक प्रगति की दृष्टि से वह कृषि युग था, जिसमे ग्रामीण सस्कृति विकसित हुई, तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से यह राजन्य युग था जो कुल सस्कृति का परिचायक है। वैदिक युग के धर्म साहित्य एव कला मे सादगी, उदात्तता एव आध्यात्मिकता परिव्याप्त है। अनेक स्थलो मे काव्यमयी उक्तिया बिखरी पडी है। किन्तु विशुद्ध काव्य के विकास के लिये अभी और भूमि प्रस्तुत नही हुई थी।

लौकिक सस्कृति साहित्य का जन्म भले ही तमसा के निर्जन आश्रम मे हुआ हो किन्तु उसका विकास सस्कृति के उस परिवेश मे हुआ, जिसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि एव हस्त कला युग, राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्राटो का युग, सामाजिक दृष्टिकोण से चतुर्वण्य व्यवस्था के विकास का युग एव आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विभिन्न दार्शनिक धाराओ के विकास का युग कह सकते है। सस्कृति की इस पृष्ठभूमि मे सस्कृत का जो साहित्य निर्मित हुआ—रामायण, महाभारत आदि प्रतीक है। यह साहित्य एक ओर सम्राटो के राजकीय वैभव में तथा दूसरी ओर आश्रमो की सादगी मे विकसित हुआ। वैदिक सस्कृत का यह ग्रामीण भाव सस्कृत जिस युग में लिखा गया, उसी समय से भारतीय सस्कृति का श्रेष्ठ उपलब्धियो का आरम्भ होने लगता है। इसीलिए यह कहने मे अत्युक्ति न होगी कि भारतीय सस्कृति मे जो सर्व श्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति सस्कृति साहित्य में हुई है और संस्कृत साहित्य में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति कवि शिरोमणि कालिदास में हुई है।

इतिहास की व्यापकता, भावो की उदात्त्ता, विशदता, गम्भीरता तथा शिल्पविधि का आचार्यत्व सभी दृष्टिकोण से कालिदास सस्कृत काव्य कला के सुमेरू माने जा सकते है। कालिदास को काव्य प्रणयन की प्रेरणा किन कवियो एवं किन काव्य पद्धतियों से मिली, इस सम्बन्ध मे निश्चय पूर्वक अधिक नही कहा जा सकता क्योंकि

कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणा श्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण–महाभारत मे निहित था। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्वकर्ता कहा जा सकता है। सास्कृतिक वातावरण, भाव, भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र मे कालिदास ने इन ग्रन्थो की प्रेरणा प्राप्त की। लघुत्रयी की शैलीगत रूढियो की समीक्षा करने के पूर्व महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त आविर्भावकाल, जन्मस्थान, व्यक्तित्व एव काव्य कृतियो पर प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

जीवन वृत्त

कवि शिरोमणि कालिदास के जीवन के सम्बन्ध मे भी प्रामाणिक रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। उनके वश माता–पिता, शिक्षा, गृार्हस्थ जीवन तथा आजीविका से सम्बन्धित सामग्री का अभाव है। भवभूति के समान उन्होने अपना परिचय किसी भी ग्रन्थ मे नही दिया है।

उनके जीवन के सम्बन्ध मे अनेक जनश्रुतिया प्रचलित है। कुछ साहित्य मे आते–आते नागरिक स्वरूप मे परिवर्तित हो गया। सस्कृत साहित्य लोग कवि के नाम का अर्थ लगाते है– काली का सेवक। यह अनुमान किया जाता है, कि सम्भवत यह नाम भी साधारणतया अपने अर्थ से निरपेक्ष रूप मे कवि को उसके माता–पिता ने दिया हो। एक अन्य किवदन्ती के अनुसार कवि आरम्भ मे महामूर्ख पण्डित था, किन्तु बाद मे विदुषी पत्नी द्वारा प्रताडित होकर देवी की उपासना की और उसके प्रसाद से इनकी काव्य शक्ति स्वत उद्‌भूत हो गयी। देवी की उपासना करने के पश्चात वरदान प्राप्त कर लौटने के पश्चात कालिदास पत्नी से ''अनावृतकपाट द्वार देहि'' (दरवाजा खोलो) कहा। उत्तर मे पत्नी ने कहा "अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः" कालिदास पत्नी के इस वाक्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने उपर्युक्त वाक्य के तीन शब्दो को लेकर एक–एक से एक–एक काव्य की रचना कर डाली। अस्ति' से कुमार सम्भव (अस्त्युत्तरस्या दिशि. कु १/१) 'कश्चित् से मेघदूत (कश्चित् कान्ताविरह गुरूणा (मे. १/१) वाग् से रधुवंश (वागार्थाविव सम्पृक्तौ०, रघु १/१ इत्यादि तीन काव्यो की रचना की।

एक अन्य किवदन्ती इनका सम्बन्ध लङ्का के राजा कुमारदास से स्थापित करती है, और लङका मे किसी वेश्या के घर मे मृत्यु होना बताती है। तीसरी किवदन्ती के अनुसार इनकी मृत्यु धारा नगरी मे हुई। परन्तु सच तो यह है कि इन सभी अनुश्रुतियो मे कोई प्रामाणिकता प्रतीत नही होती क्योकि उनके जीवन के विषय मे अभी तक न कोई प्रमाण मिल सका है और न कोई वाह्य प्रमाण ही, अतएव निर्णय रूप मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

अविर्भाव काल

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष मे हुआ इस विषय मे कुछ कह सकना दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहॉ हुआ, कुछ पारिवारिक, सामाजिक एव राजनैतिक स्थितियो मे उनका जीवन यापन हुआ, किन सघर्षो, किन घात—प्रतिघातो ने उनके विचारो—भावनाओ के निर्माण मे योग दिया—इत्यादि प्रश्नो का उत्तर आज भी एक कठिन समस्यामूलक बना हुआ है। इसका सबसे बडा कारण यह है कि उन्होने किसी भी ग्रन्थ मे अपने विषय मे कुछ भी निर्देश नही दिया है।

उनके स्थितिकाल के विषय मे जितने आलोचक है, उतने ही मत, उतने ही विचार है। महाकवि के समय का आकलन ई का प्रथम शताब्दी से लेकर ११वी शताब्दी तक किया जाता है। अधिकाशत विद्वान उनका सम्बन्ध प्रथम शताब्दी के काल से जोडते है। किसी भी कवि का काल निर्धारण करने के लिये मुख्य रूप से दो साधन हुआ करते है—

(१) अन्तः साक्ष्य अर्थात कवि ने अपनी रचनाओ के विषय मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या लिखा है?

(२) वाह्य साक्ष्य अर्थात कवि के समकालीन तथा परवर्ती विद्वानो ने उसके विषय में क्या लिखा है। अन्तः साक्ष्य के आधार पर तो हम उनके विषय मे कुछ भी जानने मे असमर्थ है। हॉ, वाह्य साक्ष्य के आधार पर तो हम उनके विषय में कुछ सामग्री अवश्य उपलब्ध होती है, उसी के आधार पर किसी निर्णय पर पहॅचने का प्रयत्न करेगे।

कालिदास का काल निर्धारण करने से पूर्व उनकी पूर्व और अपर सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। पूर्व रीमा के लिये हमे उनके "मालविकाग्निमित्रम्" का अवलोकन करना होगा। इस कथानक शुड्.गवशीय राजा अग्निमित्र के जीवन से लिया गया है। यह अग्निमित्र सेनापति पुण्यमित्र का पुत्र था, जो १८४ ई०पू० मे राजा वृहद्रथ को मारकर गद्दी पर बैठा था।[1] अत कालिदास का समय इसके पूर्व नही हो सकता तथा मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना "प्रथितयशसा भाससौमिल्लकवि पुत्रादीन प्रवन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे कालिदासस्य कृतौ कथ बहुमान" मे भास, सौमिल्ल आदि का वर्णन किया है जिसका समय निश्चित रूप से ईसा पू० द्वितीय शताब्दी से पूर्व का है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मालविकाग्निमित्र की रचना करते समय कालिदास का काव्य जगत मे प्रवेश हुआ ही था। अत किसी भी स्थिति मे कालिदास को १५० ईसा पूर्व से पूर्व नही ले जा सकते।

अपर सीमा बाण रचित हर्षचरित्र की भूमिका से निर्धारित होती है। बाण ने "हर्षचरित" के प्रारम्भ मे कालिदास के नाम का उल्लेख इस प्रकार किया है।[2] वाणभट्ट कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के आश्रित कवि थे। जिसका समय इतिहासकारो[3] २—प्राचीन भारत का इतिहास डा रमाशकर त्रिपाठी पृष्ठ २२४ तथा २३५ ६०६ ई से ६४७ ई माना है अत· कालिदास को इसके बाद नही ले जाया जा सकता। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के ऐहोल नामक ग्राम मे उपलब्ध शिलालेख (६३४) ई मे रविकीर्ति ने स्वय को कालिदास और भारवि की कोटि का कवि माना है।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणो से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास १५० ई.पू से लेकर ६०० ई. के बीच कही हुए होगे। कालिदास इस बीच कब हुए, इस सम्बन्ध में चार मत अधिक प्रचलित है, उनका क्रमश विशद विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। वे चार मत निम्न प्रकार है—

---

१ Ancient India Dr. R.C. Majumdar Page-१२०.

२. येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्ति· ।।

३. प्राचीन भारत का इतिहास डा. रमाशंकर त्रिपाठी पृष्ठ २२४ तथा २३५

१ छठी शताब्दी ई का मत

२ गुप्त कालीन मत अथवा चतुर्थ शताब्दी ई सम्बन्धी मत

३ ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत

४ ईसा पूर्व प्रथम शती का मत

१ छठी शताब्दी का मत

इस मत के प्रबल समर्थक प्रो मैक्समूलर है। उनका यह मत काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त पर आधारित है जिसका प्रतिपादन उन्होने अपनी पुस्तक India-What It Can Teach us? मे किया है। उनका कथन है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक चार अथवा पॉच शताब्दियो मे शक और दूसरे विदेशियो के आक्रमण के फलस्वरूप सस्कृत साहित्य की प्रगति सर्वथा अवरूद्ध हो गयी थी फिर छठी शताब्दी मे जाकर सस्कृत साहित्य की प्रगति सर्वथा अवरूद्ध हो गयी थी फिर छठी शताब्दी मे जाकर सस्कृत का पुनर्जीवन हुआ। उसी पुनर्जीवन काल मे कालिदास का अविर्भाव हुआ। प्रो मैक्समूलर का यह मत फर्ग्यूसन के विक्रमादित्य सम्बन्धी मत पर आश्रित था। फर्ग्यूसन का मत है कि ५४४ ई मे विक्रमादित्य नामक सम्राट ने शको को परास्त किया और विजय के उपलक्ष्य मे विक्रमादित्य ने विक्रम सम्वत् प्रारम्भ किया, परन्तु उस सम्वत् को और अधिक महत्व देने के लिये ६०० वर्ष पूर्व की तिथि से अर्थात ईसा से पूर्व ५६–५७ वर्ष से प्रारम्भ किया। इसी विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नो मे से एक कालिदास भी थे। इस प्रकार मैक्समूलर के अनुसार कालिदास का समय ५४४ ई के आस–पास छठी शताब्दी मे था। यह मत पर्याप्त समय तक विद्वानो मे मान्य रहा। कालान्तर मे इतिहास से यह सिद्ध हो गया कि पश्चिमी भारत मे किसी भी विदेशी को भारत से बाहर नही निकाला गया क्योकि उनको गुप्त वशीय राजाओ ने १०० वर्ष पूर्व ही बाहर निकाल दिया था। साथ ही यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि छठी शताब्दी मे शको को नहीं, अपितु हूणो को पश्चिमी भारत से बाहर निकाला था। वो भी विक्रमादित्य ने नहीं, अपितु यशोवर्मन विष्णुधर्मन ने। इस प्रकार

फर्ग्यूसन के मत की प्रामाणिकता स्वत ही खण्डित हो जाती है। पुन डा फ्लीट द्वारा की गयी शिलालेखो की खोज से मैक्समूलर के काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त की आधारशिला ही समाप्त हो जाती है। इन शिलालेखो मे ४६२ ई का वत्सभट्टि का मन्दसौर का शिलालेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसने सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया है और अपने काव्य मे मेघदूत और ऋतुसहार का अनुकरण किया है। जैसा कि निम्न उद्धरणो से स्पष्ट है।[1]

यह प्रशस्ति ४४ श्लोको मे है जिसमे मन्दसौर का कवित्वपूर्ण वर्णन है। इसके अतिरिक्त २०० ई के लगभग लिखा हुआ रुद्रदामन का गिरनाथ पर्वत पर उट्टङिकत लेख शैली की प्राज्जलता के कारण गद्य काव्य का सा आनन्द देता है। रुद्रदामन की विद्वता के विषय मे लिखा है कि स्फुटलधुमधुर चित्रकान्त शब्द समोयोद्वारालकृत गद्य पद्य इत्यादि। इसी प्रकार इसी समय के लगभग लिखा हुआ प्राकृत भाषा मे श्री पुलुमायो का नासिक शिलालेख है।

इस प्रकार उपर्युक्त शिलालेखो मे मैक्समूलर का सिद्धान्त और इसका आधारभूत फर्ग्यूसन का सिद्धान्त दोनो ही खण्डित हो जाते है तथा इसके आधार पर कालिदास को छठी शताब्दी मे मानने का मत भी निरस्त हो जाता है। डा फ्लीट ने इस बात को भी सिद्ध किया है कि ५७ ई पू से प्रारम्भ होने वाला विक्रम सवत ५४४ ई मे स्थापित नही किया गया था, अपितु मालव सवत के नाम से यह लगभग १०० वर्ष पहले ही प्रचलित था, जो ८० ई मे विक्रम सवत के नाम से व्यवहृत किया जाने लगा।

इसके अतिरिक्त डा भाऊदाजी, प्रो कर्न तथा डा भण्डारकर आदि पुरातत्ववेत्ता भी कालिदास को छठी शताब्दी मे ही सिद्ध करते है। उनके अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की मेघदूत टीका के ऊपर निर्भर होकर इन विद्वानो ने कालिदास विक्रमादित्य की सभा मे नवरत्न थे, यह बात स्वीकार की है। प्रख्यात ज्योतिषी

---

१ चलत्पताकान्यबलासनाथान्त्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लता चित्रसिताभ्रूकटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र।। वत्सभट्टि/१०
विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सगीलाय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाग्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै उ मे/३

वराहमिहिर भी नवरत्नो मे से एक थे। ज्योतिषचार्य ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य के टीकाकार अमरराज लिखते है कि–

नवाडधिकपञ्चशतसख्यशाके (५०६) वराहमिहिराचार्यो दिवगत ।

इस उक्ति पर विश्वास करने पर वराहमिहिर की मृत्यु ५८६ खीटाब्दी मे माननी पडती है और चूकि कालिदास और ये दोनो ही नवरत्नो मे थे, तो कालिदास का समय भी छठी शताब्दी है यह बात भी सिद्ध हो जाती है।

आचार्य मल्लिनाथ ने मेघदूत के निम्न श्लोक की टीका मे निचुल और दिङ्गनाग पद मे श्लेष बताया है। उनकी मान्यता है कि इसमे कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी दिङ्गनाथ का और बन्धु निचुल का नाम ध्वनित है और इनका सम्बन्ध छठी शताब्दी है अत कालिदास का भी समय भी वही है।[1]

एक अन्य विद्वान प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त ने अपनी पुस्तक Ancient Indian Cronology मे मेघदूत के आषाढस्य प्रथमदिवसे (पू/२) यह पाठ मानकर तथा 'प्रत्यासन्ने नभसि' (पू/४) मासान् गमय चतुर (उ/५०) तथा 'शापान्तो मे भुजगशयनादुत्पिते शाङ्गपाणौ (उ/५०) आदि कथनो मे सामजस्य बैठाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि यक्ष ने चन्द्र आषाढ की एकादशी को मेघ देखा और अगले दिन से श्रावण प्रारम्भ था। एकादशी को समाप्त होने वाला आषाढ सौर मास होना चाहिए। कालिदास के समय इसी दिन दक्षिणायन और वर्षा ऋतु का आरम्भ होता था। हिसाब लगाने पर यह दिन २० जून सन् ५४१ ई बैठता है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने 'स्मृतिभिन्न मोहतमस (अभि शा ६१२२) आदि द्वारा प्रत्यक्ष खाग्रास चन्द्रग्रहण का वर्णन किया है जो उज्जयिनी मे ८ नवम्बर सन् ५४१ ई को रात्रि मे ८ बजकर ३६ मिनट पर प्रारम्भ होकर रात्रि मे १२ बजकर २० मिनट तक रहा। इस प्रकार कालिदास का समय छठी शताब्दी ई ठहरता है। प हर प्रसाद शास्त्री ने तो कालिदास को भारवि के बाद का सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा के वी पाठक भी इसी छठी शताब्दी ई के मत के ही मानने के पक्षधर है। प चन्द्रशेखर पाण्डेय ने प्रमाण और उद्धरणो के द्वारा इस मत का खण्डन किया है। अत छठी शताब्दी ई का मत पूर्णतया सदोष है।

१– स्थनादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुख ख
दिङ्गनागानां पथि परिहरनस्थूलहस्तावलेपान्।। पू मे/१४

२. चतुर्थ शताब्दी का मत

कालिदास चतुर्थ शताब्दी मे हुए इस मत के प्रबल समर्थक डा भण्डारकर म म रामावतार शर्मा श्री विजय चन्द्र मजूमदार डा मिराशी आदि है। मैक्डोनल ने अपनी पुस्तक History of Sanskrit Literature मे कालिदास को गुप्त वशीय सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का समसामयिक माना है। डा स्मिथ ने अपनी पुस्तक "Early History of India" मे माना है कि कालिदास सम्भवत चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त तीनो सम्राटो की सभा मे रहा होगा। श्रीमती मैनमिग के अनुसार कालिदास ५०२ मे हुए थे। प्राय सभी पाश्चात्य विद्वान कालिदास को गुप्त कालीन मानते है और भारत वर्ष से बाहर यह मत सबसे अधिक प्रचलित है। इस मत के समर्थको का कथन है, कि गुप्तकाल ही ऐसा शान्तिपूर्ण स्वर्णकाल था जिसमे उत्कृष्ट काव्यो की रचना सम्भव है। कालिदास के रघुवश मे गुप्त साम्राज्य के स्वर्ण युग का ऑखो देखा वर्णन है। रघु की दिग्विजय के अवसर पर जिन देशो का वर्णन कालिदास ने अपने रघुवश मे किया है। उन्ही देशो को समुद्रगुप्त ने भी जीता था। रघुवश के तृतीय सर्ग मे वर्णित दिलीप का अश्वमेघ यज्ञ चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वमेध यज्ञ की ओर सकेत कर रहा है। विक्रमोर्वशीयम्' नाटक सम्भवत चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विक्रमादित्य उपाधि धारण करने के अवसर पर खेला गया होगा। "अनुत्सेक खलु विक्रमालङ्कार तथा 'महेन्द्रोपकार पर्याप्तने विक्रममहिम्ना वर्धतेभवान्' प्रथम अङक। "तनु प्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पे शशिनेव शर्वरी' रघु ३/२ इस प्रसिद्ध उपमा मे चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्पष्ट आभास मिलता है। इतिहासकारो ने इनका काल ३७६–४१३ ई माना है। इस मत के सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि कुमारसम्भव महाकाव्य की रचना सम्भवत चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य मे रखकर की गयी है, स्ववीर्यगुप्ता हि मनो प्रसूति' (रघु ३/४) "यथा प्रह्लादनाच्चन्द्र प्रतापात्तपनो यथा" (रघु ४/१२) आदि उद्धरण इस बात के सकेत है।

गुप्तकालीन अभिलेखो तथा सिक्को की भाषा और कालिदास के काव्यो की भाषा मे बहुत समानता है। गुप्त राजाओ के सिक्को पर निर्मित मयूर पृष्ठ पर बैठे

कार्तिकेय का वर्णन कालिदास ने अनेक बार किया है। महाकवि का यह पद 'मयूरापृष्ठाश्रयिणा गुहेन' उस स्थिति के कितने निकट है। कुमार तथा स्कन्द का प्रयोग भी कालिदास ने अधिकता से किया है। विक्रमोर्वशीयम् मे चार बार तथा रघुवश मे तीन बार कुमार शब्द का प्रयोग तथा स्कन्द का प्रयोग रघुवश मे दो बार तथा मेघदूत मे एक बार मिकलता है। गुप्त धातु का प्रयोग भी अनेक बार किया है। रघुवश १/५५, २/२४ ४/२० ४/२६ आदि) ये सभी सकेत उन्हे गुप्त कालीन सिद्ध करते है।

इसी मत का समर्थन करते हुए A B Keith ने अपनीपुस्तक A History of Sanskrit Literature' मे लिखा है कि 'कालिदास को गुप्त शक्ति के उत्कर्ष काल से पृथक करना कठिन है। वे अश्वघोष और नाटककार भास के परवर्ती थे। वे ग्रीक शब्दो से परिचित थे जैसा कि उनके जामित्र शब्द के प्रयोग से सिद्ध होता है। उनके नाटक की प्राकृत निश्चित रूप से अश्वघोष तथा भास की प्राकृत के वाद की है। हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जिसके साथ भारतीय परम्परा बराबर कालिदास का सम्बन्ध जोडती आयी है।

इन सभी तर्कों से स्पष्ट होता है, कि कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त या ाचवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुए थे।

उपर्युक्त मत का निराकरण इन बातो से हो जाता है, कि वत्सभट्टि की कविता पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। स्वर्ण युग की सम्भावना को लेकर भी यह कह सकते है कि गुप्त राजाओ के पूर्व सातवाहनो का शासनकाल भी स्वर्णयुग था। रघु की दिग्विजय की तुलना चन्द्रगुप्त की दिग्विजय से करना भी न्याय सगत नही है, क्योकि यह वर्णन पुराणो मे साम्य रखता है। शब्दो का प्रयोग व्यक्ति परक नही अपितु सज्ञावाचक एव क्रियावाचक है। इन सब तर्को के आधार पर स्पष्ट है कि कालिदास का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से नही था। विक्रमादित्य कि उपाधि किसी अन्य पूर्ववर्ती राजा के नाम से प्रचलित हुई, वही कालिदास का आश्रय राजा था।

३ ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत

ईसा पूर्व द्वितीय शती के मत के समर्थक डा कुम्हन राजा है। उन्होने अपने मत के समर्थन मे मालविकाग्निमित्र के भरत वाक्य को उद्धृत किया है। इसमे प्रयुक्त अग्निमित्र के नाम से डा कुम्हन ने यह अनुमान लगाया है कि कालिदास ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी मे हुए थे और शुगवशीय राजा अग्निमित्र की सभा को सुशोभित करते थे जिनकी राजधानी विदिशा थी किन्तु यह मत मान्य न हो सका क्योकि अग्निमित्र और विदिशा मे कोई सामजस्य नही बैठता।

४. ईसा पूर्व प्रथम शती का मत

ईसा पूर्व प्रथम शती के मत के प्रबल पोषक श्री सीवी वैद्य प्रो शारदा रजन राय, श्री शिवराम आप्टे, प्रो शेववणेकर, प्रो एमआर काले प्रो क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख है। उन्होने अपने मत के समर्थन मे कहा है— कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राज्य सभा मे कवि थे। इन्ही विक्रमादित्य ने आजकल प्रचलित विक्रम सम्वत् चलाया था, जिसका प्रवर्तन समय ई सा से ५७ वर्ष पूर्व मे पडता है। अत सिद्ध होता है कि कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे वर्तमान थे।" कालिदास को विक्रमादित्य के साथ जोडने का भी मुख्य कारण ज्योतिर्विदाभरण का श्लोक है।

इस परम्परा से मिले सकेत के आधार पर विद्वानो ने कालिदास का विक्रमोर्वशीय नाटक मे महेन्द्र और विक्रम शब्दो के कई बार प्रयोग मे कालिदास द्वारा कथासरित्सागर की कथा को राजा महेन्द्रादित्य और उसके पुत्र विक्रमादित्य को कालिदास का आश्रयदाता माना है। कालिदास और इन राजाओ का शैवमतावलम्बी होना भी इस मत को और अधिक पुष्ट करता है। श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १६१४ ई मे प्रकाशित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना मे सूत्रधार कहता है कि— "आर्ये इय हि रसभाव विशेषदीक्षागुरो विक्रमादित्य स्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्या हि कालिदासग्रथितवस्तुना नवेनाभिज्ञानशाकुन्तल नामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभि।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि नाटक की रचना विक्रमादित्य की राजसभा मे खेलने के लिये की गयी होगी—

कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट मे डा राजवली पाण्डेय ने अपने लेख मे लिखा है कि — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पण्डित केशव प्रसाद मिश्र के पास अभिज्ञानशाकुन्तलम् की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है जिससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के आश्रयदाता राजा का नाम विक्रमादित्य था तथा उसकी उपाधि साहसाङ्क थी।— सूत्रधार आर्येरसभावविशेषदीक्षागुरो विक्रमादित्य साहसाङ्कस्याभिरूपभूमिष्ठेय परिषत — विक्रमादित्य का उल्लेख गाथा सप्तशती के निम्न श्लोक मे भी मिलता है—

इससे यह स्पष्ट है कि गाथा सप्तशती के रचनाकाल मे यह बात स्पष्ट थी कि विक्रमादित्य एक प्रतापी एव उदार राजा थे, जिन्होने शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे सेवको को लाखो की भेट दी थी। गाथा सप्तशती महाराणी प्राकृत मे लिखी हुई है। एम स्मिथ ने हाल का समय ६८ ई माना है। अत विक्रमादित्य का समय इससे पूर्व ही मानना उचित होगा। अत उनका समय ईसा पूर्व प्रथम शती ही सिद्ध होता है।—

मेघदूत मे दशार्ण देश की राजधानी के रूप मे विदिशा का वर्णन आया है। जिसके विशेषण के रूप मे "प्रथित" शब्द का प्रयोग किया गया है— 'तेषा दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणा राजधानीम्' (पूर्वमेघ/२५) इसका अभिप्राय है कि उस समय राजधानी के रूप मे विदिशा दूर—दूर तक प्रसिद्ध थी। १४८ ई पू मे विदिशा अग्निमित्र की राजधानी थी। अग्निमित्र को छोडकर किसी भी राजा की राजधानी के रूप मे विदिशा का उल्लेख नही मिलता है ६६ ई पू मे शुङग वश का अन्त हो जाने पर विदिशा राजधानी कभी नहीं रही। मेघदूत मे राजधानी के रूप मे विदिशा का वर्णन कालिदास का इसी के आस—पास होने का सकेत करता है।

भारत के पुरातत्व विभाग की सर्वे सन् १६०६—१० की रिपोर्ट मे ४० वे पृष्ठ पर यह सूचना प्रकाशित हुई— The most ımportant work of research

carried out in १६०६-१० was undoubtly Mr Marshall's excavation in Bhita near Allahabad The beautiful tera cotta medallion faund by Mr Marshal reminds us of a scene from the Shakuntala In the two men on the guadrige in the centre of medallion, we may perhaps see king Dushyanta and his Chariotear who are being entrecited by a hermit not to kill the antelope which was taken refuse in Kanva's hermitage We note also the hermite's hut and infront of it a girl watering the trees in which may recognise Shakuntla heroin of the play The medallion which must belong to the Sunga period, is no doubt must anterior to Kalidasa and on that account the identification can not be reguarded as certain

इसका आशय यह है कि १६०६–१० मे श्री मार्शल द्वारा इलाहाबाद के निकट **"भीटा"** नामक स्थान से खुदाई मे एक मिट्टी का पदक प्राप्त हुआ जिस पर एक चार घोडो वाला रथ, उस पर बैठे हुए दो व्यक्ति जो दुष्यन्त और उसका सारथि है देख सकते है जिसमे एक साधु ऋषि कण्व के आश्रम के पालतू मृग को न मारने के लिये प्रार्थना कर रहे है। उसी पदक मे एक ऋषि की कुटिया देखते है, जिसके सामने एक कन्या वृक्षो को सीच रही है। यह कन्या सम्भवत नाटक की नायिका शकुन्तला है। इसमे सन्देह नहीं है कि यह पदक शुड्ग काल (१८० ई पू से ७२ ई पू) का है।–

यह पदक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अड्क के वर्णन मे अत्यधिक मिलता है। पदक के उक्त विवरण से उक्त बात की प्रतीत होती है कि यह शुड्ग काल मे बनाया गया था जिसका समय ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध है अत इस समय से कालिदास का समय ई पू प्रथम शताब्दी मानने मे कोई सन्देह की आशका नही रही। कालिदास और अश्वघोष की रचनाओ की भाषा और भावो का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि अश्वघोष ने कालिदास का अनुसरण किया है। अश्वघोष का समय कनिष्क का समय (प्रथम शताब्दी) माना जाता है, अत कालिदास (जो कि अश्वघोष के पूर्ववती है) का समय ईसा पूर्व प्रथम

शताब्दी मानने मे कोई अनौचित्य दिखाई नही पडता।– प्रो आप्टे महोदय ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के दो अन्तरङ्ग प्रमाण उद्धृत कर कालिदास का समय निश्चित किया है– एक तो छठे अक मे नि सन्तान श्रेष्ठी धनदत्त की मृत्यु पर सूचना मिलती है– की मृत्यु पर सूचना मिलती है– समुद्रव्यवहारी सार्ववाहो धनमित्रे नाम नौव्यसने विपन्न । अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजा आदेश देता है– विचार्यता यदि काचिदापन्नसत्वा तस्य भार्यासु भवेत्।' इससे स्पष्ट पता चलता है कि कालिदास के समय मे विधवा पत्नी को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार नही था, किन्तु गर्भस्थ बालक माता–पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी था। धर्मशास्त्रकारो ने धीरे–धीरे विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया है। मनु आपस्तम्ब और वशिष्ठ विधवा स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार नही करते जबकि सर्वप्रथम बृहस्पति तथा आगे चलकर शख, याज्ञवल्क्य और लिखित आदि ने उसको उत्तराधिकारी स्वीकार किया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् का समय बृहस्पति से पूर्व तथा मनु और आपस्तम्व के वाद का स्वीकार कर सकते है। डा पी वी काणे ने वृहस्पति का समय ३०० ई पू से ५०० ई पू तथा मनु का समय २०० ई पू से १०० ई तक माना है। अत कालिदास को ५६ ई पू के आस–पास रखा जा सकता है। दूसरा प्रमाण अभिज्ञानशाकुन्तलम् के छठे अड्क मे चोरी के लिये दिया जाने वाला दण्ड। उससे पता चलता है कि बहुमूल्य आभूषण की चोरी करने के अपराध मे मृत्युदण्ड की व्यवस्था है। मनु से याज्ञवल्कय तक के स्तेय विषयक विधान पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि बहुमूल्य आभूषण की चोरी करने के अपराध मे मृत्युदण्ड की व्यवस्था है। मनु से याज्ञवल्क्य तक के स्तेय विषयक विधान पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि बहुमूल्य आभूषण को चुराने के अभियोग मे दिया जाने वाला मृत्युदण्ड अर्थदण्ड मे परिवर्तित हो गया। मनु (८/३२३) और आपस्तम्ब ने इस प्रकार के अपराध के लिये मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है जबकि बृहस्पति केवल अर्थदण्ड का विधान करते है। अत कालिदास का समय ५६ ई पू प्रथम शताब्दी निश्चित होता है।– कालिदास के समय के सम्बन्ध मे एक नवीन तथ्य प्रकाश मे आया है जिसका श्रेय डा एकान्त बिहारी को है। १८ अक्टूबर

१९६४ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान के अक मे इससे सम्बन्धित कुछ सामग्री प्रकाशित हुई। उज्जयिनी से कुछ दूरी पर भैरवगढ नामक स्थान से मिली हुई शिप्रा नदी की तटस्थ भूमियो मे गहरी खाइयॉ विद्यमान है। वर्षा के कारण मिट्टी के बह जाने से वहॉ दो शिलाखण्ड मिले। इन शिलाखण्डो पर कालिदास से सम्बन्धित कुछ लेख अकित है। इनका अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कालिदास अवन्ति देश मे उत्पन्न हुए थे और उनका समय शुडग राजा अग्निमित्र से लेकर विक्रमादित्य तक रहा होगा।' इन दोनो शिलालेखो मे से एक शिलालेख गद्य मे है जो त्रुटित है इसमे नो कुछ पढा जा सका है निम्न है।

प्रथम पक्ति— जयति व्योम ।

द्वितीय पक्ति— राजच्द्दी शीर्षाम्भ (मि) महोजा।

तृतीय पक्ति—श्रीमद्विक्रम शासिति शिप्रातरङ्गोज्जवले ।

तथा अन्त मे लिखा है कि— ६४ वत्सरे श्री हरिस्वामिनो आज्ञा ।

इस शिलालेख से केवल इतना ही आभास होता है कि यह शिलालेख महाराज विक्रम की आज्ञा से हरिस्वामी नामक किसी अधिकारी के आदेश से खुदवाया गया था।

दूसरे शिलालेख से कालिदास के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी मिलती है यह पद्य मे लिखा गया है यह शिलालेख निम्न है—

जयति कविमूर्धन्य कालिदासो द्विजोत्तम ।

अवन्तीप्रभव श्रीमान[1] गुणगौरवमण्डित ।।

पूजितश्चाग्निमित्रेण राज्ञा शुडगसुतेन च।

विदिशाया राजकुर्या मालवेन्द्रसुशोभिताम्।।

निवसन् कृतवान् काव्य नाटक च सुधीरयम्।

ऋतुसहारमारभ्य मेघदूत मनोरमम्।

नाटक चाग्निमित्रस्य रधुवशमत परम्।

शाकुन्तल सुललितमुर्वशीय तु वैक्रमम्।।

कुमारसम्भवकथा पद्यवद्धामरीरचत्।

ग्रन्थसप्तकस्रष्टायमरत्वमवाप्तवान्।।

विनयाद् वामन सोऽय महनीयतपोऽभवत्।

राज्ञा समादृत सख्य श्रेष्ठ स्वीकृतवानयम्।।

तत पर महाप्राज्ञो नीतिमान् समुदारघी ।

शासकोऽसौ महावीरो विक्रमोऽभूत् महीतले।।

भूभृता विक्रमार्केण पूजितश्च द्विजाग्रणी ।

अजरामरवन्मान्य कालिदास कलानिधि ।।

पृथिव्यामीदृश कोऽपि न भूतो न भविष्यति।

विद्यावैभवसम्पन्न कविसम्राट् रसेश्वर ।।

पञ्चाधिक नवत्यन्तमय काव्यकलाधर ।

रत्नालङ्काररुचिरैरर्चया मास भारतीम्।।

कृतसवत्सरस्यान्ते विक्रमारम्भत पुरा।

पञ्चत्वमगमच्छ्रीमान् महाकालस्य सन्निधौ।।

कार्तिकैकादशी शुक्ला रविवासरसयुक्ता।

कविकीर्तिमयी भूमौ कौमुदीव विराजते।।

उपयुर्क्त श्लोको का भाव यह है कि महाकवि कालिदास अवन्ती मे हुए तथा वहाँ विदिशा नाम की नगरी मे शुडग पुत्र अग्निमित्र द्वारा इनका सम्मान किया गया था। इन्होने ऋतुसहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, रघुवश अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा कुमारसम्भव– इन सात ग्रन्थो की रचना की। महाकवि ने अपने

जीवन का अन्तिम समय महाराज विक्रमार्क (विक्रमादित्य) के आश्रय मे व्यतीत किया था। कृत सवत के अन्त मे तथा विक्रम सवत के प्रारम्भ मे कार्तिक शुक्ला एकादशी रविवार के दिन ९५ वर्ष की आयु मे इनकी मृत्यु हुई।–

उपर्युक्त श्लोको से यह स्पष्ट है कि इनके जीवन का अन्तिम समय अवन्ती मे विक्रमादित्य के आश्रय मे बीता। इतिहासकारो ने शुड्गवशीय अग्निमित्र का समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी माना है। अत कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी माना जा सकता है।

उपर्युक्त सभी मतो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास का समय ईसा पूर्व ५६ वर्ष मानना अधिक उचित होगा।

जन्म स्थान

कवि के अविर्भाव काल के समान उनकी जन्मभूमि भी अन्धकारमय है। उनका अविर्भाव किस स्थान मे एव किस देश मे हुआ इसका प्रामाणिक उत्तर देना आज भी कठिन समस्या बनी हुई है क्योकि कवि की रचनाओ के अस्पष्ट अन्त साक्ष्यो के अतिरिक्त कोई भी अन्य ऐसे निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नही होते जिसके आधार पर इन समस्याओ का उचित समाधान प्रस्तुत किया जा सके।

महाकवि की रचनाओ के आधार पर उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध मे चार मत प्रसिद्ध है।

प्रथम मतानुसार उनका सम्बन्ध मगध देश से जोडा जाता है। रघुवश मे सुदक्षिणा को मागधी एव दिलीप को मागधीपति सम्बोधित किया गया है। सुमित्रा को भी मगध–राजकन्या कहा गया है। रघु–दिग्विजय मे मगधेश्वर की हार कवि उनके प्रति आदर भाव प्रदर्शित करता है। इन्दुमती स्वयम्बर मे भी मगधेश्वर को प्रथम स्थान दिया गया है। इस मत के समर्थक विद्वानो का विचार है कि कवि के समय मे और भी कई राजवश पुष्पित एव पल्लवित हो रहे थे, तब फिर क्यो उक्त दोनो महारानियो का सम्बन्ध मगध से ही जोडा गया तथा मगध के ही प्रति विशेष लोभ क्यो प्रकट

किया गया है। इस मत के विरोध मे विद्वानो का यह तर्क है सम्भवत राज्याश्रित होने के कारण कवि को कर्तव्यवश मगध के राजदरबार मे तथा अन्य स्थानो मे भी रहना पडा होगा अतएव कवि के हृदय मे वहा के प्रति असाधारण श्रद्धा तथा भक्ति उत्पन्न हो गयी होगी जिसे उसने अपने काव्य मे प्रकट किया। परन्तु इसके आधार पर उन्हे मगध–निवासी कदापि नही स्वीकारा जा सकता है।

अपने ग्रन्थ The Bırth Place of Kalıdas मे दूसरा मत प्रो लक्ष्मीधर कल्ला का है। कालिदास को कश्मीर निवासी घोषित करते है। उनका कथन है कि "मेघ यक्ष का सन्देश लेकर उत्तर दिशा को जाता है और कश्मीर की स्थिति भी उत्तर मे है। कवि द्वारा वर्णित भौगोलिक स्थानो– कण्वाश्रम कश्यपाश्रम गङ्गा मालिनी, शमीतीर्थ, ब्रह्मसरादि सभी नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर मे ही स्थित है। कुछ सामाजिक रीति–रिवाजो व्यवहार विश्वासो जिनका वर्णन कवि ने किया है। वे आज भी कश्मीर मे प्रचलित है। उनके ग्रन्थो मे शैवधर्म के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है जो केवल कश्मीर की ही देन है। सूर्यपूजा केसर तथा धान की खेती के तथ्यपूर्ण वर्णन भी इस बात को प्रमाणित करते है कि कालिदास कश्मीर निवासी थे।

इसके उत्तर मे हम कह सकते है कि कवि कश्मीर निवासी नही है। कवि द्वारा कथित भौगोलिक स्थानो का आधार नीलमत पुराण न होकर महाभारत है। दूसरी बात, उक्त रीति–रिवाज केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं है तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन वाली उक्ति को प्रो कीथ स्वीकार नही करते।

तीसरामत है कि कुछ बङ्गाली विद्वान कालिदास को बङ्गाल निवासी मानते है। इसका सबसे बडा उदाहरण वे यह प्रस्तुत करते है कि उन्होने धान की खेती का वर्णन सुन्दर रूप मे किया है।

किन्तु यह बात न्यायोचित नही ठहरती, क्योकि कवि ने रघु की दिग्विजय के अवसर पर बङ्गाल की पराजय का वर्णन बड़ी निर्ममता से किया है। किसी भी व्यक्ति को अपनी जन्मभूमि के विषय मे कठोर बात कहना रूचिकर नहीं होती क्योकि मातृभूमि के प्रति व्यक्ति का प्रेम स्वाभाविक होता है।

चौथा मत उनके उज्जैन निवासी होने के पक्ष मे है। ऋतुसहार मे ऋतुओ प्राकृतिक प्राकृतिक दृश्यो तथा मानव जीवन का वर्णन मध्यभारत (मालवा प्रदेश) के जलवायु के अनुरूप हुआ है। यत्र–तत्र विन्ध्याचल का वर्णन स्पष्ट मिलता है। मेघदूत मे जिन ३१ नगर पर्वत नदी, दृश्य तथा मानव जीवन आदि का वर्णन मिलता है उनमे से १७ मध्य भारत से सम्बन्धित है। उज्जयिनी महाकवि के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री तथा स्मिथ इसी मत के समर्थक है।–

उपर्युक्त मतो का पर्यवेक्षण करते हुए यह कहा जा सकता है कि कालिदास के निवास का औचित्य उज्जयिनी के साथ है और मालवा से भी उनका सम्बन्ध रहा होगा। क्योकि कवि मेघ के अलकापुरी तक जाने के मार्ग का निर्देश करता हुआ कहता है– 'यद्यपि तुम्हारे मार्ग से उज्जयिनी का मार्ग टेढा अवश्य पडेगा फिर भी तुम उज्जयिनी होते हुए जाना'। इस कथन से ऐसा लगता है कि कवि को उज्जैन के प्रति विशेष आकर्षण था और उसने अपने जीवन का अधिकाश समय वहीं व्यतीत किया होगा। अत यह कहा जा सकता है कि सम्भवत कालिदास का जन्म उज्जैन या उज्जयिनी के प्रान्तरभाग मे हुआ होगा।

व्यक्तित्व

कालिदास के काव्य का मन्थन करने से यह अनुमान होता है कि उनके जीवन का अधिकाश भाग समाज के उच्च स्तरीय परिवार या राज्याश्रय मे व्यतीत हुआ था। अतएव वह तत्कालीन समाज के शिष्ट–व्यवहार, परिष्कृत भाषा तथा रीति तथा नीति मे सिद्धहस्त थे। सस्कृत तथा प्राकृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। रस–छन्द–अलकार के वह गूढ अध्येता एव पण्डित थे। उपमा का चरम लक्ष्य उनके काव्यो मे परिलक्षित होता है।

कालिदास जाति के ब्राह्मण एव परम् शिवभक्त थे। कवि हृदय की कोमल सवेदनाओ से युक्त होते हुए भी वे राजनीतिक कूटनीति के सम्यक ज्ञाता एव वाक्पटु विद्वान थे। प्रकृति एवं मानवीय भावनाओ के सूक्ष्म निरीक्षक थे। भौगोलिक ज्ञान के तो भण्डार ही थे। उनके काव्यो मे वैदिक, ब्राह्मण ग्रन्थो, उपनिषदो, सूत्रों, रामायण,

महाभारत पुराण, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रो साख्य न्याय, वैशेषिक इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थो तथा आयुर्वेद ज्योतिषि विद्या अर्थशास्त्र कामसूत्र नाट्य अलङ्कार व्याकरण शास्त्रो सगीत शास्त्र त्रिभाषादि कलाओ कोष छन्दशास्त्र तथा इतिहास का सूक्ष्म एव न्यायोचित परिचय मिलता है।—

कृतिया

सस्कृत साहित्याकाश मे, कवि शिरोमणि कालिदास के काव्यो का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। आफ्रेक्ट महोदय ने वृहद् सस्कृतग्रन्थ सूची मे कालिदास के नाम से अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया हैं। कालिदास ने ४१ ग्रन्थो की रचना की, ऐसा माना जाता है।[1]

कालिदास ने कितने ग्रन्थो की रचना की यह भी एक विवादित प्रश्न है। इस विवाद का कारण है सस्कृत साहित्याकाश मे एक से अधिक कालिदासो का होना। राजशेखर १०वी शताब्दी ई— तक कम से कम तीन कालिदास हो चुके थे—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किम्।।

परन्तु सभी विद्वान रस मत से सहमत नही है। जिस पर विद्वान एकमत है, ऐसी रचना तो केवल छ ही है— रघुवश, कुमार सम्भव, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा विक्रमोर्वशीयम्। सप्तम् रचना ऋतुसहार को कुछ विद्वान कालिदासकृत नही मानते। इसका कारण है कि उसकी शैली अन्य छ ग्रन्थो जैसी नही है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह कालिदास की प्रथम कृति है इसलिये उसकी भाषाशैली का स्तर उतना ऊचा न हो जितना अन्य कृतियो का। इस पर मल्लिनाथ की टीका भी

१— (१) रघुवश, (२) कुमारसम्भव, (३) मेघदूत, (४) विक्रमोर्दशीय, (५) मालविकाग्निमित्रम, (६) अभिज्ञानशाकुन्तलम, (७) ऋतुसहार, (८) कुन्तलेश्वरदौत्य, (६) अम्बास्तव, (१०) कालीस्तोत्र, (११) कल्याणस्तोत्र (१२) काव्यनाटकालङकार, (१३) , (१४) गगाष्टक, (१५) घटकर्पर, (१६) चर्चास्तव, (१७) चण्डिकादण्डकस्तोत्र (१८) ज्योतिर्विदाभरण, (१६) दुर्षटकाव्य, (२०) नलोदय (२१) नवरत्नमाला, (२२) पुण्यबाणविलास, (२३) मकरन्दस्तव, (२४) , (२५) मगलाष्टक, (२६) महपद्याष्टक, (२७) रत्नकोश, (२८) राक्षसकाव्य, (२६) लक्ष्मीस्तव, (३०) लघुस्तव, (३१) विद्वद्विनोदकाव्य, (३२) वृन्दावन काव्य, (३३) वैद्यमनोरमा, (३४) शुद्धिचन्द्रिका, (३२) वृन्दावन काव्य, (३३) वैद्यमनोरमा, (३४) शुद्धिचन्द्रिका, (३५) श्रृङ्गारसारकाव्य, (३८) श्यामलादण्डक, (३६) श्रुतबोध, सप्तश्लोकी, (४०) रामायण, (४१) सेतुबन्ध।

नही है। चाहे कारण जो भी हो परन्तु अत यह लगभग निश्चित है कि यह कालिदास की ही कृति है ऐसा डा मिराशी [1] डा कपिल देव द्विवेदी[2] आदि विद्वान भी मानते है इसके अतिरिक्त डा० मिराशी ने अपनी पुस्तक कालिदास मे रावण वध सेतुबध नामक महाकाव्य को कालिदास प्रणीत् माना है। इस काव्य की भाषा शैली प्रसाद गुण युक्त तथा सरल है किन्तु यह काव्य है विचार करने पर यह सिद्ध हो चुका है कि यह काव्य कालिदास प्रणीत न होकर प्रवरसेन द्वारा रचित है।

ऋतुसहार

कालिदास कृत काव्यो मे ऋतुसहार प्रारम्भिक ग्रन्थ माना जाता है। कई विद्वानो को सन्देह है कि कदाचित उक्त काव्य कालिदास द्वारा सर्जित नही है। क्योकि यह काव्य कालिदास के नैतिक गुणो से रहित है। भाषा शैली अत्यन्त साधारण होने के साथ साथ वैचित्र्य से रहित है। काव्य का वर्ण्यविषय स्वत बोधगम्य हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उच्चकोटि के टीकाकारो ने कालिदास के अन्य काव्यो की टीका तो की है, परन्तु उन्होने इसकी टीका नही प्रस्तुत की है। साहित्य शास्त्रियो ने भी इसकी एक भी पक्ति उद्घृत नही की। अतएव उनके लिये भी यह उपेक्षा का विषय रहा।

परन्तु पाश्चात्य विद्वान इसे कालिदास की कृति ही मानते है। उपर्युक्त आपत्तियो का उत्तर वे इस प्रकार देते है– टीकाकारो ने इसकी व्याख्या इसलिये नहीं की क्योकि यह महाकवि के अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा सरल एव बोधगम्य है, अतएव उन्होने इसकी टीका की आवश्यकता नहीं समझी साहित्यशास्त्रियो ने इसका उद्धरण इसलिये नहीं दिया क्योकि वे सरल ग्रन्थो से उद्धरण नहीं देते।

उपर्युक्त इन विभिन्न प्रकार के वैमत्यो मे कितनी वास्तविकता है कितनी नहीं– यह एक अलग विषय है, परन्तु इतना अवश्य है कि ऋतुसहार कालिदास की ही कृति है। हॉ यह कालिदास के आरम्भिक काव्य की रचना है। जिस प्रकार

---

१ कालिदास– डा मिराशी (पृष्ठ ६७)

२ अभिज्ञान शाकुन्तलम् की भूमिका (सम्पादक, डा कपिल देव द्विवेदी पृष्ठ १४)

युवावस्था और प्रौढावस्था मे बहुत अन्तर होता है इसी प्रकार ऋतुसहार एव उनकी अन्य रचनाओ मे शिल्प कलादि सभी त्रुटियो से महानान्तर है।

ऋतुसर्ग मे ६ सर्ग तथा १४४ पद्य है। प्रत्येक सर्ग मे १६ से २८ तक श्लोक सख्या है। इसमे षडऋतुओ– ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर तथा वसन्त इत्यादि का मनोहर वर्णन मिलता है। महाकाव्यो तथा नाटको मे यत्र–तत्र स्फुट रूप मे अथवा प्रसगवश ही ऋतुओ का वर्णन आया है किन्तु सम्पूर्ण काव्य साहित्य मे ऋतुओ का ऐकातिक वर्णन एकमात्र ऋतुसहार मे ही प्राप्त होता है।

उन ऋतुसहार मे ऋतुओ का वर्णन उद्दीपन रूप से हुआ है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन मे, उस ऋतु का वृक्ष लताओ और पशु–पक्षियो पर घटित प्रभावो तथा उनके आगमन से कामी जनो की चित्तवृत्ति और व्यवहार मे दिखाई देने वाले परिवर्तनो उनके हृदयो मे उठने वाले विभिन्न प्रकार के विचारो का वर्णन कवि ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढग से किया है।

ग्रीष्म ऋतु सूर्य के प्रचण्ड आतप और चन्द्रमा की स्पृहणीय ज्योत्सना के साथ आती है। कामिनियॉ उज्जवल रत्नो और दीप्ति कौशेय वस्त्रो से विभूषित हो, ऋतु की शोभा मे चार चॉद लगाती है। अर्धरात्रि मे युवक वर्ग गीत, नृत्य एव सुरा मे आनन्द का अनुभव करते है। युवको के प्रेम की ईर्ष्या से शोकाकुल निशाकर भी छिप जाता है।

वर्षाकाल

वर्षाकाल राजा रूप धारण कर आता है। शस्य श्यामलता बसुन्धरा युवा कामिनीवत प्रतीत होते है। 'नदिया यवनोन्मत चचल युवतियो की भाति बडे वेग से समुद्र का आलिङ्गन करने जा रही है। चतुर्दिशाओ मे मधुर ध्वनि गुजित हो रही है। चपला अधेरी रात्रि मे प्रिय समागम के लिये विह्वल अभिसारिकाओ का पथ प्रदर्शन कर रही है।'' किलना मनमोहक वर्णन कवि ने किया है।

कालिदास ने कितने सुन्दर ढग से शरद् की प्रणय व्यजना का कथन किया है।

अ‍सितनयनलक्ष्मी लक्षयित्वोत्पलेषु

क्वणितकनककाची मत्तहसस्वनेषु।

अधररूचिरशोभा बन्धुजीवे प्रियाणा

पथिकजन इदानी रोदिति भ्रान्तचित ।। (३/२६)

शरद् वर्णन नि सन्देह ऋतुसहार का श्रेष्ठ अश है।

चतुर्थ तथा पचम सर्ग मे कवि ने हेमन्त और शिशिर ऋतु का वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन पूर्व तीन सर्गो की अपेक्षा मनोहर नही है तथा यत्र–तत्र शिथिलता आ गयी है। इन ऋतुओ मे प्रकृति सुन्दरी के नेत्राल्हादक पुष्पादि अलकार परिलक्षित नही होते, अतएव ४ ५ श्लोको मे ही कवि ने प्रकृति गाथा को समाप्त कर दिया है। शेष श्लोको युवक–युवतियो की मधुर हाव–भावो तथा लीला विन्यासो का हृदयाकर्षक वर्णन है।

अत मे कवि ने मनोहर एव रमणीय वसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्राण है। यह अपने ढग का अद्वितीय वर्णन है। इस ऋतु का इतना आह्लादकारी वर्णन इतनी सरल एव सुलझी हुई भाषा मे शायद ही अन्यत्र किया गया हो। इस ऋतु मे वृक्ष पुष्पयुक्त, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनिया कामयुक्त पवन परिमलयुक्त, सन्ध्याकाल सुखकारी, तथा दिन रमणीय होते है।

मेघदूत

यह महाकवि कालिदास कृत लघुत्रयी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मेघदूत समस्त सस्कृत गीतिकाव्य साहित्य का परम् उज्जवल रत्न है। एक विरही यक्ष की मार्मिक मनोव्यथाओ के अभूतपूर्व चित्रण ने इस काव्य को अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो प्रधान भागो मे विभाजित है।– पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ। इस ग्रन्थ का विस्तृत वर्णन लघुत्रयी का परिचय नामक अध्याय मे किया जायेगा।

कुमारसम्भव

कालिदास की लेखनी से प्रसूत महाकाव्यो की सारणी मे कुमार सम्भव को प्रशसनीय स्थान प्राप्त है । इस ग्रन्थ मे उमा शिव के विवाह तथा कार्तिकेय की उत्पत्ति का प्रतिभा चमत्कृत वर्णन है। यह ग्रन्थ लघुत्रयी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। महर्षि अरविन्द के कथनानुसार प्राक्तन सस्कृत साहित्य मे कुमार सम्भव को वही महनीय स्थान है जो आङ्ग्ल साहित्य मे मिल्टन के पैराडाइज लास्ट का। इस महाकाव्य का विशद वर्णन लघुत्रयी का परिचय मे किया जायेगा।

रघुवश

क इह रघुकारे न रमते

रघुवश कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है इसमे उनकी परिपक्व प्रज्ञा एव प्रौढ प्रतिभा के दर्शन होते है। रघुवश मे १६ सर्ग तथा २६ सूर्यवशी राजाओ का यशोगान है। यह महाकाव्य लघुत्रयी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि 'यह महाकाव्य उपदेशात्मक दृष्टिकोण भी रखता है। उन्हे के शब्दो मे प्रकृतिरजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृति–हिसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है। रघुवश काव्य लिखने का सम्भवत यही कारण था।"

मालविकाग्निमित्रम्

यह श्रृङ्गाररस प्रधान ५ अको का नाटक है। यह कालिदास की प्रथम नाट्य कृति है, इसलिये इसमे वह लालित्य, माधुर्य एव भाव गाम्भीर्य दृष्टिगोचर नही होता जो विक्रर्मोवशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् मे है। विदिशा का राजा अग्निमित्र इस नाटक का नायक है तथा विदर्भराज की भगिनी मालविका इसकी नायिका है। इस नाटक मे इन दोनो की प्रणय कथा है। डा रमाशकर तिवारी[1] ने इस नाटक के

---

१. कालीदास– डा रमाशकर तिवारी पृष्ठ २६६

विषय मे लिखा है। "वस्तुत यह नाटक राजमहलो मे चलने वाले प्रणय षड्यन्त्रो का उन्मीलक है तथा इसमे नाट्यक्रिया का समग्र सूत्र विदूषक के हाथो मे समर्पित है।

गौतम को निकाल दीजिये तो अग्निमित्र निष्प्रभ बन जायेगा वैसे भी अग्निमित्र का जो चित्र चित्रित हुआ है न प्रणय वेग मे न प्रणय धनत्व मे अन्य गुणो की बात ही क्या ? कालिदास ने प्रारम्भ मे ही सूत्रधार से कहलवाया है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि नवमित्यवद्यम्।

सन्त परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ।। १/२

अर्थात पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएँ अच्छी होती है और न नयी होने से बुरी अथवा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठतम वस्तु को अङ्गीकार कर लेते है और मूर्ख लोग दूसरो के बताने पर ग्राह्य अथवा आग्राह्य का निर्णय करते है।–

अध्यापक का वास्तविक चित्रण खीचते हुए कवि का कथन द्रष्टव्य है।

लब्धास्पदोऽस्मीति विवाद भीरोस्तिति क्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागम केवलजीविकायै त ज्ञानपण्य वणिज वदन्ति।। १/६६

अर्थात 'जो अध्यापक शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरो के अँगुली उठाने पर चुप रह जाता है तथा केवल पेट के लिये विद्या पढाता है वह पण्डित नही, अपितु ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलायेगा।

वस्तुत यह नाटक नाट्य साहित्य के वैभवशाली अध्याय का प्रथम पृष्ठ है।

विक्रमोर्वशीयम्

यह पाच अको का एक त्रोटक (उपरूपक) है, इसमे राजा पुरूरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा इस नाटक मे कवि की नाट्यकला का सुन्दर विकास हुआ है। इसमे श्रृङ्गार रस की प्रधानता है, पात्रो की संख्या कम है। इसकी कथा ऋग्वेद (१०/९५) तथा शतपथ ब्राह्मण

(११/५/१) से ली गयी है। महाकवि कालिदास ने इस नाटक को मानवीय प्रेम की अत्यन्त मधुर एव सुकुमार कहानी मे परिणत कर दिया है। वस्तुत डा रमाशकर तिवारी का यह कथन कितना सटीक है कि– कालिदास ने प्रस्तुत नाटक मे एक तप्त लोहे को दूसरे तप्त लोहे से जोड दिया है। इसके प्राकृतिक दृश्य बडे रमणीय है। भाषा प्रसादगुण युक्त और स्वाभाविक अलङ्कारो से अलडकृत है। इस नाटक के सम्बन्ध मे हेनरी वेल्स का कथन भी द्रष्टव्य है ऑग्ल कवि वाइरन ने मनुष्यो तथा फरिश्तो के प्रेम का वर्णन करने वाले अपने नाटक को स्वर्ग और पृथिवी (Heaven and Earth) का जो शीर्षक प्रदान किया था वह इस नाटक को भी दिया जा सकता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

यह महाकवि की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसे न केवल भारतीय अपितु पूरे विश्व साहित्य मे अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय आलोचको के मतानुसार काव्यो मे नाटक सुन्दर होता है, तथा नाटको मे शाकुन्तल सुन्दर है– काव्येषु नाटक रम्य तत्र रम्या शकुन्तला ।

अभिज्ञानशाकुन्तल मे सात अक है जिनमे हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त तथा कण्वऋषि की पालिता कन्या शकुन्तला के मिलन वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा का नाटकीय चित्रण अत्यन्त सजीवता एव कमनीयता के साथ किया गया है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व से लिया गया है। महाकवि कालिदास ने मूल कथा मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन कर अत्यन्त रोचक बना दिया है। कथानक का शाराश इस प्रकार है।

हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्वऋषि के आश्रम मे जाते है जहा शकुन्तला से उनका मिलन होता है। राजा तथा शकुन्तला का समागम होता है। उसे अपनी अगूठी देकर वापस लौट आते है। शकुन्तला उनके वियोग मे खिन्न बैठी रहती है। एक दिन दुर्वासा उनके आश्रम मे जाते है किन्तु शकुन्तला दुष्यन्त के विषय मे चिन्तित होने के कारण अतिथि सत्कार नही करती। दुर्वासा शकुन्तला को

शाप देते है कि दुष्यन्त तुम्हे भूल जायेगा। कण्वऋषि शकुन्तला को शिष्यो के साथ हस्तिनापुर भेजते है। मार्ग मे अँगूठी गिर जाती है। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त उसे भूल जाते है। दिव्य ज्योति स्वर्ग लोक उठा ले जाती है वहाँ पर माता मेनका के साथ मारीच के आश्रम मे रहने लगती है। कुछ समय पश्चात भरत नामक पुत्र उत्पन्न होता है। अन्त मे मारीच के आश्रम मे जाकर भरत तथा शकुन्तला को प्राप्त कर दोनो के साथ राजधानी वापस आता हे। मिलन तथा मारीच के आशीर्वाद से नाटक की समाप्ति होती है।—

शाकुन्तलम्

शाकुन्तलम् मे कालिदास ने प्रेम तथा करूणा का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया है। शकुन्तला के प्रतिगृह गमन कवि ने जैसा करूण चित्र अकित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कण्व जैसा वीतराग तपस्वी भी उसकी विदाई के अवसर पर शोकाकुल एव भाव विह्वल हो जाता है तो सामान्य गृहस्थो की बात ही क्या है।—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया।
कण्ठ स्तम्भित वाष्प वृत्तिक्लुषश्चिन्ता जड दर्शनम्
वैक्लव्य मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकस
पीडयन्ते गृहिण कथ न तममा विश्लेषदुखैर्नवै ।।—

महाकवि कालिदास का प्रकृति चित्रण अत्यन्त उच्च कोटि का है। प्रकृति तथा मनुष्य के बीच घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध का प्रदर्शन यहा प्राप्त होता है। शकुन्तला के विदाई के अवसर पर सम्पूर्ण वनस्थली शोकाकुल है। वृक्ष मृग आदि शोकाकुल है। प्रकृति तथा मनुष्य के सम्बन्ध का ऐसा मार्मिक चित्रण अत्यन्त दुर्लभ है।—

पातु न प्रथम व्यवस्पति जल युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सव,
सेय याति शकुन्तला प्रतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम्।।

शकुन्तला के वियोग मे सारा तपोवन दु खी है। इसका वर्णन इस श्लोक मे चित्रित किया गया है।—

उद्गलितदर्भकवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूरी।

अपसृतपाण्डुपत्रामुञ्चन्त्यश्रुणीव लता ।। अ०शा० ४/१२

महाकवि कालिदास श्रृडगार रस के सिद्ध कवि है। श्रृड्गार के दोनो पक्षो सयोग तथा वियोग का चित्रण बडी कुशलता के साथ किया है। उपमाओ के प्रयोग मे वह दक्ष है इस दृष्टि से उनकी बराबरी का कोई अन्य कवि नही है। शकुन्तला के विदाई के अवसर पर कण्व ने कन्या की तुलना बन्धक रखे धन से की है तथा कण्व के मुख से उपमा का कितना सुन्दर वर्णन करवाया है।

अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतु ।

जातो ममाय विशद प्रकाम प्रत्यर्पित न्यास इवान्तरात्मा ।। अ०शा० ४/२२

भारतीय आलोचको ने उपमा कालिदासस्य कहकर इस महाकवि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रशशा करते हुए जर्मन कवि गेटे ने यह उदगार व्यक्त किये है— 'यदि यौवन बसन्त का पुष्प सौरभ तथा इनके अन्त के फलो को देखना चाहते हो, यदि वह सब देखना चाहते हो, जिससे आत्मा आकर्षित मुग्ध तथा तृप्त होती है। यदि स्वर्ग तथा पृथ्वी के ऐश्वर्य को एक साथ पाना चाहते हो तो मै शाकुन्तल का नाम लूगा और उसके साथ ही सब कुछ कह दिया जायेगा।'

द्वितीय अध्याय
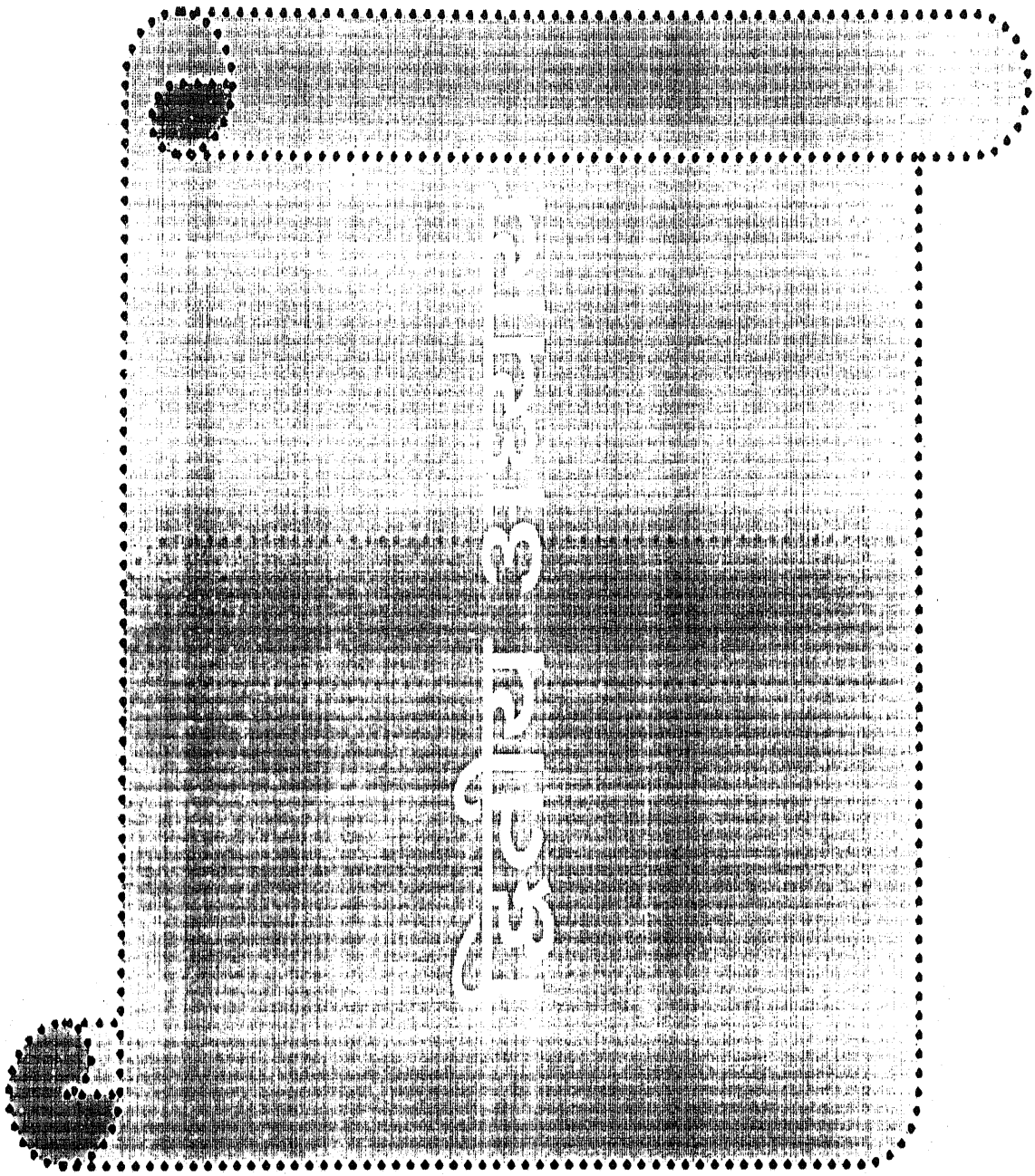
शैली-परिभाषा एवं स्वरूप

साहित्य सङ्गीत एव कला जीवन की वह अनुभूति है जो मानवता का श्रृङ्गार ही नही अपितु निर्माण भी करती है। साहित्य शब्द और अर्थ का वह मजुल गुफन है जहाँ रमणीयार्थ प्रतिपादन के लिये शब्द और अर्थ मे प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। सौन्दर्य जीवन का वह परम तत्व है जहाँ मानव को ऐन्द्रिय सुख ही नही वरन् आत्मानन्द की प्राप्ति भी होती है। साहित्य का सम्पूर्ण प्रयास सौन्दर्याभिव्यक्ति मे निहित रहता है। सौन्दर्य मे कला की विविध ाता और आत्मा की अभिव्यक्ति इस प्रकार प्रस्फुटित होती है जिसे देखकर सहृदय ब्रह्मानन्द सहोदर या वेद्यान्तर शून्यता की स्थिति का अनुभव रहता है। जब से साहित्य का सृजन हुआ और जब तक इसका विस्तार होता रहेगा तब तक किसी न किसी रूप मे सौन्दर्य का प्रतिपादन होता रहेगा। इस सौन्दर्य को लोगो ने भिन्न–भिन्न रूपो मे प्रतिपादित करने का प्रयास किया है किन्तु इसकी वाङ्गमयी मूर्ति है।–

इस सौन्दर्य–प्रतिपादन मे शब्द इसका वाह्य तत्व है और अर्थ आन्तरिक। इसी आन्तरिक तत्व मे काव्य की आत्मा है जिसे लोगो ने समय–समय पर विभिन्न नामो से विवेचित किया है। काव्य का वाह्य–तत्व कवि की अद्वितीय अर्थ सम्पदा है। इसी अर्थ–सम्पदा से साहित्यिक जगत् प्रकाशित होता रहता है।–

साहित्यिक अभिव्यजना कला की परिणति है। अभिव्यजना की विशिष्ट पद्धति कही जाती है। शैली सामान्य और विशेष दोनो अर्थो मे प्रयुक्त होती है। वेदो से लेकर यदि आज तक के साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह एक ही 'शैली' शब्द अर्थ विविधता के साथ जुड़ा हुआ है।

शैली शब्द का प्रथम प्रयोग एव परिचय भारतीय वाडगमय मे कुल्लूकभटट (सन् ११५०–१३००) कृत टीका मनुस्मृति मे मिलता है।[1]

वेदो मे शैली शब्द का व्यापक अर्थ है। देवताओ की स्थिति विशेष के रूप मे शैली शब्द प्रयुक्त हुआ है। माध्यान्दिन सहिता मे शील शब्द देवता विशेष के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इस देवता–विशेष का मध्य अजनि–वेध्य है जिसका अर्थ लीपना और आजना से है।–

'वृहदारण्यकोपनिषद्' मे शेलिनि शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ अभिधान विशेष है।[2] दोनो धातुओ के अर्थ पर विचार किया जाए तो अर्थ विभिन्नता के उपनिषद् साहित्य का अभिधान विशेष रूप शैली शब्द के अर्थ के अधिक सन्निकट है। शैली शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाए तो शील मे होने वाले तत्व को शैली कहते है। कहने का आशय यह है कि शील का अर्थ स्वभाव होता है जो वस्तु वेशिष्ट्य के निर्माण का कारण होता है।–

पाणिनि के धातु पाठ मे शील धातु एकाग्र होना[3] और अभ्यास होना[4], के अर्थ मे प्रयुक्त है। शाकटायन ने शीड धातु से शील को निष्पन्न माना है। होते हुए भी तात्विक अर्थ मे मतभेद की सम्भावना का अभाव है।

'शील धातु का अर्थ एकाग्र होना यदि किया जाए तो यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि एकाग्रता या समाधि शील या स्वभाव का तात्विक अर्थ है। व्यक्ति जब स्वभाव की स्थिति मे रहता है तो वहाँ इतर भार तिरोहित हो जाते है। विश्व के जितने भी विषय है चाहे दर्शन हो या मनोविज्ञान, कला अथवा कला से इतर विषय, सभी की उत्पत्ति समाधि के बीज से ही होती है। यही शील अथवा समाधि की स्थिति कविता का सृजन करती है। शब्द–रचना या शब्द गुम्फन कवि के 'स्व की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति मे कवि के स्वभाव के विम्ब से सहृदय का हृदय भावित हो उठता है।

---

१ वलदेव उपाध्याय – भारतीय काव्य शास्त्र पृष्ठ १६६

२ वृहदारण्यक उपनिषद ४/१/२

३ 'शील समाधौ' सि कौ पृष्ठ २८८

४ 'शील उपाधरणे' 'उपधारणमध्यास' सि कौ पृ ३६० प्रकाशन– खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई सन् १९१४

यदि शील का अर्थ अभ्यास होना माना जाए तो भी यह अर्थ शैली की आत्मा का अभिव्यक्त करता है। अर्थ या कृति अभ्यास का प्रतिफलन है। अभ्यास की नैरन्तर्यता की दृढ भूमि को प्राप्त रमणीयार्थ की ही अभिव्यक्ति होती है।

साहित्यिक उद्यान के रमणीय अर्थ रूपी सुमन प्रतिभा के साथ–साथ–अभ्यास के जल से प्रतिस्फुटित होकर अपने सौरभ का विखेरते है। इसलिए अभ्यास और शील मे मौलिक अर्थ होते हुए भी अर्थान्तर का अभाव ही है।

शील शब्द के यदि शीङ धातु का स्वीकार किया जाए तो किसी प्रकार का अनौचित्य नही होगा। शयन अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली शीङ् धातु पद शैय्या की आधार शिला है।–

यास्क के निरुक्त[1] पर जब हम दृष्टिपात करते है तो यही प्रतीत होता है कि यदि दो स्थलें। पर आने वाला शील शब्द शैली के पर्याय मे पर्यवसित होता है। यास्क शील को अभ्यास की पराकाष्ठा अथवा पुनरूक्ति की परिनिष्ठिता मे अन्तर्भूत कर लेते है।

दुर्ग ने इसी अभ्यास की अभिव्यक्ति को नित्य शब्द से जोड कर इसे स्व–भाव की अभिव्यक्ति मे समाहित किया है।[2]

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने जिस रूप मे जिस अर्थ मे शैली शब्द का प्रयोग किया है वह अर्थ आज के शैली शब्द के अधिक सन्निकट है।

यही शील धातु अण् प्रत्यय से युक्त होकर शैली का रूप धारण कर स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने की स्वभाविक विशेषता अथवा किसी विशेष अर्थ की विशेष रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता अथवा प्रवृत्ति को चरितार्थ करती है। महाभाष्यकार[3]

---

१ 'तर' शीलम्' निरूक्त १०/४२ प्रतिष्ठाशीलभुपशम् आत्मा । निरूक्त १४/१०

२ 'स हि नित्यमयस्ते शब्दे स्तेति' दुर्ग १०/४२

३ महाभाष्यकार २/१/३

प्रदीपकार कैय्यट ने स्व–भाव मे होने वाली वृत्ति को शैली का बाना पहनाकर आधुनिक भाषाविज्ञान मे प्रयुक्त होने वाले शैली विज्ञान के अर्थ को अपने मे समाहित कर लिया है।

मुग्धबोध व्याकरण[1] की टीका मे भी शैली शब्द अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति को प्रकाशित करता है। इतिहास के पृष्ठो मे जब हम दृष्टिपात करते है तब शैली की विविधता देश काल जाति वस्तु और व्यक्ति के भेद से अनन्त रूपो मे दिखाई पडती है। पहाडी शैली राजपूती शैली नागर शैली गान्धार शैली आदि इसके उदाहरण देखे जा सकते है।

आधुनिक युग मे शैली शब्द का प्रयोग अग्रेजी के स्टाइल के अर्थ मे होता है, और अग्रेजी के स्टाइलिस्टिक का हिन्दी अनुवाद शैलीविज्ञान चल पडा है।–

आक्सफोर्ड डिक्शनरी मे स्टाइल (Style) शब्द के २५ से भी अधिक अर्थ दिये गये है। इन अर्थो की विवेचना के पश्चात यही अर्थ निकलता है कि स्टाइल शब्द ग्रीक के 'Stylos' एव लैटिन के (Styles) से सम्बन्धित होकर शैली के रूप मे प्रयुक्त हो रहा है।

किसी भी भाषा का मूलशब्द कालान्तर मे अपने अर्थ को छोडकर सामान्य अर्थ का अथवा अपने मूल अर्थ को छोडकर अर्थान्तरो का अभिधायक हो जाता है।–

'लिखने की नोकदार कलम के रूप मे प्रयुक्त होने वाले लैटिन का (Styles) शब्द कालान्तर मे लिखने के ढग, लिखित रचना, लेखक विशेष की अभिव्यक्ति की विशेषता, बोलने का ढग, रीति या प्रथा, किसी प्रकार रचना पद्धति की विशिष्टता मे प्रयुक्त होने लगा।

---

१ आचार्याणामिय शैली यत् सामान्येनमिधाय विशेषेण विवृणोति।

आज शैली शब्द आन्तरिक अर्थ की अभिव्यक्ति के साथ—साथ वाह्य रूपो की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। शैली शब्द के अर्थ वैशिष्ट्य को देखने के लिये हमे विभिन्न लेखको की विचारधाराओ का आकलन करना पडेगा।

शैली की परिभाषा

शैली की परिभाषा कर्ता कृति और भोक्ता के आन्तरिक पक्ष को अभिव्यक्त करती हुई व्यक्ति और वस्तु के मूल तत्वो को एक सशक्त सगठन प्रदान करती है।

मोरियर की 'शैली किसी भी वस्तु के होने की पद्धति है [१] का कहना है कि वैज्ञानिक शोध के अशमात्र उत्साह से भी शैली पद का आख्यान किया जाय तो यह अनिवार्यता सम्पूर्ण साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र और आलोचना के सिद्धान्तो को परिव्याप्त कर लेता है।[२]

इस कथन मे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम कवि के द्वारा प्रयुक्त की गयी भाषा की विशेष पद्धति है। भाषा की विशेष प्रकार की सरचना काव्य के सौन्दर्यात्मक पहलू को अभिव्यक्त करती है।

वस्तुपरक चिन्तन भाषा की सरचना की कुक्षि से अकुरित होकर पल्लवित एव पुष्पित होता है। विषय वस्तु की सार्थकता को व्यक्त करने के लिये गेटे ने बताया है कि 'शैली रचना का वह उच्च एव सक्रिय सिद्धान्त है जिसके द्वारा लेखक अपने विषय की गहराई मे उतरकर विषय के अन्तस्थ का उद्घाटन करता है' ।[३]

---

१ स्पेन्सर पृ १०—११

२ – To us style is a disposition of existence, a way being

३ Style is a higher and active principle of composition by which the writer, penteraty and reveals the inner from of his subject स्पेन्सर पृष्ठ १०—११

इस परिभाषा के अन्तर्गत कवि अनेक विकल्पो मे से किसी सशक्त विकल्प को जिसे वह सिद्धान्त की कसौटी पर खरा उतार सकता है— माध्यम बनाकर विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व को अभिव्यक्त करता है।— वलीनर्थ बुक्स और रावर्ट वैनभारे की दृष्टि मे चयन एव व्यवस्था मे शैली की भावना निहित रहती है। चयन और व्यवस्था शब्द कविता के वाह्य पक्ष—शब्द तत्व और आन्तरिक पक्ष—अर्थतत्व के बीच मे एक ऐसा सामजस्य स्थापित करते है जिसके द्वारा कविता की रमणीयता कवि के अतिरिक्त पूरे रसिक वृन्द को अभिभूत कर लेती है। शब्दो का चयन वैयाकरणिक व्यवस्था के प्रतिकूल उपस्थित तो नही होते लेकिन व्याकरण की सीमा मे पूर्णत प्रतिबद्ध भी नही रहते। शैली की इस विचारधारा मे गुणभाव की सज्ञा होते हुए भी कविता का सशक्त माध्यम की ओर इगित करने का सफल प्रयास माना जा सकता है। बैयाकरणिक सीमा चयन की पद्धति को अभिभूत नहीं कर पाती। कविता का आन्तरिक तत्व इतना रमणीय एव सशक्त होता है कि उसके समक्ष व्याकरणिक श्रृङ्खला उसी प्रकार छिन्न—भिन्न हो जाती है जैसे बसन्त की मादकता योगी के समाधि को शिथिल कर देती है। भाषागत नियम अचर होते हुए भी नकारात्मक पृष्ठभूमि की जीवन्तता मे विच्छिन्न नही होते। चयन की सार्थकता वस्तुनिष्ठता की रमणीयता के प्रतिपादन मे पर्यवसित होती है।

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान बफो का उद्धरण 'शैली स्वय व्यक्ति है, रचयिता की वैयक्तिक विशेषता को अभिव्यक्त करता है'।

इस परिभाषा के अन्तर्गत कृतिकार की सम्पूर्ण अनुभूतियो का बिम्ब शब्दो के माध्यम से नए अर्थो मे अभिव्यक्त होता है। वस्तुत यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो प्रत्येक कृतिकार की उसकी स्व—अनुभूति वैशिष्ट्य के प्रतिपादन मे ही प्रवृत्त रहती है।

डा० जानसन, ब्राउन, ददले आदि अनेक विद्वानो की दृष्टि मे "शैली का अर्थ कलात्मक अभिव्यक्त मे व्यक्तित्व की सत्ता को परिभाषित करने मे पर्यवसित हुआ है"।

यद्यपि इस परिभाषा मे सत्यता प्रतिभासित होती है किन्तु शैली की वैयक्तिकता निर्भान्त नही है क्योकि शैली समूहात्मक अभिव्यक्ति मे भी प्रतिबिम्बित होती है। कलाकार की वैयक्तिकता यदि समूह का प्रतिबिम्ब तत्व नही है तो वह वैज्ञानिक कोटि मे नही जा सकती। यद्यपि शैली की वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है किन्तु बिना समूहात्मक अभिव्यक्ति के एक निश्चित रूपरेखा तैयार नही की जा सकती। शैली के वैज्ञानिक होने मे वैज्ञानिक उत्सर्जन का विशेष महत्व है।

अनेक विद्वानो ने शैली को प्रतिमान के विपथन की सज्ञा दी है। कहने का आशय है शैली भाषा के सामान्य मानक रूप से विचलन अथवा मे होती है।[१]

इस परिभाषा के प्रबल समर्थक ब्लाक वेलेन्डर है। इस परिभाषा के प्रतिमान और विपथन शब्द शैली के स्वरूप निर्धारक है।

भाषा की प्रतिमानता एकरसता की परिणति नही है। युग धर्म, सामाजिक समय की सक्रान्ति और वैचारिक सक्राति के कारण रूपान्तर को प्राप्त होती रहती है। रचनाकार की कृतियो की प्रतिमानता एकरूपता से अवच्छिन्न नहीं होती कालिदास के रचनाओ के सूक्ष्म विवेचन उनकी समस्त कृतियो मे प्रतिमानान्तर के ही चित्र उपस्थित करते है।

यह बात दूसरी है कि समकालीन रचनाओ का प्रतिमान कुछ सीमा तक समान होता है। वस्तुत प्रतिमान प्रमाता के मानस मे परम्परागत प्रवाह के प्रति फलन के रूप मे विद्यमान रहता है। विभिन्न कालीन रचनाओ के प्रतिमान एक नूतन चिन्तन की पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। जब हम किसी भी रचना का मूल्याकन करते है तो उस युग की रचना के पूर्वकाल की रचना के भाषिक प्रतिमान की आधारशिला पर ही रचनाओ के वैशिष्ट्य का चित्र बनाते हैं।

---

१ भोलानाथ तिवारी – शैली विज्ञान पृ० १६

शैली प्रतिमान से विपथन अथवा विचलन की ओर जाने वाली भाषिक स्थिति है। विपथन अनेक प्रकार से अनेक रूप से अनेक स्तर पर हो सकता है। अभिव्यक्ति के नवीन सृजनात्मक पक्ष को उन्मीलित करने के लिये कवि की कला लीक से हटकर विपथन की ओर गमन करती है उदाहरणार्थ भारवि का किरातार्जुनीयम् महाकाव्य लिया जा सकता है। इस विपथन मे यदि सृजन की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का समावेश होता है तो अभिव्यक्ति का प्रतिफलन सौन्दर्य का विम्ब प्रस्तुत करता है। यदि विपथन केवल कलात्मक अथवा कोरा चमत्कार प्रदर्शन करने के लिये होता है तो इस विपथन का कोई मूल्य नही होता।

इस विपथन मे अनेक प्रकार की अवधारणाये है। कवि नूतन शब्दो की सरचना के माध्यम से अर्थान्तर मे विलास लाता है। उसके शब्द अथवा रूढिगत अर्थो की शृडखला से मुक्त होकर सहृदय–श्लाध्य अर्थो का निर्माण करते है, उसके शब्दो मे अर्थो की निहित कमनीयता सहृदय को बार–बार अपनी ओर आकृष्ट करती है।

इस विचलन का प्रभाव ही है कि विशेष अर्थ मे प्रयुक्त होने वाले वैदिक शब्द लौकिक साहित्य मे अर्थान्तर को प्राप्त होते है। इस नूतन शब्दो की रचना मे अनेक प्रकार की प्रक्रियाओ का समावेश दिखाई पडता है। धातु एव तिडन्त शब्द कही कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त होते है तो कही उपसर्ग विहीन शब्दो का प्रयोग किया जाता है तो कही केवल उपसर्ग का प्रयोग होता है।

इस विपथन मे वैयाकरणिक विपथन यदि गहन स्तर को प्राप्त होता है तो एक ऐसे नूतन अर्थ की सर्जना होती है जिसे देखकर सहृदय आश्चर्यचकित हो जाता है। इस वैयाकरणिक विपथन मे लिग, वचन आदि के प्रयोग भी समाहित है।

इस प्रकार के विपथन मे मनोहारी विम्ब उपस्थित होते है, जिसमे अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति होती है। कवि कभी–कभी स्वनियम परक

विपथन के माध्यम से कथ्य को अत्यन्त रमणीय बना देता है। इस प्रकार के विपणन मे अर्थ विषयता काल विषयता शब्द विपरिणम विषयता आदि की सत्ता देखी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कविता अटपटी सी लगती हुई भी एक नूतन अर्थ की सर्जना अपने गर्भ मे छिपाए रहती है। इस प्रकार कवि विशेष प्रकार के विपथन से अपने को बाधता रहता है। जब यह विपथन उसकी विशिष्टता का माध्यम बन जाता है। तो उस कवि के भावो की अभिव्यक्ति ही शैली कही जाती है।

इस विपथन मे काव्य की प्रचलित विधाओ के प्रति एक विद्रोह अन्तर्निहित रहता है। कवि अपने विपथन मे अग्र–प्रस्तुति की भावना की उद्‌भावना करता है। उसका विशेष प्रयोग कला के सौन्दर्य के प्रत्यापक बन जाते है।

भाषिक अग्र–प्रस्तुति तर्क की सीमा तोड करके जीवित नही रह सकती इसीलिए तर्क का सम्बल लेकर विशेष प्रयोग हमे उपस्थित होने वाली भाषिक अग्र–प्रस्तुति पाठक के जिज्ञासा को उद्‌भावित करने मे सफल होती है। इस भाषिक विपथन मे सप्रेषण का मौलिक तत्व कुछ विशेष रूप मे उपस्थित होता है। इस नूतन प्रयोग के मर्म को समझने के लिये पाठक की सहृदयता और कला मर्मज्ञता उसकी मूलनिधि है। इस भाषिक अग्र प्रस्तुति मे भाव सौन्दर्य के तत्व को जानने के लिये विश्लेषणात्क प्रतिभा की आवश्यकता होती है।

कविता और सामान्य प्रयोग की भाषा मे एकरूपता नहीं होती। कविता की भाषा के पद उपवाक्य कृदन्त, तिडगन्त प्रत्यय, वाक्य आदि सरचनात्मक तत्वो मे निहित होकर अलौकिक सौन्दर्यात्मक अर्थो की अभिव्यक्ति करते है। इसकी प्रक्रिया सायास और सहज भी हो सकती है। सायास प्रक्रिया मे जबकृत्रिमता आ जाती है तो सम्प्रेष्य पडगू बनकर अपना मनोहारी स्वरूप उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे पीले पत्रो के बीच अन्तनिर्हित सुमन के गुच्छे।

यदि इस प्रक्रिया मे सहजता होती है तो अभिव्यक्ति सशक्त होकर सीमातीत आनन्द की अनुभूति कराती है। इस भाषिक अग्र प्रस्तुति मे सादृश्य विधान की सरचना विपथन के उदात्त स्वरूप को प्राप्त कर आह्लादक अर्थो की उद्भावना करती है।

सादृश्य का तात्पर्य आवर्तन मात्र ही नही है वरन शब्द और अर्थ तत्वो का ऐसा व्यतिरेक अथवा समरूप राम विभाजन उपस्थित करना है जिसमे कविता का सौन्दर्य पूनम के चन्द्र—सदृश अभिव्यक्त हो उठे।

शैली की दूसरी परिभाषा[1] सामूहिक विशेषताओ का समुच्चय है। किसी भी व्यक्ति की कृति बहुत अर्थो से युक्त होते हुए भी कुछ विशेषताओ से युक्त होती है। यह विशेषता उसके अभिवैयक्तिक पक्ष को स्पष्ट करती है।

जैसे लेखको अथवा कवियो मे अप्रस्तुत—प्रयोग चयन विपथन समान्तरता पुनरूक्ति कोषीय शब्दो का प्रयोग सरचनामूलक स्तर की बारम्बार अलकार समासादि के प्रति मोह कुछ विशेष प्रयोग की विशेषताये पायी जाती है। यही अभिवैयक्तिक विशेषताओ का समूह ही शैली कही जाती है। उदाहरणार्थ सस्कृत साहित्य की वृहत्त्त्रयी की रचनाओ को लिया जा सकता है। अब यह बात दूसरी है कि वृहत्रयी की रचनाओ मे एकरूपता के साथ—साथ विभिन्न रूपो का वाहुल्य है। वस्तुत इस प्रकार की विशेषता वैयक्तिक होती है। यदि वैयक्तिक विशेषताए कुछ सीमा तक सामान्य का रूप ले लेती है तो अभिवैयक्तिक विशेषताओ का समूह रूपशैली व्यापकता को प्राप्त हो जाती है।— सपोर्टा के शब्दो मे शैली विज्ञान शैली का अन्तर्वाक्यीय वैशिष्ट्य है। "कहने का आशय यह है कि भाषाविज्ञान वाक्य और उसके विभिन्न अगो का अध्ययन करता है। किन्तु शैलीविज्ञान वाक्य से बडी इकाई पाठ का विश्लेषण होता है। इस पाठ के विश्लेषण से ही शैली विषयक सधारणा का प्रस्फुटन होता है। सम्पूर्ण काव्य एक वाक्य नहीं होता अतएव वाक्य से व्यापक स्तर पर अन्त सम्बन्ध के विश्लेषणात्मक पहलू का अध्ययन

करना ही शैली है। इसलिये हिल ने काव्य की अपेक्षा व्यापक सन्दर्भ मे व्याख्येय भाषा तत्वो के अन्त सम्बन्ध मे शैली की निष्पन्नता प्रतिपादित की है।

काव्य के अनेक वाक्यो मे ही कवि की अपनी अनुभूति का सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है। इसलिये शैली अन्तर्वाक्यीय वैशिष्ट्य सिद्ध होती है।

मरी की दृष्टि मे शैली भाषा की उस विशेषता का नाम है जो किसी के भाव अथवा विचार को ठीक–ठीक अभिव्यक्ति करती है।[१] भाषा एक इकाई के अन्त सम्बन्धो से निष्पन्न होती है अत इसके विश्लेषणात्मक वैशिष्टय से कवि के भाव अथवा विचार की सूक्ष्मता का ज्ञान होता है।

'सुन्दर पाप केवल सुन्दर और पाप के अन्त सम्बन्ध से ही अभिव्यक्त नही होता है वरन् पूर्ण दृष्टि मे सुन्दर पाप इस पूरी पडिक्त के अन्त सम्बन्ध के अध्ययन से "सुन्दर पाप के वास्तविक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। बिना भाषा की विशेषता का जाने कवि के भाव की सूक्ष्मता के साथ न्याय नही किया जा सकता। इस भाषिक विशेषता के माध्यम से कवि के अन्तर्भाव और उसके द्वारा प्रयोग किये गये शब्दो के द्वारा किसी प्रकार जाने जाते है। इसलिये भाषा की विशेषता को शैली के नाम से परिभाषित किया गया है।–

मर्री की शैली को स्पष्ट करते हुए बताया कि 'शैली शब्द पर कवि वैज्ञानिक गहराई से विचार करे तो इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य तथा आलोचनात्मक सिद्धान्त आ जायेगे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि काव्य मे होने वाले सौन्दर्य तथा आलोचनाशास्त्र के नियम शैली के स्वरूप के प्रतिपादक है। यह परिभाषा एक व्यापक क्षेत्र का परिशीलन करती है।

इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण आलोचना के सिद्धान्त तथा कवि के सौन्दर्य चिन्तन समाविष्ट हो जायेगे। काव्य भाषा का व्याकरण सामान्य भाषा के व्याकरण से विशिष्ट कोटि का होता है। व्याकरणिक भाषा शास्त्र कविता के

१– "Style is a quality of language, with communicate preciesely emotion or thought"

काव्य तत्व का निर्धारक है किन्तु काव्य भाषा का व्याकरण काव्य के अन्त सौन्दर्य को परिनिष्ठित रूप मे उपस्थित करता है जहॉ अर्थ विस्तार का सौन्दर्यात्मक अनुभूति का भोग किया जाता है। इसलिये सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य रूप शैली का अध्ययन काव्य के सरचनात्मक और सौन्दर्यात्मक अर्थो की अभिव्यक्ति करने मे सहायक सिद्ध होती है।

प्लेटो के अनुसार जब विचार को एक रूप दिया जाता है तब शैली का प्रादुर्भाव होता है। विचार की प्रतिलिपि रूप शैली को परिभाषित करने के लिये गेटे ने भी बताया कि किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है। an author's style1s a fa1thful copy of h1s m1nd

शापेन हावेर ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया शैली व्यक्तित्व की वाह्याकृति हैं ।[१]

चेस्टर फील्ड ने "इसे विचारो की पोशाक कहा है' ।[२]

इन परिभाषाओ मे शैली का तटस्थ लक्षण किया है। प्रत्येक कलाकार के विचार किसी न किसी रूप मे सौन्दर्यात्मक अर्थो का उपधारण कर लेता है। कवि इन्हे अभिव्यक्त करने के लिये जिस पद्वति का आश्रय लेता है वह उसकी शैली कही जाती है।

सेलेद ने शैली को तकनीक का नही अपितु दृष्टि का प्रश्न माना है। सम्पूर्ण परिभाषाओ को देखने से यही ज्ञात होता है कि शैली की जितनी भी परिभाषाए दी है, उसमे चार तत्वो—वस्तुनिष्ठता, वैचारिक पृष्ठभूमि कृतिकार के व्यक्तित्व तथा अभिवैयक्तिक वैशिष्ट्य की प्रधानता रहती है।

डाक्टर भोलानाथ[३] तिवारी ने "शैली विज्ञान मे भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट ढग को शैली बताया है। इसको स्पष्ट करते हुए उन्होने बताया, ' शैली

---

1 Style 1s the Phys1ognomy of m1nd

2 Style is the dress of thought

१ आचार्याणमिय शैली यत् सामान्येनमिधाय विशेषण विवृणोति।'

भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढग से है जो व्यक्तित्व तथा विषय से सबद्ध होकर तथा जो विचलन चयन सुसयोजन समान्तरता एव अप्रस्तुत विधान आदि सामान्य अभिव्यक्ति के लिये आसुलभ उपकरणो पर आधृत होता है।

इस परिभाषा मे अभिवैयक्तिक पद्वति की प्रधानता के साथ–साथ कृतिकार का वैशिष्ट्य भाषिक अभिव्यक्ति से पृथक होता है जिसमे कृतिकार का व्यक्तित्व उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो मे दर्पण मे प्रतिबिम्बित होता रहता है।

श्री भोलानाथ तिवारी की परिभाषा व्यापक परिवेश को समाहित करती है। वस्तुत शैली कृतिकार की रचनाकार अभिवैयक्तिक विशेषता है जिसमे भाषिक नियमो की यथार्थता विशिष्ट रूपो मे उपस्थित होकर श्रोता या पाठक को नूतन अर्थो की कारूणी पिलाकर मदमस्त कर देती है।

कला की भाषा विविध रूपो मे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है। सम्पूर्ण कलात्मक भाषा मे एक अद्वितीय अर्थाभिव्यक्ति रहती है। यदि सत्यता के मार्ग का अनुसरण किया जाए तो यही कहना पडेगा कि कोई भी कला न भाषा का वहन करती है और न अर्थ रखती है। वह तो एक प्रकार का प्रतीक है जिसमे हम शब्दार्थ के व्यग्यो का अन्वेषण करते है।

भाषा तत्वत सकेतो या प्रतीको का आधार तत्व है जिसका सम्बन्ध सार्वभौम नही होता वरन् सीमाबद्ध होता है। फिर भी सामाजिक और अन्तर के भावो का प्रतिबिम्ब किसी भाषा के दर्पण को देखा जा सकता है। भाषा एव सास्कृतिक रूप मे अर्थ के ज्ञान का सृजनात्मक रूप मे। इसी के द्वारा भौतिक और मानवीय अभिव्यक्तियो की अभिव्यजना होती है। भाषा मे अनुभव का प्रतिरूप देखा जाता है। भारतीय दार्शनिको ने भाषा के भाषकीय स्वरूपो के विश्लेषण के साथ–२ उसके दार्शनिक तत्वो की मींमासा प्रस्तुत की है। भारतीय चिन्तन की प्रक्रिया के अन्तराल मे यदि प्रवेश करे तो हमे यही प्रतीत होता है कि जहा एक ओर व्याकरण मे अखण्ड वाक्य स्फोट, न्याय मे पदार्थ और मीमांसा मे शब्द नित्यत्व के विश्लेषण के तत्व रूप आयाम मिलते है वहीं

दूसरी ओर भरतमुनि के अभिनय और शब्द के बीच अनेक प्रकार के सम्बन्धो की व्याख्या वामनकृत् विशिष्ट पद–रचना रीति कुन्तक के मार्ग सिद्धान्त की मीमासा अभिनवगुप्त का शब्दार्थ एव ध्वनि विवेचन मम्मट की शब्दार्थ की मौलिक विवेचना विश्वनाथ का रसात्मक वाक्य पण्डितराज जगन्नाथ का रमणीयार्थ–प्रतिपादक शब्द काव्य की मीमासाए मिलती है।

इन दो प्रकार की भाषाओ मे एक प्रकार की भाषा काव्य भाषा की सर्जना को प्राप्त करती है। इस काव्य भाषा की सर्जना अलकार के बीज से प्रारम्भ होकर ध्वनि के पुष्प मे परिणति होती है। भारतीय साहित्यशास्त्र या काव्यशास्त्र की मुख्य भूमिका शब्द और अर्थ तथा उसके सम्बन्धो की ग्रन्थियो को सुलझाने मे रही है। भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक विद्वानो ने अनेक रूपो मे उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है। काव्य सौन्दर्यात्मक अर्थो की अभिव्यक्ति के साथ–साथ मानव के शिव तत्व का श्रृगार करता है। वह किसी सीमा मे बॅधकर अर्थो की अभिव्यक्ति नही करता। उसका सौन्दर्यात्मक अर्थ ब्रह्मानन्द सहोदर है जो असीम अलौकिक और लोकोत्तर रमणीयता की अनुभूति कराता है यह अर्थ अनुभवात्मक होता है जिसकी अखण्डता स्वय सवद्यता और वेद्यान्तर–शून्यता का अपलाप नही किया जा सकता।

उपर्युक्त वर्णित अलौकिक अर्थ की प्रतीति काव्य के सम्बन्धो के माध्यम से ही होती है। शब्द का प्रयोग अनेक स्थितियो के जन्म का कारण बनता है और यही शब्द स्थितियो के माध्यम से अत्यन्त रमणीय और उससे इतर अर्थो का बोध कराता है। शब्द मे जिस अर्थो की प्रतीति या केवल अर्थबोध होता है उसके लिये मूलत न शब्द कारण है और न अर्थ वरन् हमारी रूचि, हमारी सस्कृति, जीवन का व्यवहार यथार्थता की अनुभूति तथा मानसिक प्रक्रिया भी सहायक होती है। इसीलिए एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये अनेक विद्वान अनेक प्रकार के माध्यम का आश्रय लेते है। भारतीय काव्य शास्त्र की रचना प्रक्रिया वस्तुनिष्ठता की ओर अधिक झुकी हुई है। लेकिन

यह कहना असगत नही होगा कि वस्तुनिष्ठता मे भी कवि की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। यही कारण है कि एक ही कवि की रचनाओ मे विभिन्नता पायी जाती है तो अनेक कवियो की रचनाओ की विभिन्नताओ का अपलाप कैसे किया जा सकता है।

भारतीय काव्यशास्त्र भाषा के सगठनात्मक तत्वो पर एक अच्छी मीमासा प्रस्तुत करता है। प्रत्येक शब्द और अर्थ के प्रत्येक अवयवो की मीमासा मे उसकी सूक्ष्म प्रतिभा का दर्शन होता है। किन्तु इसकी वैयक्तिक भूमिका गौण हो जाती है। आधुनिक आलोचक जिस शैली की विवेचना करते है उस शैली के विविध आयाम तो काव्य शास्त्र मे देखने को मिलते है। किन्तु शैली का एकात्मक रूप देखने को नही मिलता है। लेकिन यह कहना कि 'भारतीय काव्यशास्त्र मे शैली की विवेचना नही है, अतर्क–सगत है–

भारतीय 'शैली को समझने के लिये उसके विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मूल्याकन आवश्यक है। भारतीय शैली विज्ञान को यदि रीति विज्ञान की सज्ञा दी जाए तो यह बात तर्कपूर्ण नही लगती। इसलिये भारतीय शैली के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये हमे भरत से लेकर पण्डित राजजगन्नाथ की विवेचनाओ का मूल्याकन करना पडेगा।–

अलङ्कार के सम्पूर्ण कृतियो को या उनके आचार्यो को दो भागो मे १– अलङकारवादी २– अलकारवादी विभक्त किया जा सकता है।

सर्व प्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे अभिनय के प्रसङ्ग मे शैली को प्रवृत्तियो के रूप मे उल्लिखित किया है। भरत ने इस प्रवृत्ति मे देश–प्रदेश की वेषभूषा और रहन–सहन के विविध परिवेश को अभिव्यक्त किया है। अवन्ति, दक्षिणात्य मागधी और पाचाली प्रवृत्तियो के माध्यम से अभिनय की विविधता के साथ–साथ भौगोलिक विविधता की प्रतीत होती है। अवन्ति भारत के पश्चिम भाग, दक्षिणात्य दक्षिण भारत, ओढ, मागधी, उडीसा तथा मध्यप्रदेश की ओर पाचाली मध्यदेश की प्रवृत्ति कहलाती थी।[1]

---

१ चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोगत नाट्यशास्त्र

भरत की दृष्टि मे प्रवृत्ति उस विशेषता का नाम है जो नाना देशो की वेशभूषा भाषा तथा आचार को अभिव्यक्त करता हो। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रवृत्ति केवल भाषा की सवालिका ही नही वरन् इस प्रवृत्ति मे वेश तथा आचार भी प्रतिबिम्बित होता रहता है। इस प्रवृत्ति मे केवल भाषा का वाह्यतत्व ही प्रतीत होता है।[1]

भरतमुनि ने इसलिये प्रवृत्ति की कल्पना की क्योकि उनका लक्ष्य नाट्य या अभिनय था न कि काव्यात्मक अर्थो का विवेचन। इसलिये राजशेखर ने इस प्रवृत्ति को वेश–विन्यास का क्रम माना है। यद्यपि भरतमुनि ने भौगोलिक आधार पर काव्यप्रवृत्तियो का विचार प्रस्तुत किया है किन्तु इस प्रवृत्ति के बीच से रीति सिद्धान्त अडकुरित हुआ है।

वाणभट्ट ने भी देशभेद से चार प्रकार की पद्धतियो का सकेत किया है। वाणभट्ट के अनुसार भारत के उत्तर भू–भाग के कवि की रचनाओ मे श्लिष्ट भाषा का चमत्कार देखा जाता है। पश्चिम भारत के लोग अलकार–विहीन भाषा के माध्यम से सौन्दर्यात्मक अर्थो की अभिव्यक्ति करते है। दक्षिणात्य कवियो की भाषा के उत्प्रेक्षा अलकार से अलकृत होकर अपने अर्थो की अभिव्यक्ति करते है एव पूर्वी भारत के कवियो की भाषा मे अक्षरो का आडम्बर अधिक रहता है।

बाणभट्ट ने इस सकेत मे भौगोलिक सीमाबद्ध कवि की शैलियो का चित्रण है उनके द्वारा रचित हर्षचरित का जब हम अध्ययन करते है, तो उनकी दृष्टि बडी स्पष्ट दिखाई पडती है। कहने का आशय यह है कि वाणभट्ट की सम्मति मे इन चारो शैलियो का सामजस्य अथवा इनका समष्टि प्रयोग ही कवि शैली की सर्वोत्कृष्ट प्रमाणपत्र है।

बाण की दृष्टि मे काव्य की कसौटी के लिये नवीन भाव सौन्दर्य अग्राम्या जाति, अश्लिष्ट श्लेष, स्फुट रस, नर्तन करने वाले पद, अक्षरवृन्द की आवश्यकता है।[2]

---

१ तत्र वेषविन्यास क्रम प्रवृति अध्याय ३ काव्यमीमासा प्रकाशन राष्ट्रभाषा परि० विहार

२ नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्ट स्फुटोरस।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। हर्ष चरित्र १/८

वाण के शैली विवेचन की प्रक्रिया मे गुण और अलकार के साथ–साथ रसानुभूति की अभिव्यक्ति है। इनकी शैली भौगोलिक दलदल से युक्त होकर काव्य की चारूता के निष्पादन की अहम् भूमिका निभाने वाली काव्यात्मक विधा है। भरत की प्रवृत्तिया अभिनयात्मक स्वरूप की जहा विवेचिका है वही पर वाण की शैली विषयक अवधारणा। कवि की कसौटी तथा काव्यात्मक रमणीयता की अभिव्यञ्जिका है।

वाणभट्ट के पश्चात भामह आदि ने सिद्धान्त रूप मे रीतियो की चर्चा की है। उन्होने वैदर्भ और गौड शब्दो का प्रयोग किया है। दण्डी वामनादि आचार्यो ने रीति के भौगोलिक विभाजन को भरत की प्रवृत्तियो को आधार बनाया है। वामन के बाद होने वाले रूद्रट ने गौणी आदि रीतियो की व्याख्या रसो की परिप्रेक्ष्य मे की है।

भामह के पश्चात रीतियो का विवेचन वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर हुआ है। दण्डी के अनुसार काव्य रचना के मार्ग अनन्त है।[१] क्योकि कवि की सख्या अगणित है। इन्होने मार्ग पद का प्रयोग कर एक नवीन उद्भावना या मार्ग—दर्शन किया है।'

अलकारवादी रीति-विवेचन

अलकारवादी आचार्य शब्दार्थ की विवेचना मे उलझे हुए है। उनका दृष्टिकोण शब्द और अर्थ की चारूता के प्रतिपादन मे सीमित है। किन्तु अलकारवादी आचायो ने व्यडग्यरूप अर्थ को प्रमुख स्थान देते हुए शब्दो के आन्तरिक और वाह्य तत्वो की विवेचना को गौण रूप ही प्रदान किया है।

अलड्कार, रीति और वक्रोक्ति को मानने वाले आचार्यो का दृष्टिकोण सीमित प्रतीत होता है। किन्तु इसके विपरीत रस, ध्वनि और औचित्य के प्रतिपादम के माध्यम से आचार्य काव्य के विराट स्वरूप को प्रस्तुत करते है।

---

१ तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तु कवि प्रतिकविस्थिता। काव्यादर्श १/१०

दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो एक कोटि के अलकारवादी आचार्य शब्दार्थ के बिन्दु से यात्रा प्रारम्भ करके उसी बिन्दु पर पहुचकर विश्राम लेते है तो दूसरी कोटि के अलकारी शब्दार्थ के बिन्दु से चलकर रस ध्वनि आदि व्यापक काव्य तत्वो की मीमासा प्रस्तुत करते है। दोनो कोटि के आचार्यो के सूक्ष्म विवेचन से भारतीय काव्यशैली की एक निश्चित रूपरेखा स्पष्ट हो जाएगी। अलकारवादी विवेचन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि अलकारवादी आचार्य भी एक मत के नही है।

कुछ आचार्य उपमादि अलङ्कार को ही काव्य का जीवन तत्व मानते है इसके विपरीत कुछ आचार्य गुण या रीति को। गुण या रीति को महत्व देने वाले प्रमुख आचार्य दण्डी और वामन के सिद्धान्तो की यदि मीमासा की जाए तो यह स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि इनकी विवेचना मे रीति का ही सर्वाधिक महत्व है। इन दोनो आचार्यो की ही दृष्टि मे रीति या गुण काव्य अडगी है तथा अन्यान्य तत्व अग है लेकिन दोनो आचार्यो के दृष्टिकोणो मे अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है। दण्डी मार्ग के माध्यम से गुणो के महत्व का प्रतिपादन करते है। उनके अनुसार भरत के द्वारा प्रतिपादित दस काव्यगुण वैदर्भ मार्ग के प्राण तत्व है।[१]

वामन का दृष्टिकोण इससे भिन्न है। वामन गुणो के कारण रीति के वैशिष्ट्य पर अधिक बल देते है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि दण्डी के अनुसार प्रतिपादित सिद्धान्त–गुण सम्पदा वामन की दृष्टि मे रीति सम्प्रदाय के नाम से विभूषित होगा और वामन का रीति सम्प्रदाय दण्डी का गुण सम्प्रदाय कहलाएगा।

आचार्य दण्डी ने मार्ग शब्द का प्रयोग रीति के मार्ग को प्रशस्त किया। उनकी दृष्टि मे मूलत वैदर्भी और गौणी दो मार्गो की ही सत्ता है। ये दोनो मार्ग भौगोलिक सीमा से मुक्त नही है। उनके वर्णन से यह स्पष्ट ज्ञात

---

१ **भरत के दस गुण**

श्लेष प्रसाद समता समाधि माधुर्यमोज पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरूदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते।। नाट्यशास्त्र

होता है कि वैदर्भ और गौणी दो मार्ग दण्डी के समय तक के कवियो मे प्रसिद्ध हो चुके थे। दण्डी की स्वीकृति मे यद्यपि भौगोलिक सीमा भाषित होती है किन्तु उनकी मार्ग विवेचना मे व्यक्तिनिष्ठता का स्पष्ट सकेत मिलता है। उन्होने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को सबके सामने प्रस्तुत किया कि प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट शैली होती है।[१]

इसलिये मार्ग असख्येय होते है। दण्डी की मार्ग विवेचना मौलिकता का प्रथम सोपान है। इनकी दृष्टि मे रीति और गुण के सम्बन्ध मे सापेक्षता है। गौणी मार्ग मे गुणो का प्राय विपर्यय रहता है। प्राय शब्द का अभिप्राय यह है कि अर्थ व्यक्ति औदार्य और समाधि गुण दोनो वैदर्भ और गौणी मे समान रूप से पाए जाते है। कहने का आशय यह है कि अर्थाभिव्यक्ति के अभाव मे काव्य रचना का औचित्य ही नही सिद्ध हो पायेगा। इस प्रकार औदार्य गुण से रहित काव्य इतिवृत्त से रहित नही कहा जा सकता है। समाधि गुण तो काव्य की सर्वस्व सम्पदा है। इन तीनो गुणो के अतिरिक्त शेष सातो गुणो का विपर्यय गौणी मार्ग की आधारशिला है। यद्यपि दण्डी ने वैदर्भ मार्ग के प्राणभूत दस गुणो को भरतमुनि के द्वारा स्वीकृत दस गुणो को स्वीकार किया है। किन्तु दोनो आचार्यो के लक्षण मे पर्याप्त अन्तर है। दण्डी के इस कथन एषा विपर्यय के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ लोगो का कहना है कि एषा' का अर्थ दस गुणो से है। दूसरे विद्वानो का कहना है कि 'एषा का सम्बन्ध प्राणो से है और विपर्यय का अर्थ अन्यथा से। अतएव श्लेषादि गुण वैदर्भ मार्ग के प्राण तत्व है। इसके विपरीत गौणीय मार्ग के तत्व है। अत विद्वानो की दृष्टि मे गौणी मार्ग मे श्लेषादि दस गुणो का अन्यथात्व पाया जाता है।

यदि इस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कि 'एषा विपर्यय' का तात्पर्य श्लेषादि गुणो से है। विपर्यय का तात्पर्य यह नही कि अत्यन्त विपरीत वरन् उसका अर्थ है अत्यन्त उत्कर्ष का

---

१ अस्त्यनेको गिरा मार्ग सूक्ष्मभेद परस्परम् काव्यादर्श १/४०

अभाव। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दण्डी के मत मे वैदर्भ मार्ग जितना श्रेष्ठ है उतना गौणीय मार्ग नही। विपर्यय का अर्थ अन्यथात्व लेने से गुणो का विवेचन ही समाप्त हो जायेगा।

दण्डी की दृष्टि मे काव्य शोभा की वृद्धि करने वाले ही अलकार है इस धर्म का व्यापक क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत श्लेषादि गुण उपमादि अलङ्कार समस्त सन्धि सन्ध्यङग अलङकार सामान्य के अन्तर्गत गुणादि की सत्ता विशेष अलङ्कार के रूप मे रहती है पर कही कही इन दोनो की सक्रान्ति भी देखी जाती है। माधुर्य गुण मे रसवत्ता और रस स्थिति शब्दो का प्रयोग सक्रान्ति का ज्वलन्त उदाहरण है।[१] दण्डी ने रसो को भी गुणो मे अन्तर्भूत कर दिया है। समाधि गुण की विवेचना के प्रसग मे समाधि गुण को कवि सम्प्रदाय का उपजीव्य मानकर गुणो की सर्वातिशायिता सिद्ध की है। इस प्रकार उनकी गुणात्मक मार्ग की प्रतिष्ठा रीति को अपनी निजी विशेषता है।—

दण्डी के पश्चात वामन ने रीति सम्प्रदाय की विधिवत् स्थापना करके काव्य के शैलीगत वैशिष्ट्य का सूत्रपात किया है। इनकी दृष्टि मे काव्य की आत्मा रीति है।[२]

यद्यपि वामन से पूर्व भामह और दण्डी ने रीति की विवेचना की है, किन्तु उनकी विवेचना मे रीति का लक्षण नही किया गया है। वामन की रीति सम्पूर्ण काव्याङ्गो का अङ्गी तत्व है। वामन की रीति विशिष्ट पदरचना है।[३] विशिष्ट का अर्थ है गुण सम्पन्न।[४] कहने का आशय यह है कि विशिष्ट पद रचना गुणात्मक है। गुण से तात्पर्य काव्यशोभाकारक धर्म है। इस प्रकार वामन की रीति का तात्पर्य है काव्य शोभाकारक शब्द और अर्थो से युक्त पदरचना। यह काव्य शोभाकारक धर्म गुण कहलाते है।[५] ये गुण ओजस् प्रसादादि है

१ मधुर रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति। (काव्यादर्श १/५१)
२ रीतिरात्मा काव्यस्य (काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति) १/२/६
३ विशिष्ट पदरचना रीति (काव्यसूत्र १/२/८)
४ काव्यशोभाया. कर्तारौ धर्मा गुणा (काव्यसूत्र ३/१/६)
५ (काव्यसूत्र ३/१/२)

यमकादि अलङ्कार नही। ओजस् प्रसादादि गुणो से ही काव्य की शोभा की उत्पत्ति होती है। यमकादि अलङकार तो शोभावृद्धि के हेतु होते है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रीति के गुणात्मक वैशिष्ट्य के कारण ही काव्यत्व की शोभा स्थापित होगी और उपमादि अलङकारो से काव्य की शोभा की वृद्धि होगी। शोभा का तात्पर्य वस्तुत शब्द और अर्थगत सौन्दर्य है।

वामन की दृष्टि मे सौन्दर्य अलङकार है। अलङ्कार शब्द उपमादि अलङ्कार मे होता है और यह सौन्दर्य रूप अलकार दोषो के परित्याग तथा गुण एव अलङ्कारो के उपादान से होता है। वस्तुत काव्य सौन्दर्य एव अलकार दोषो के परित्याग तथा गुण एव अलकारो के उपादान से सम्पन्न होता है। कहने का आशय यह है कि काव्य के आत्मस्थानीय तत्व को गुणात्मक वैशिष्ट्य ही परिपुष्ट करता है। किन्तु उपमादि अलकारो से काव्य का सौन्दर्य तत्व निर्धारित होता है। वामन की दृष्टि मे श्लेषादि गुण काव्य के स्वरूप निर्धारक तत्व होने के कारण काव्य के नित्य धर्म है और उपमादि अलकार काव्य शोभा मे अतिशयिता लाने के कारण काव्य के अनित्य धर्म कहे जाते है। यद्यपि उपमादि अलकार अनित्य धर्म है फिर भी वामन के रीत्यात्मक काव्य के महत्वपूर्ण धर्म है। श्लेषादि गुण काव्य की नित्यधर्मता को चरितार्थ करते हुए भी उपमादि अलकार की भॉति अलकार शब्द से वाच्य होते है।

वामन का रीति—विवेचन रीतिवाचक और अलकारवादी विचारो का केन्द्र है। गुणात्मक रीति की महत्ता की स्वीकृति ने इन्हे एक ओर रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तक सिद्ध कर दिया है। वही दूसरी ओर रीति के गुणात्मक वैशिष्ट्य को अलकार मानने के सिद्धान्त ने इन्हे अलकारवादी आचार्यो की कोटि मे ला रखा है। वामन ने काव्य की आत्मा रीति के तीन भेदो को स्वीकार किया गया है वैदभी, गौणी और पाचाली। इनकी पाचाली रीति के नई उद्भावनाओ ने शैली की नई विधा की स्थापना की है। शैली देश—विदेश के नाम से इसलिये जानी जाती है क्योकि विदर्भ आदि देशो मे इनका आविष्कार

हुआ है।[1] यह बात यद्यपि अक्षरश सत्य है कि देशादि विशेष से शैली के स्वरूपात्मक उपकार नही होते है। किन्तु देशो के नाम पर रीतियो का नामकरण रचना वैशिष्ट्य के आधार पर होता है। कोई भी शैली देशगत होती हुई सार्वभौमिकता की परिधि मे बॅध जाती है। वामन रीतियो का भेद श्लेषादि गुणो के आधार पर ही करते है। वैदर्भी मे ओजस् प्रसाद सभी गुण का ग्रहण होता है।[2]

वैदर्भी की व्याख्या मे वामन ने एक श्लोक उद्‌घृत करते हुए बताया है वैदर्भी मे दोषो की मात्रा का अभाव तथा समस्त गुणो से युक्त वीणा के स्वर सा माधुर्य रहता है।[3] इस वैदर्भी रीति के बिना वाणी का माधुर्य उसी प्रकार सुरक्षित नही होता जैसे बिना मधुमास के मधु का सुख नही होता। ओज और कान्ति से युक्त रीति को गौणी कहा जाता है। इस रीति मे माधुर्य और सौकुमार्य का अभाव होता है। इसलिये इसकी सत्ता मे समास बाहुल्य एव उग्रपदो का अधिक्य रहता है।

माधुर्य और सौकुमार्य गुणो से युक्त पाचाली रीति श्लिष्ट पदो की वार्ता से रहित होती है। साथ ही साथ इनके पदो मे कान्तिविहीनता का सत्ता पायी जाती है। ऐसा इसलिये होता है कि रीति मे ओज एव कान्ति का अभाव होता है।

१ सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते।

यत्नोऽस्या कविता कार्य कोऽलङ्कारोऽनया विना।।

वामन की दृष्टि मे इन रीतियो का काव्य के लिये वही महत्व है जो किसी चित्र के लिये रेखाओ का होता है। सम्पूर्ण रीतियो मे वामन के द्वारा स्वीकृति दस गुणो से युक्त वैदर्भी रीति ग्राह्य है।[4] इसके विपरीत पाचाली

१ विदर्भादिषु दृष्टत्वात् तत्समाख्या । काव्यसूत्र (१/२/१०)
२ समग्रै, वैदर्भी । काव्यसूत्र (१/२/११)
३ ओज कान्तिमयीं गौडीया । काव्यसूत्र (१/२/१२) ।
४ माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पाचाली । काव्यसूत्र १/२/१३

और गौणी रीतिया स्वरूप गुणो के कारण ग्राह्य नही है। इन रीतियो मे आरोहण कम का अभाव है क्योकि अत्तत्व से तत्व की प्राप्ति नही होती है। अर्थ गुणो से युक्त वैदर्भी रीति समास जाल से मुक्त होकर रस की धारा प्रवाहित करती हुई सहृदय के दृदय का आवर्जन करती है।

वामन और दण्डी की रीति विवेचना की यदि मीमासा की जाए तो यही स्पष्ट प्रतीत होता है कि दण्डी श्लेषादि गुणो को अलकार सामान्य के भीतर अन्तर्भूत करते है। उपमादि अलकार वृत्ति लक्षणादि से विशेष अलकारो के रूप मे स्वीकार करते है। वामन की गुण विवेचना दण्डी से भिन्न होते हुए भी काव्य की व्यापकता मे समाहित है। वामन भी अलकार सामान्य के भीतर गुणो को स्वीकार करते है क्योकि उनकी स्पष्ट धारणा है कि विशिष्ट गुणात्मक रीति ही काव्य की आत्मा है।

माधुर्य आदि गुणो मे रसो की सत्ता इस प्रकार समाहित हो जाती है, जैसे रेखाचित्रो के बीच सभी रग समाहित हो जाते है। रीति सिद्धान्त के सन्दर्भ मे वामन की जो विचार धारा है उसके साम्प्रदायिक स्थापना का आग्रह है। यह बात दूसरी है कि इसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। फिर भी काव्य रचना की शैलियो के स्वरूप को व्यक्त करने मे सफल सिद्ध हुई।

अलकारवादियो की परम्पराओ मे दण्डी और वामन की रीति—विवेचना सैद्धान्तिक विन्दु से प्रारम्भ होकर साम्प्रदायिक वृक्ष का निर्माण करने का प्रयास करती है। अन्य अलकारवादी रीति की विवेचना सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार कर उससे भिन्न तत्वो की स्थापना करते है। इस प्रकार के विवेचको मे भामह, रूद्रट राजशेखर, भोजराज और कुन्तक का विशेष महत्व है।

भामह

आचार्य भामह ने परम्परा—प्राप्त वैदर्भी और गौणी दो भार्गो का ही विचार प्रस्तुत किया है। भामह का काव्यालङ्कार उनकी अलकारवादिता का

प्रमाण पत्र है। काव्यालडकार की मूल विचार धारा वक्रोक्ति और उससे प्रसूत समस्त शब्दालङ्कार एव अर्थालङ्कार के प्रतिपादन मे प्रस्फुटित हुई है।[1]

भामह वामन की तरह रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार नही करते है। उनकी दृष्टि मे रीति तो कविता कामिनी की कुशल सेविका है। काव्य के मनमोहक स्वरूप के निर्धारण के लिये जिन प्रमुख तत्वो की आवश्यकता होती है। तत्व मे अलङ्कारता अर्थयता न्यायता और अनाकुलता काव्यो मे अलङ्कार की अवश्यक स्थिति ही अलङ्कारवत्ता है। यह अलङ्कारिता वक्रोक्ति तथा अन्य सभी अलडकारो को साथ लिये हुए कविता—कामिनी के स्वरूप का निर्धारण करती है। अग्राम्यता शिष्ट शब्द और मजुल भावो को लेकर कविता—कामिनी मे सौन्दर्य का सृजन करती है। अर्थत साभिप्राय अर्थ चमत्कार से कविता का श्रृगार करती है। लोक और शास्त्र से अविरूद्ध काव्य का वस्तुत निर्धारण न्यायता की तूलिका से होता है। अनाकुलत्व व्यर्थ के शब्दाडम्बर के मोह को त्यागकर अर्थ गाम्भीर्य का सृजन करता है।

भामह का कथन है कि पॉच तत्वो के सम्मिश्रण से कविता—कला पूर्णिमा को प्राप्त होती है। कहने का आशय यह है कि पॉच तत्वो की अभिव्यक्ति से गौणी मार्ग भी अपने वास्तविक स्वरूप मे निखर आता है। इन तत्वो के अभाव मे वैदर्भी मार्ग उपहास का पात्र बनता है।

भामह का आग्रह है कि वक्रोक्ति और अर्थ चमत्कार के अभाव मे मार्ग कविता—कामिनी की सर्जना नहीं करता वरन् एक वर्ण सुखद गेय[2] वस्तु—विन्यास का आडम्बर मात्र प्रस्तुत करता है। जब वैदर्भ मार्ग की यह स्थिति होती है तो गौणीय की क्या स्थिति होगी, इसका हृदय सहृदय ही कर सकते है। भामह की दृष्टि सकुचित होते हुए भी कुछ व्यापकता का आश्रय लेती है। भामह की दृष्टि मे माधुर्य, ओज, प्रसाद गुणो के द्वारा वैदर्भी और गौणी प्रसाद गुणो के

---

१ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते। (२/८५) काव्यालकार।

२ अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजु कोमलम् ।
भिन्नं गेयमिवेदंतु केवल श्रुति पेशलम्।। काव्यालडकार १/३४.

द्वारा वैदर्भी और गौणी मार्ग नियन्त्रित होते है। उत्कट समास—विरहित कोमल कान्त पदावली माधुर्य और प्रसाद गुणो का निर्माण करती है। इसके विपरीत ओज गुण का वैभव का उत्कृष्ट समास के गौरव मे देखा जाता है।

भामह की दृष्टि मे गुण और मौलिक सम्बन्ध नही है। माधुर्यादि गुण वैदर्भी या गौणीय मार्ग के गुण न होकर सत्काव्य के गुणात्मक रूप है।

भामह ने मार्ग की लोकरूढिता का तिरस्कार करके उसकी प्रादेशिकता और उसकी रूढ वस्तुपरकता पर आघात कर भरत के द्वारा प्रतिपादित मार्ग निरूपण को एक मौलिक तथा तर्कमूलक प्रतिष्ठा प्रदान की है। उनका वैदर्भ तथा गौणीय मार्ग तारतम्य की सीमा से मुक्त है। उनकी श्रेष्ठता और निष्कृष्टता मे केवल गतानुगतिका मात्र है। इस प्रकार भामह की दृष्टि मे सामान्य और विशेष प्रकार के गुणो के अनुरोध से ही वैदर्भ और गौणी काव्यमार्ग का निर्माण होता है।

रूद्रट

रूद्रट ने समास को रीति के मुख्य तत्व के रूप मे स्वीकार किया। उनका अर्थवान शब्द पाच प्रकार का होता है।[1] नाम, आख्यातादि पाच प्रकार के शब्दो मे नाम की दो प्रकार की वृत्ति होती हे। समास से युक्त वृत्ति की तीन रीतिया होती है। रीति भगविच्छिति आदि पर्याय है।[2] रूद्रट ने वामन को वैदर्भ गौणी और पाचाली इन तीनो रीतियो मे सीधी सख्या लाटीया जोडकर रीतियो की सख्या चार कर दी है।

लघु, माध्यम और दीर्ध समासो के आलम्बन से पाचाली लाटीया और गौणीय रीतियो का स्वरूप निर्धारण होता है।

---

१ *ननु शब्दार्थो काव्य शब्दस्तत्रार्थतानेकविध ।*
वर्णाना समुदाय स च भिन्न पञ्चधा भवति।। २/१ (काव्यालडकार २/१)

२ नाम्ना वृत्तिद्वेधा भवति समासासमासभेदेन।
वृत्ते समासवत्यास्तत्र स्यू रीतयस्तिस्र।। काव्यालडकार २/३

इसको स्पष्ट करते हुए उन्होने बताया कि पाचाली रीति मे दो या तीन पद समस्त होते है। लटीय मे पॉच या सात गौणी रीति मे कवि अपनी शक्त्यानुसार समासो का बाहुल्य उत्पन्न कर सकता है।[1]

रूद्रट का दूसरा प्रास्थानिक भेद महत्वपूर्ण है। इनकी रीतिया भौगोलिक भाषा शैली और वैयक्तिक भाषा शैली के निमोक मे नही बधी हुई है वरन् रीतिया रसोचित और विषयोचित होकर ही सत्काव्य का निर्माण करती है।[2]

श्रृङगार एव करुण रसो मे वैदर्भी एव पाचाली रीतियो का विकास देखा जाता है तथा भयानक एव अद्‌भुत रसो मे लाटीया और गौडीया रीतियो का विन्यास अपेक्षित है। रूद्रट का कथन है कि माधुर्य और ललित धर्म वाले रसो मे असमारा या किचित समास की सत्ता को स्वीकार करने वाली वैदर्भी या पाचाली रीति का विलास काव्य को रसमय बनाता है। जब कि इन धर्मो के विपरीत रसो मे माध्यम समास या दीर्घ समास को अगीकार करने वाली लाटीया या गौणी रीति को स्वीकृति चमत्कार उत्पन्न करती है।

रीति के सम्बन्ध मे रूद्रट की विभिन्न मान्यताए समास विषयक रीति का विभाजन है। समासहीन रचना वैदर्भी की आधारशिला है।[3] पाचाली मे स्वल्प समास बाहुल्य रहता है। ये रीतिया अलकार नही होता वरन ये शब्दाश्रित गुण है।[2] काव्यालकार वृत्ति यद्यपि रूद्रट ने बारहवे, चौदहवे और पन्द्रहवे अध्याय मे रस और उनके भेद की विशद विवेचना की है फिर भी अलङ्कार निरूपण मे ही उनका विशेष आग्रह है। अलङ्कारो का निरूपण उन्होने करीब–करीब छह–सात अध्यायो मे किया है। इसीलिए इन्हे अलकार्यवादी आचार्य के अन्तर्गत रखा जाता है।

---

१ पाचाली लाटीया गौडीया चेति नामतोऽभिहिता।
लघुमध्यायत विरचनसमासभेदादिमास्तत्र।। काव्यालकार ३

२ इह वैदर्भी रीति पाञ्चाली वा विचार्य रचनीया।
मधुराललिते कविना कार्ये वृत्ती तु श्रृङगार।। काव्यालकार १४/३७

३ वृत्ते रसमासाया वैदर्भी रीतिरेकैव।। काव्यालडकार २/६

राजशेखर

चौदह विधाओ का एक मात्र आधार काव्य विधा को मानने वाले राजशेखर ने काव्यविधा को धर्म और अर्थ को पारित का साधन माना जाता है।[१] राजशेखर का यह मत सिद्ध करता है कि वे काव्य मे गुण और अलङकार सज्ञा को सुरम्य पूर्वक स्वीकार करते है। इन्होने वृत्ति की सत्ता स्वीकार करने के लिये काव्य पुरुष की कथा निर्माण की। इन्होने वेश विल्यास को प्रवृत्ति नाच गान आदि विलास की वृत्ति और वचन विन्यास क्रम को रीति की सज्ञा दी है।[२]

राजशेखर ने वैदर्भी पाचाली और गौणी तीन रीतियो को स्वीकार किया है।[३] राजशेखर ने रूद्रट की लाटीया रीति को पाचाली रीति के ही भीतर ही अन्तर्भाव कर लिया भरतमुनि की ओजमागधी पाचाल मध्यमा अवन्ति और दक्षिणात्य नामक चार प्रवृत्तियॉ की ओर भारती सात्वती आरभटी और कैशिकी नामक चार वृत्तियो का अवलम्ब लेकर राजशेखर ने वैदभी गौणी पाचाली रीतियो का सुत्रपात किया है। भरतमुनि को आजेमागधी प्रवृत्ति और भारती वृत्ति की सत्ता मे राजशेखर की गौणी की आत्मा निवास करती है। पाचाल मध्यमा प्रवृत्ति और सात्वती आरभटी वृत्तियो मे राजशेखर की पाचाली रीति का निन्यास देखा जा सकता है। इनकी पाचाली रीति, भरत की अतन्हि प्रवृत्ति और सात्वटी कौशिकी वृत्तियो मे निवास करती है। भरत की दक्षिणात्य प्रवृत्ति तथा कैशिकी वृत्ति की सात्भूत राजशेखर की वैदर्भी रीति है।[४] राजशेखर का रीति विभाजन क्रमश रूद्रट का अनुशरण प्रतीत होता है। वैदर्भी मे समास का अभाव तथा स्थानोचित अनुराग की सम्भावना रहती है।

---

१ रीतियो नालङकार, कि तर्हि शब्दाश्रया गुणा रति।

२ सकल विद्यास्थाने । काव्यमीमासा वृ० १०/११,

३ तत्र वेष विन्यास क्रम प्रवृति विलास विन्यास क्रमो वृति, वचनविन्यास क्रमो रीति। तृअ (पृ० २१)

४ रीतयास्तु त्रिस्त्रस्त्रास्तु पुरस्तात् । काव्यपुरूषोत्तमत्तिनामक, तृतीय अध्याय पृ० २३

पाचाली मे लघु समास तथा लघु अनुप्रास की स्थिति रहती है। गौणी मे दीर्घ समास एव अत्यधिक अनुप्रास रहता है। सम्पूर्ण रीतियो मे वैदभी रीति सर्वश्रेष्ठ है क्योकि इसमे सरस्वती का साक्षात निवास रहता है। बालरामायन नामक नाटक मे इन्होने वैदर्भी रीति को रसप्रसूत वाक् देवता का आधिक्य माना है। वालरामायन मे इन्होने इस बात का उल्लेख किया है कि वैदभी रीति मे माधुर्य गुण की प्रधानता रहती है। इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि पाचाली और गौणी रीति मे ओज की प्रधानता रहती है। यद्यपि प्रसादगुण का उल्लेख नही मिलता फिर भी यह सिद्ध हो जाता है कभी स्थिति सर्वत्र समान रहती है।

रामायण के एक श्लोक मे इसकी एक रीति 'मैथिली भी जानी जाती है। यह वैदर्भी के समान कथा की प्रतीत होती है।[१]

राजशेखर के इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि उनकी सम्पूर्ण मौलिक उद्भावनाओ मे परम्परा का परित्याग नही है। रीतियो के भीतर रसो की स्थिति इनके द्वारा स्वीकृत की गयी है। इसीलिए इन्हे भी अलकारवादी आचार्य कहा जाता है।

भोजराज

रीतियो के विवेचन मे भोज की मौलिकता अपने आप मे महत्वपूर्ण है। **श्रृङ्गार प्रकाश** मे इन्होने पाचाली गौणी वैदर्भी रीतियो की विवेचना की थी। किन्तु सरस्वती कण्ठाभरण मे इन्होने अवन्तिका और मागधी की भी कल्पना करके इन्होने रीतियो की सख्या ६ कर दी है। वैदर्भी एव पाचाली की मध्यस्थ अर्थात् दो तीन या तीन चार समास पदो वाली रीति अवन्तिका कही जाती है।[२] भोज की रीति विवेचन मे राजशेखर की अनुकृति विवेचित

---

१ बालरामायण– दशम अङ्क
२ सरस्वती कण्ठाभरण २/३२

होती है।[1] इन्होने रीति का प्रतिभाषित करने का सफल प्रयास किया है। वैदर्भी आदि पन्थ काव्य मे मार्ग कही जाती है। **गत्यर्थक** 'रीङ धातु से निष्पन्न होने के कारण मार्ग रीति कहे जाते है। इससे यह सिद्ध होता है कि भोज की दृष्टि मे रीति का अर्थ है कवि गमन मार्ग।[2]

भोज ने रीतियो की परिभाषा मे मौलिकता की स्थापना की है। इसकी लाटीय रीति समस्त रीतियो का सम्मिश्रण है। वही रीति यदि सम्पूर्ण मिश्रण की अभावता को प्राप्त होती है तो वही रीति मागधी कही जाती है। वैदर्भी रीति मे समास का अभाव होता है। उसमे श्लेषादि गुणो के साथ–साथ वीणा के स्वर के समान माधुर्य रहता है। भोज की पाचाली रीति पाच छह समास पदो से युक्त होती है तथा इसमे ओज और कान्ति नामक गुणो के अभाव के साथ–साथ माधुर्य और सौकुमार्य गुणो से युक्त होती है।[3] गौणी रीति उत्कट समास से युक्त होकर ओज और कान्ति नामक गुणो को धारण करती है।[4]

भोज मूलत अलकारवादी विचारक सिद्ध होते है क्योकि इनके श्लेषादि गुण शब्दार्थगत होते है इसके विपरीत रसवादी विचारक माधुर्यादि गुणो को रसगत मानते है। इन्होने रीति का विवेचन वामन के आधार पर किया है।

कुन्तक

रीति विवेचन के इतिहास मे कुन्तक का विशेष महत्व है। कुन्तक ने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग करके रीति को भौगोलिक सीमा से मुक्त किया है। इनका वक्रोक्तिकाव्य जीवितम् विचार अलकारवादी

---

१ समस्त पदाभोज कान्तिविवर्जिताम्।
मधुरा सुकुमारा च पाचाली कवयो विदु ।।

२ समस्तपच मथुरा सुकुमारा च पाचाली कवयो विदु ।। सरस्वती कण्ठाभरण २/३०

३ समस्तात्युकट पदाभोज कान्तिगुणान्विताम्। गौडीयेति विजानन्ति रीति रीतिविचक्षण ।। २/३१)

४ सरस्वतीकण्ठाभरण

दृष्टिकोण का परिपूरक है। इनकी रीति विवेचना मे मौलिकता के साथ–साथ अलकारवादिता प्रतिविम्बित होती है।

कुन्तक की रीति विवेचना भौगोलिक सीमा से मुक्त होकर कवि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का प्रतिफल है।[1] इनकी सज्ञा रीति न होकर मार्ग है। स्वरादि की सख्या के समान मार्गो की सख्या तीन है। कुन्तक इन मार्गो को कवियो के प्रस्थान अर्थात् काव्य का हेतु मानते है।[2]

ये मार्ग सुकुमार विचित्र एव माध्यम नाम से जाने जाते है। कुन्तक ने वैदर्भी आदि रीतियो को सुकुमार, विचित्र और माध्यम नाम इसलिए दिया है कि कवियो के स्वभाव का प्रतिफलन हाती है। यदि रीतिया का देश भेद के आधार पर स्वीकार किया जाये ता रीतियो की सख्या अन्त हो जाएगी। अत कवि स्वभाव के भेद कारण रचना मे भद स्वाभाविक है।[3] स्वाभाविक शक्ति के साथ निपुणता और अभ्यास काव्य निर्माण के हेतु सिद्ध होते है। इसलिये कुन्तक के मार्ग भेद की आधारशिला स्वाभाविकता सिद्ध होती हे। व्युत्पत्ति और अभ्यास स्वभाव की अभिव्यक्ति के हेतु बनते है। स्वभाव व्युत्पत्ति और अभ्यास के उपकार आर उपकारक रूप मे अवस्थित होने के कारण स्वभाव पहले प्रारम्भ होता है और व्युत्पत्ति और अभ्यास उनका परिपोषण ठीक उसी प्रकार करता है जैसे चन्द्रकान्तमीठा का चन्द्र की किरणे।[3]

कुन्तक ने स्वभाव के आधार पर सुकुमार मार्ग की विस्तृत विवेचना की है। कवि की अम्लान प्रतिभा से स्फुरित होने वाला आह्लादक शब्द तथा अथ से रमणीय तथा स्वभाविक रूप से हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले

---

१ सम्प्रति यत्र ये मार्गा कविप्रस्थानहेतव।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमसो चोभयात्मक ।। वक्रोक्ति जीवितम् १/२४

२ तत्र तस्मिन् काव्ये मार्गा पन्थान स्त्रय सम्भवन्ति।

३ कविस्वभाव भेद निबन्धत्वेन काव्य प्रस्थान भेद समञ्जसता ग्राहयते

४ सर्वस्य दस्य चिदनादिमासनाभ्यासाधिदासितचेतस
प्रथमोर्न्मेष स्वभावाभिव्यञ्जनेनैव साफल्य भजत ।। १ पृ ६६

अल्प अलकारो से युक्त तथा प्रदार्थो के स्वाभाविक नैपुण्य को अभिव्यक्त करने वाला रमणी के लावण्य के सादृश्य शोभातिशय का पोषण करने वाला प्रतिभा से उल्लसित होने वाला सुकुमारमार्ग है। जिस मार्ग से कालिदास की कविता कामिनी यौवन के सौरभ को विखेरती हुई अठखेलिया करती हुई गयी है।[1] कुन्तक का सुकुमारमार्ग माधुर्य प्रसाद लावण्य और अभिजात्य गुणो से सुशोभित होकर कविताकामिनी का श्रृडगार करता है। समास विहीन माधुर्य गुण कानो मे कोकिला की ध्वनि घोलता हुआ अपने रमणीय अर्थ से सहृदय को आनन्द की सरिता मे मज्जित कराता है।[2]

कुन्तक का विचित्र मार्ग वक्रोक्ति वैचित्र्म पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति है। विचित्र मार्ग अत्यन्त दु सथरणशील है। इस मार्ग मे शब्द और अर्थ के भीतर अर्थात स्वरूप मे प्रवेश किये हुए वक्रता की विच्छति स्फुरित होती हुई सी लक्षित है। इस मार्ग मे कवि–प्रतिभा का चमत्कार देखा जाता है। इसीलिये कुन्तक ने बताया कि विचित्र मार्ग का आश्रय योग्य कवि उसी प्रकार ले सकते है जैसे सुभट लोग वीरो की तलवार की धार पर चलते है। कहने का आशय यह है कि सुकुमार मार्ग जिस प्रकार रस–भावादि की अनुभूति के स्वभाविक चित्रण की प्रधानता रहती है उसी प्रकार वैचित्र्य मार्ग मे सौन्दर्यात्मक कला की प्रधानता रहती है।[3]

इस विचित्र मार्ग को अलकृत करने वाले माधुर्य, प्रसाद लाक्ण्य और अविभिजात्य गुण होते है। वैचित्र्य मार्ग का माधुर्य गुण पदो मे विदग्धता का रस प्रवाहित करता हुआ शिथिलता का परित्याग कर वाक्य विन्यास की

---

१ अम्लान प्रतिभोद्भिन्नवशब्दार्थ वन्धुर।
अयत्नविहितस्वल्प मनोहारिविभूषण ।। व जी प्रथमोन्मेष

२ श्रुतिपेशलता सुस्पर्शमिव चेतसा।
स्वभावभसृणच्छायमाभिजात्य प्रचक्षते।। वक्रोक्ति जीवितम् १/३२

३ विचित्रो यत्र वक्रोक्तिवैचित्र्य जीवितायते।
परिस्फुरति यस्यान्त सा काव्यतिशयाभिधा।
सोऽडति दु सचचरो येन विदग्धकवयो गता।
खड्गधारा पथेनेव सुभटानां मनोरथा ।। वक्रोक्ति जीवितम् १/४२–४३

रमणीयता का श्रृगार करता है।[1] किन्तु इस मार्ग के प्रसाद गुण मे किचित ओज का स्पर्श रहता है किन्तु इसमे समासहीन पदो की रचना कविता के अर्थ सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है। विचित्र मार्ग के लावण्य गुण मे परस्पर पदो मे सश्लिष्टता रहती है तथा विसर्गो से युक्त अन्त वाले तथा सयोग से पूर्व तस्व पदो के सयोग से कविता के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है।

कुन्तक के विचित्र मार्ग के अभिजात्य गुणो का निरूपण करते हुए बताया है कि जो न तो बहुत अधिक कोमल कान्ति वाली होती है और न अधिक काठिन्य को धारण को ध्यारण करता है। वह कवि प्रौढि से निर्मित अर्थात कवि की समग्र कुशलता से सम्पादित अभिजात्य गुण सहृदय के हृदय को आनन्दित करने पाला होता होता है।[2]

कुन्तक ने तृतीय मार्ग मध्यम मार्ग की विवेचना मे चार कारिकाओ का उपयोग किया है। मध्यम मार्ग मे कवि की दोनो प्रतिभाओ की सहज तथा व्युत्पत्यादिजन्य कान्ति के उत्कर्ष से शोभित होने वाले सुकुमारता एव विचित्रता सकीर्ण होकर कविता सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। पूर्व के कथित दोनो मार्गो के गुण माध्यम मार्ग की वृत्ति का आश्रय लेकर सघटना की शोभा के विरुद्ध करता है। दोनो मार्गो के सम्मिश्रण की स्पर्घात्मक भूमिका सहृदय के हृदय को आनन्दित करती है। इस मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर के रमणीय वस्तु के व्यसनी एव कवि सहृदय कविता के माध्यम से आनन्द प्राप्त करते है।[3]

कहने का आशय यह है कि सुकुमार और विचित्र दोनो के सम्मिश्रण के बीज से निर्मित होने वाले सहज और आहार्य सौन्दर्य की समन्विति आनन्दानुभूति का कारण बनती है। कुन्तक ने विचित्र मार्ग मे भी माधुर्यादि

---

१ असमस्तपदन्यास प्रसिद्ध कविवर्त्मनि।
किञ्चिदोज स्पृशन् प्राय प्रसादोऽप्यत्र दृश्यते।। व जी १/४५

२ यन्नातिकोमलच्छाय नातिकाठिन्यमुद्वहत्।
अभिजात्य मनोहारि तदत्र प्रौढिनिर्मितम्।। व जी १/४८

३ माधुर्यादिगुणग्रामो वृत्तिमाश्रितत्य मध्यमाम्।
यत्र कामीय पुण्णाति वन्धच्छायातिरिक्ताम्।। व जी ५०

गुणो की सत्ता का निरूपण किया है। माधुर्यादि चारो गुण यद्यपि सुकुमार मार्ग और वैचित्र्य मार्ग दोनो मे रहते है किन्तु दोनो मे इनकी स्थिति के मौलिक भेद का अपलाक नही किया जा सकता। माध्यम मार्ग सुकुमार और विचित्र मार्ग के सम्मिश्रण की परिणति है इसीलिए कुन्तक ने माध्यम मार्ग के माधुर्यादि गुणो का लक्षण न करके उनके उदाहरणो से ही उनकी सत्ता सिद्ध की है।

अलकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह ने वैदर्भ और गौडीमार्ग के अलकारवदा अग्रम्यता अर्थयता न्यायता और अनुकूलत्व ये पाच सामान्य गुण ही काव्य का निर्धारण करते है।[1]

अलकारवता आदि सामान्य गुण शब्दार्थ रूप काव्य के नित्य धर्म है, क्योकि इनके बिना काव्य की कल्पना नही की जा सकती है।[2] शब्दार्थ की अलकारवत्ता इन्हे अलकारवादी आचार्य की उपाधि से विभूषित करती है। वैदर्भ और गौणी मार्ग काव्य के लिये अप्रधान तत्व सिद्ध होते है क्योकि ये काव्य के अनिमत तत्व है। इसीलिए भामह को अलकारवादी आचार्य माना जाता है।[3]

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के आचार्य कुन्तक की मौलिक परम्परा के किचित अश को स्पष्ट करने वाली आलकारिक परम्परा है। इनके सुकुमार आदि मार्गो की सकल्पना कवियो के प्रास्थानिक भेद के रूप मे रचनात्मक वैशिष्ट्य का प्रतिफल है। कुन्तक का काव्य शब्दार्थ का साहित्य है।[1] इस साहित्य मे शब्द और अर्थ की आह्लादकारिणी अभिव्यक्ति सम्पादित की जाती है। इस सन्दर्भ

---

१ अलङकारवदग्राम्यमर्ध्य न्याय्यमनाकुलम्।
गौडीयमपि साधीयो वैदर्भमिति नान्यथा। भामह काव्यालङ्कार ३५

२ रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्वहुधोदित ।
न कान्तमपि निभूष विभाति वनिताननम्।। काव्यालङ्कार १३

३ तदेतदाहु शौशब्द्य नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी।
शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्ट द्वय तु न ।। काव्यालङ्कार १५

४ शब्दार्थो सहितौ वक्रकविव्यापारशलिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणि।। ब जी प्रथमोन्मेष

की पृष्ठ भूमि मे वक्रोक्ति वह केन्द्र बिन्दु है जो सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करती है। यह वक्रोक्ति वह केन्द्र बिन्दु है जो सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करती है। यह वक्रोक्ति अलकार रूप है जिसमे कवि चातुर्यपूर्ण भगिमा का विलास देखा जाता है।[1] अलकार शब्दार्थ है इस मान्यता के कारण शब्द और अर्थ अलकार की कोटि मे रखे जा सकते है। कुन्तक की वक्रोक्ति की सत्ता काव्यव्यापी धर्म के रूप मे सामान्य स्थिति को प्राप्त कर शब्द और अर्थ के साथ नित्यत्व सम्बन्ध को प्राप्त होती है।[2] अतएव कुन्तक को अलकारवादी आचार्य माना जा सकता है।—

वामन तो अलकारवादी आचार्य है ही। इनकी काव्य ग्राहिता अलकार की सत्ता पर आधारित है।[3] उपमादि अलकार काव्य शोभा की अतिशयता के हेतु शब्द और अर्थ के अनित्य धर्म है। वामन की विशिष्ट पद रचना रीति काव्य व्यापी धर्म होने के कारण उसकी नित्यता काव्य के आत्मत्व को सिद्ध करती है। इस रीति के श्लेषादि गुण नित्य सम्पत्ति है। वामन के यही गुण अलकारो के रूप मे काव्य शोभा के सामान्य और नित्य धर्म है। इनका रीति सिद्धान्त साम्प्रदायिक इसलिये है क्योकि रीति काव्य का सामान्य धर्म ही नही वरन् काव्य की आत्मा है। इनका विवेचन इन्हे अलकारवादी आचार्य सिद्ध करता है।

रीति प्रक्रिया की अलकार तथा अलकार्यता

अलकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह का रीति विवेचन काव्य प्रकिया का अनित्य धर्म है। अलकारवत्ता आदि सामान्य गुण तथा नित्य गुण शब्दार्थ के अलकार और गौण रूप से रीति अर्थात मार्ग के भी अलकार्य है और शब्दार्थ अलकार्य है। साथ ही साथ भामह की रीति विवेचना भी काव्य का एक गाण तत्व है जिसे हम अनित्य कह सकते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि शब्दार्थ अलकार्य है।

---

१ उभावेताबलकायो तपो पुनरलकृति।

२ वक्रभाव प्रकरणे प्रबन्धे वास्ति यादृश।

३ काव्य ग्राह्यम लड्कारात्। काव्यसस्कार सूत्र वृत्री प्रथमाधिकरणे

माधुर्य ओज प्रसाद नामक विशिष्ट गुणो की स्वीकृति समासाधीन होकर रीति (अर्थात मार्ग) के स्वरूपात्मक औचित्य को प्रकट करते है। चूकि माधुर्य ओज प्रासाद गुण समास के अधीन निर्धारित होने के कारण शब्दार्थ रूप काव्य के विशिष्ट धर्म होते है। साथ ही साथ ये विशिष्ट गुण भामह के मार्ग के उपकारक होते है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि माधुर्य आदि विशिष्ट गुणो की अलकारता और रीति तथा मार्ग की अलकार्यता सिद्ध होती है।

वामन का रीति विवेचन काव्य का महत्वपूर्ण तत्व है। उनकी दृष्टि मे रीति या मार्ग काव्य की आत्मा है।[1] उनकी विशिष्ट पद रचना रीति वैदर्भी गौणी और पाचाली मार्ग की सरचनाओ पर आधारित है। वस्तुत पद रचना का गुणात्मक वैशिष्ट्य रूप रीति की अलकारिता सिद्ध होती हे। क्योकि वामन ने यह स्वीकार किया है कि काव्य की सत्ता का मूलाधार अलकार की ग्राहिता है और यह अलकार सौन्दर्यात्मक सत्ता की अभिव्यक्ति के लिये दोष के परित्याग, गुण तथा अलकारो के उपादान पर आधारित होता है।[2] काव्यालङकार वामन की दृष्टि मे काव्य शोभा की वृद्धि करने वाले श्लेषादि गुण विशिष्ट पद रचना रूप रीत्यात्मक काव्य के अनित्य अलकार है। श्लेषादि गुण तथा उपमादि अलकार दोनो ही शब्दार्थ रूप काव्य के शोभाधारक धर्म है। केवल अन्तर इतना है। कि उपमादि अलकारो की अनित्यता है और श्लेषादि गुणो की नित्यता है। वामन की रीत्यात्मक काव्यता श्लेषादि गुणो की विरहता से कथमपि सिद्ध नही हो सकती है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि रीति अलकार की अपेक्षा व्यापक तत्व है। अलकार रीति की अपेक्षा से अलकार है रीति अलकार्य क्योकि रीति काव्य का आत्मस्थानीय तत्व स्वीकृत है। इस प्रकार रीति की अलकार्यता और उपमादि की अलकारता सिद्ध होती है। वक्रोक्तिवाद के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक के शब्दार्थ अलकार्य है और वक्रोक्ति

---

१ रीतिरात्मा काव्यस्य। काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १/२/६

२ सौन्दर्यमलङ्कार । १/१/२
काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्। स दोषागुणालङ्कार ।। काव्यालङ्कार

अलकार है।[1] उनकी दृष्टि मे काव्य बिना मार्ग के उसी प्रकार सिद्ध नही हो सकता जैसे उष्णता के अभाव मे अग्नि। इसलिये यह सिद्ध होता है कि सुकुमारादि मार्ग काव्य का नित्य धर्म है। काव्यरूपता वक्रोक्ति के बीज से अभिव्यक्त होती है। कवि स्वभाव[2] ही वक्रता के कारण ग्राह्य होते है। वस्तुत कुन्तक की वक्रोक्ति और शब्दार्थ रूप काव्य मे अलकार तथा अलकार्य भाव सम्बन्ध साक्षात् है किन्तु वक्रोक्ति का रीति के साथ यही सम्बन्ध शब्दार्थ के कारण सिद्ध होने के कारण परम्परा है।

अलकारवारियो की दृष्टि मे रीति का अस्तित्व

काव्य शास्त्र की लम्बी यात्रा ने अनेक सिद्धातो को जन्म देकर साहित्य शास्त्र की सूक्ष्मता की मीमासा प्रस्तुत की है।

पूरे काव्यशास्त्र को अलकारवादी और अलकार्यवादी विवेचन की कोटि मे विभक्त कर सकते है। रस ध्वनि औचित्य सिद्धान्तो की स्थापना करने वाले आचार्य अलकार्यवादी कहे जाते है। तीनो सिद्धात मे जितना महत्वपूर्ण सिद्धान्त रस और ध्वनि का है उतना औचित्य का नही है। रस और ध्वनि वादी आचार्यो ने रीति की स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि से औचित्य ही काव्य की आत्मा है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि मे जो वस्तु जिसके अनुरूप हो उसको औचित्य कहते है, और उचित का भाव ही औचित्य कहलाता है।[3] उनकी दृष्टि मे औचित्य ही काव्य का प्राणरूप है। जिस काव्य मे प्राणरूप औचित्य नही है उसमे अलकारो तथा गुणो का विनियोजन सर्वथा उसी प्रकार व्यर्थ है।[4]

---

१ वाच्यमभिधेय वाचक शब्दो, वक्रोक्तिरलकरणम्।। व जी १/२३

२ कवि स्वभाव भेदनिबन्धनत्वेन काव्यप्रस्थानभेद समञ्जसता गायते। व जी प्रथमोन्मेष

३ उचित प्रहुराचार्या सदृश किल तस्य तत्।
उचितस्य च यो भावस्तदोचित्य प्रचक्षते।। औचित्यविचार चर्चा ७

४ काव्यस्यायमलकारै कि मिथ्यागणितै गुणै।
यस्य जीवितमौचित्य विचिन्त्यापि न दृश्यते।। औचित्यविचारचर्चा ४

जैसे अष्टावक्रानारी को वस्त्राभूषण से अलकृत करना। प्राय सभी आचार्यों ने किसी न किसी रूप मे औचित्य को स्वीकार किया है लेकिन क्षेमेन्द्र के औचित्य मे वैशिष्टय है। क्षेमेन्द्र का कथन है कि अलकार अलकार ही है और गुण गुण होते है। परन्तु रससिक्त काव्य का स्थिरात्मक जीवित तत्व तो औचित्य ही है।[१]

अलकारो का अलकार्यत्व उचित स्थान पर विन्यास होने के कारण है इसी प्रकार औचित्य सीमा को स्वीकार करने वाले गुणो का गुणत्व है।[२] क्षेमेन्द्र का रससिद्ध गुणौचित्य और रीत्यौचित्य की स्पष्ट मीमासा प्रस्तुत नही करता। रीति के सम्बन्ध मे जिस प्रकार अन्य आचार्यों ने विचार प्रस्तुत किया है उसी प्रकार का विचार औचित्यविचार चर्चा मे देखने को नही मिलती है। धवन्यालोक मे आनन्दवर्धन के उपनागरिका आदि शब्द वृत्तियॉ और कैशिकी आदि अर्थ वृत्तियो के लिये औचित्य की व्यवस्था[३] करते हुए रीति के औचित्य[४] की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। इस प्रकार का विचार क्षेमेन्द्र की लेखनी से प्रसूत नही हुआ इसलिये औचित्य का शैली के साथ उतना महत्व नही है जितना रस और ध्वनि का।

आनन्दवर्धन

ध्वन्यालोक जैसे नहान ग्रन्थ के प्रणेता आनन्दवर्धन ने पूर्व के आचार्यों के द्वारा स्वीकृत रीति और मार्ग के अर्थ मे सघटना शब्द का प्रयोग किया है।[५] यह सघटना पदगत भी होता है और वाक्यगत भी[६]।

---

१ अलकारस्त्वलडकारा गुणा एव गुणा सदा।
औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम्।। औचित्यविचारचर्चा ५

२ उचितस्थानविन्यासदलकृतिरलडकृति।
औचित्यादच्युता नित्य भवन्त्येव गुणा गुणा।। औचित्यविचारचर्चा।

३ रसाद्यनुगुणत्वेन व्यवहारोऽर्थशब्दयो।
औचित्यवान् यस्ता एता वृत्तयो द्विविधास्मृता। ध्वन्यालोक २/३३

४ विषयात्रयमत्यन्यदौचित्य ता नियच्छति।
काव्यप्रभेदाश्रयत स्थिता भेदवती हि सा।। ध्वन्यालोक ३/७

५ वाक्ये सघटनायाच स प्रबन्धेपि दीप्यत। ध्वन्यालोक तृतीय उघोत

६, सघटना पदगता वाक्यगता च ... । लोचन ३/२

आनन्दवर्धन ने सघटना को रचना नाम देकर सघटना के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया है।[1] रसादि की व्यजकता की विवेचना के अवसर पर सघटना की चर्चा उपस्थित कर रीति की सकल्पना को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। आनन्द वर्धन की दृष्टि मे रसादि सघटना से भी व्यग्य होते है। इनका कथन है कि असलक्ष्य कम व्यग्य ध्वनि सघटना मे भी भाषित होती है। सघटना मे सम् उपसर्ग घट् धातु + ल्युट् प्रत्यय (भाव मे लगा) हुआ है। सघटना के स्वरूप व्याख्या मे आचार्य आनन्दवर्धन का कहना है कि सघटना मूलत समास मे रहती है। अर्थात समास–रहित मध्यम समास से विभूषित तथा दीर्घ समास वाली तीन प्रकार की सघटनाये रस की व्यजक होती है।[2] आनन्दवर्धन का यह विवेचन सिद्ध करता है सघटना व्यक्ति सापेक्ष न होकर प्रवृत्ति सापेक्ष या सिद्धान्त सापेक्ष है। दीधितकार ने सघटना को स्पष्ट करते हुए बताया कि सघटना पद और वाक्य के सन्निवेश की शक्ति है अर्थात सघटना मे पद और वाक्यो का औचित्यपूर्ण सन्निवेश किया जाता है।[3] ध्वनिकार की दृष्टि मे सघटना वैदर्भी पाचाली और गौणी रीति का रूपान्तर है। कहने का आशय यह है कि जो असमासा सघटना है उसे वैदर्भी रीति कह सकते है और मध्यम समास रचना को पाचाली रीति और दीर्घ समासा रचना को गौणी रीति के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन की सघटना न भौगोलिक स्वर्ण श्रृखला मे आबद्ध है और न कवि की स्वाभाविक भाषा शैली मे ही। इनकी सघटना वक्ता वाच्य विषय, काव्य के भेद, पर्याय वन्ध परिकथा खण्ड कथा आदि से निर्धारित होती है।[4]

---

१ ध्वन्यालोक ३/६

२ असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
दीर्घसमासेति त्रिधा सङ्घटनोदिता।। ध्वन्यालोक ३/५

३ सङ्घटनायां पदवाक्यसन्निवेशचमत्कारीतौ।। ध्वन्यालोक दीधित

४ अविद्यमानः समासो यस्या सा वैदर्भीरूपेका, मध्यमेमेना/ तृतीय उद्योत दीधिति

आनन्दवर्धन ने वक्ता या वाच्य के औचित्य को ही सघटना का नियामक माना है।[1] वक्ता या तो कवि होता है या कवि निबद्ध होई पात्र। वाच्य भी ध्वन्यात्मक रस का अग होता है अथवा रसाभास का अग। वाच्य अभिघेपार्थ होता है। वाच्य की बहुप्रकारता देखी जाती है। कवि निबद्ध पात्र मे पात्र के औचित्य का ध्यान देना पडता है। जब कवि या कवि निबद्ध वक्ता रस भाव से युक्त होता है और रस की ध्वनि रूप व्यग्य न होकर रसबद्ध अलकार हो तब माध्यम समासात्मक घटना रस की अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार पात्र विशेष की दृष्टि मे रचना का विविध स्वरूप निर्धारित होता है। सरस एव नीरस पात्रो के द्वारा सघटना निर्धारित होता है।[2]

आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित विषय के अन्तर्गत काव्य प्रभेद आदि रूप आ जाते है।[3] आनन्दवर्धन ने सघटना के नियामक जिन हेतुओ की चर्चा की है उसका अध्ययन करने से यही ज्ञात होता है कि आनन्दवर्धन की सघटना पूर्वाचार्यो की भाति न तो भौगोलिक लौह श्रृङ्खला मे बधी हुई है और न सामूहिक भाषा शैली की रूढिता को वहन करती हुई अपना दम तोड रही है। इनकी सघटना कवि की स्वच्छन्दतावादी के बीज से भी उद्‌भावित नही होती। इनकी सघटना मे तो कवि और विषय दोनो के सनिवधन के औचित्य का सन्निवेश है। अभिव्यक्ति के लिये कवि स्वतन्त्र रूप से विषय का चयन करते हुए किचिद् परम्पराओ से आबद्ध रहता है। इसलिये इसकी स्वच्छता के लिये किचिद् नियत्रण की आवश्यकता पडती है। अत आनन्दवर्धन ने सघटभा के लिये विशेष व्यवस्था का नियमन किया उनकी

---

१ विषयाश्रयमप्मन्दौचित्य ता नियच्छति।
काव्यप्रभेदाश्रयत स्थिता भेदवती हिसा ।। ७ तृतीय उद्योत

२ तत्र वक्ता, कवि कविनिवद्धो वा
करूणविप्रलम्भ योस्त्व समासैव सङ्घटना। ध्वन्यालोक ३/६ की व्याख्या

३ विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्य ता नियच्छति।
काव्यप्रभेदाश्रयत स्थिता भेदवतीं हि सा।। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत ७

दृष्टि मे जैसी व्यापकम देखी जा सकती है वह अन्यत्र नही मिलती। वृत्ति के औचित्य का अनुशरण रसाभिव्यक्ति पर आधारित है। आख्यायिका तथा कथा मे गद्य निबन्धन का बाहुल्य होने के कारण उनकी रचना मे सघटना का आभव नही है। आख्यायिकाओ मे तो मध्यम समास और दीर्घ समास वाली सघटना का ही औचित्य सौन्दर्यवर्धक होता है। कथा मे विकटबन्ध की प्रचुरता होते हुए भी रसवन्ध[1] के औचित्य का अनुबन्ध करना चाहिए।[2] आनन्दवर्धन ने सघटना की स्थिति का निर्णय करते हुए बताया कि रीति अलकार गुण आदि तत्व भावादि के अग सिद्ध होते है। इनकी दृष्टि मे रसभावादि ध्वनि काव्य की आत्मा है। काव्य की आत्मा होने से काव्य का सबसे प्रधान तत्व है। अलकार आदि तो ध्वनि रूप लावण्यमयी नारी के अलकार तुल्य है। माधुर्य, ओज प्रसाद मे तीनो गुण रस के नित्य धर्म के रूप मे स्वीकृत किये गये है। यदि इन गुणो की सघटना रूप रीति की अभेदता स्वीकृत की जाती है तो सघटना का भी रस के समवाय सम्बन्ध सिद्ध होगा। लेकिन आनन्दवर्धन तो सघटना से निरपेक्ष रस की सत्ता स्वीकार करते है। रचना की नीरसता और सरसता सघटना पर आश्रित है। वीर और रौद्र रस की व्यञ्जना के लिये दीर्घ समास की ही अपेक्षा नही होती। समासहीन रचना भी वीर और रौद्र रस की व्यगिका सिद्ध होती है। इसी प्रकार दीर्घ समास की शैय्या पर शयन करने वाली कविता कामिनी मे भी श्रृगार का विलास देखा जा सकता है।[3] इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि गुण और सघटना की न एकरूपता है और न तादात्म्य ही। गुण सघटना के अधीन नही होते क्योकि गुण और सघटना मे धर्म धर्मो का भाव का सम्बन्ध नहीं होता। इसीलिये सघटना का विषय नियत नही होता है। वस्तुत अलकारो के आश्रय शब्द और

---

१ एतद्यथोक्तमौचित्यमेव तस्या नियामकम्।।
सर्वत्र गद्यबन्धेऽपि छन्दोनियमवर्जिते।। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत।८

२ आख्यायिकायाया तु भुम्ना मध्यमसमासादीर्घसमासे एव सघटने । लोचन ३/८

३ श्रृङ्गारे दीर्घसमासा दृश्यते रौद्रादि समासा चेति तत्र श्रृङ्गारे दीर्घ समासा । ध्वन्यालोक लोचन।

अर्थ होते है और गुणो के आश्रय रस होते है किन्तु सघटना के आश्राय इन दोनो मे से कोई नही है। पद वाक्य आदि की तरह सघटना को भी रस का व्यजक होना चाहिये।

आनन्दवर्धन की दृष्टि मे रीतियो की कोई आवश्यकता नही है। शब्द प्रधान रीतियो का चमत्कार जनक गुण ही प्रधान तत्व है और इस गुण की रसमात्र वृत्यता सिद्ध होती है। इसलिए रीतियो का पृथक निरूपण आवश्यक है।[1] इसी प्रकार शब्द तत्वाश्रित उपनागरिका आदि वृत्तिया और अर्थ तत्व से आश्रित कैशिकी आदि वृत्तिया रीति तत्व की अनुगामिनी है। इसलिए इनकी भी ध्वनि काव्य मे अवश्यकता नही होती।[2]

मम्मट

मम्मट ने काव्यप्रकाश मे वृत्यानुप्रास के प्रसङ्ग मे वृत्ति का विचार करते हुए बताया कि वृत्तिया तीन प्रकार की होती है। उपनागरिका परूषा कोमला। माधुर्य वर्णो से युक्त उपनागरिका ओज प्रकाशक वर्णो से युक्त वृत्ति को परूषा तथा उससे भिन्न वर्णो से युक्त वृत्ति को कोमला कहते है।[3] मम्मट की दृष्टि मे इन्ही वृत्तियो को गौणी, पाचाली और वैदर्भी रीति भी कहा जाता है।[4] इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मम्मट की दृष्टि मे वृत्ति और रीति मे अर्थान्तरता नही है। मम्मट के विचारो मे वृत्ति[5] का अर्थ है नियत वर्णो वाली रचना का निश्चत नाम दे सकते है। उन्होने गुण विवेचन के प्रसग मे माधुर्य ओज प्रसाद गुण को नियत रसो मे बहने वाला माना है। चित्र के द्रुत का कारण जो आह्लादकता है उसे माधुर्यगुण कहा जाता है इस प्रकार का

१ रीतिलक्षण । ध्वन्यालोक लोचन ३/४७

२ शब्दतत्वाश्रया काश्चिदर्थस्तत्वयुजोऽपरा ।
वृत्तयोऽयि प्रकाशन्ते ज्ञातेऽस्मिन् काव्यलक्षणे।। ध्वन्यालोक लोचन ३/४७

३ माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते।
ओज प्रकाशकैस्तैस्तु परूषा कोलमा परै ।। काव्यप्रकाश नवम् उल्लास ६/१०८/१०६,११०

४ एतास्तिस्त्रो वृत्तय वामनादिदीना मते
वैदर्भीगौडीपाञ्चाल्याख्या रीतियो मता । काव्यप्रकाश नवम उल्लास।

५ वृत्ति नियतवर्णगतो रसबिषयो व्यापार । काव्यप्रकाश नवम् उल्लास सूत्र १०४ की वृत्ति

माधुर्य गुण श्रृगार और शान्त रसो मे पाया जाता है। ओज गुण वीभत्स और रौद्र रसो मे तथा प्रसाद गुण समस्त रसो मे तथा सम्पूर्ण रचनाओ मे पाया जाता है।[१] माधुर्यादि गुण मम्मट की दृष्टि मे वर्ण समास पद सघटना रूप रचनाओ से व्यक्त होता है। मम्मट के इस प्रकार के कथन से व्यक्त होता है।[२]

वृत्ति अथवा रीति का सम्बन्ध वर्ण समास तथा पद–सघटना रूप रचना से है। इन्होने यह भी स्पष्ट किया है कि समास के अभाव मे अथवा मध्यम समास और सौकुमार्य माधुर्य युक्त रचना रूप वृत्तियो से माधुर्य की अभिव्यक्ति होती है। दीर्घ समास एव विकट सघटना से ओज गुण व्यजित होता है। उल्लास मम्मट की दृष्टि मे रचना वर्ण समास आदि गुणो के व्यजक नही होते उनके अतिरिक्त वक्ता वाच्य तथा प्रबन्ध के औचित्य के अनुरूप रचना समास वर्ण के व्यजक होते है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मम्मट ने रसो के अनुरूप शब्द चयन की व्यवस्था दी है। वैदर्भी आदि रीतिया न भौगोलिक सीमाबद्ध है और न कवि स्वभाव प्रसूत ही। वामन की वैदर्भी आदि रीतिया मम्मट की उपनागरिका आदि वृत्तिया है लेकिन दोनो मे इतना ही अन्तर है जितना गगन और वसुधा मे। मम्मट की वृत्तिया वर्ण एव समास मे अनुस्यूत है। इन वृत्तियो को अलकारता सिद्ध होती है न कि अलकार्यता।

मम्मट ने सम्पूर्ण विवेचनाओ को यदि आलोचना की जाए तो यही प्रतीत होता है कि मम्मट की मार्ग विवेचना स्पष्ट नही वरन् उलसी हुई है। वृत्यानुप्रास के प्रसग मे वृत्ति की विवेचना मे वृत्ति, रीति या सङ्घटना की एकरूपता की स्पष्टता नही है। मम्मट को स्पष्ट रूप से शब्द वृत्ति, समास वृत्ति और रचना वृत्ति की नियतता की स्पष्ट व्याख्या करनी चाहिये थी लेकिन इन्होने प्राचीन सामग्रियो के रहने पर भी एक सारगर्भित तथा रीति विवेचना को प्रस्तुत नही किया है। वर्ण वृत्ति के अन्तर्गत वर्ण सादृश्य के रूप मे वृत्यानुप्रास और वर्णवृत्तिरूप जिसके द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है

१ काव्यप्रकाश अष्टम् उल्लास, ६८ ६६, ७०

२ वर्णा समासो रचना तेषा व्यजकतामिता काव्यप्रकाश अष्टम् /७३

दोनो के अन्तर की रूपरेखा प्रस्तुत की जानी चाहिये थी। दोषो के विद्यमान होने पर भी मम्मट के विचार आनन्दवर्धन से प्रभावित है।

विश्वनाथ

रसवादी आचार्यो मे साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने रीति विवेचना की मौलिकता को प्रस्तुत[1] करने का प्रयास किया है। इनकी दृष्टि मे रीति पदरचना या पद सघटना है। जिसकी अडगता रसादि की उपकारिकता है।[2]

विश्वनाथ का वाक्य रसात्मक वाक्य है।[3] गुण अलकार तथा रीतिया रसात्मक काव्य के अग होते है।[4] आनन्दवर्धन की भाति विश्वनाथ की अवयव सस्थान रूप रीतिया[5] अलकार कोटि मे आती है। क्योकि वे काव्य के प्रधान तत्व रस का उपकार करती है। विश्वनाथ की दृष्टि मे रीतियो की सख्या तीन या चार है। ये रीतिया वैदर्भी गौडी पाचाली और लाटीया है।[6] लाटीया वृत्ति को रूद्रट ने सर्वप्रथम स्वीकृति दी थी। विश्वनाथ ने इस वृत्ति को स्वीकार करके रीतियो की सख्या चार कर दी है। वैदर्भी रीति उसे कहते है जिसकी रचना माधुर्य व्यजक वर्णो से परिपूर्ण रहती है तथा उसमे स्वल्प समास अथवा समास शून्यता रहती है।[7] गौणी रीति मे ओज गुण के अभिव्यजक वर्णो की परिपूर्णता तथा समास प्राचुर्यपूर्ण उद्भट रचना शीलता रहती है। इसके विपरीत पाचाली रीति मे माधुर्य और ओज गुणो के अभिव्यजक वर्णो को छोडकर शेष वर्णो से अर्थात प्रसाद गुण के अभिव्यजक वणो से परिपूर्णता

---

१ समासाभावो मध्यम समासो वेति समास तथा
माधुर्यवती पदान्तरयोगेन्द्र रचना माधुर्यस्य व्यज्जिका ।

२ पद सघटना रीतिरगसस्थातिशेषवत उपकारवती रसादिनाम्। सा द ६/१

३ वाक्य रसात्मक काव्य। सा द १/३

४ उत्कर्षहेतव प्रोक्ता गुणालकार रीतय । सा द ६/३ ।

५ रीतियोऽवयव सस्थान विशेषवत । सा द १/३ की वृत्ति

६ साहित्यदर्पण ६/१

७ माधर्यव्यञ्जकै वर्णै रचना ललिनात्मिका। अवृतिरल्पवृर्तित वैदर्भी रीतिरिष्यते। सा द नवम् परिच्छेद

रहती है जिसमे पाच या छह पदो तक का समास रहता है।[1] लाटीरीति मे वैदर्भी और पाचाली रीतियो का वैशिष्टय समाहित रहता है। आचार्य विश्वनाथ की रीतिया केवल पद रचना से ही अभिव्यक्त नही होती। वक्ता और विषय के भेद से रचना मे अन्तर आ जाता है। विश्वनाथ की रीति विवेचना मे आनन्दवर्धन की सघटना विवेचन का फल दिखाई पडता है।

सम्पूर्ण विवेचनाओ पर यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि रीति सघटना या पद रचना को नियन्त्रित करती है। किसी भी साहित्य का अपना वैशिष्ट्य होता है जिसके माध्यम से भागो की अभिव्यक्ति होती है। विश्वनाथ ने स्पष्ट शब्दो मे रीतियो के स्वरूप का निर्धारण किया है। मम्मट की भाति सन्दिग्धता का अवसर नही दिया है। विश्वनाथ की रीतियॉ पूर्व मतो के साथ साथ शारदातनय के भाव प्रकाशन से विशेष प्रभावित है। व्यक्ति की भिन्नता से रीतियो की भिन्नता की सीमा नही है। फिर भी उन्हे चार भागो मे विभक्त करना वर्कसगत प्रतीत होता है।[2]

पण्डित राज जगन्नाथ

पण्डित राज जगन्नाथ यद्यपि स्पष्ट रूप से रीति विवेचना नही की किन्तु उनके गुण विवेचन के सागर से रीति विषयक विचार रत्नो को निकाला जा सकता है। समता नामक गुण विवेचन के समय उन्होने बताया कि प्रारम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार की रीति का होना समता कहा जाता है। इसकी चन्डिका व्याख्या मे रीति को उपनागरिका, पुरुषा और कोमला सज्ञा दी गयी है। इन्ही को वैदर्भी गौणी पाचाली भी कहा गया है।[3]

---

१ समस्तपचषपदो वन्ध पाचालिका मता। सा द ६/४

२ प्रतिवचन प्रतिपुरूष तदवान्तरजातित प्रतिप्रीति।
आनन्त्यात् सक्षिप्त प्रोक्ता कविभिश्चतुर्धैव।। भाव प्रकाशन पृ० ११ ।
पुसि पुसि विशेषण कवि–कापि सरस्वती। १२

३ उपक्रमादासमाप्ते रीत्याभेद समता। प्रथम मानस, रसगगाधर पृ० २३
रीते उपनागरिका वृत्ति लक्षणाया वैदर्भ्यादे
अभेद एकरूपता समता नाम गुण इत्यर्थ चन्द्रिका।

इसी प्रसग मे पण्डित राज जगन्नाथ ने कहा है वहाँ उपनागरिका वृत्ति से ही आरम्भ और उसी से समाप्त की गयी है।[1]

पण्डितराज जगन्नाथ मम्मट की भाति केवल तीन गणो को स्वीकार करते है। माधुर्यादि गुणो की प्रतीति कुछ निश्चित वर्ण वाली शब्द रचना से होती है। दीर्घ समास से माधुर्य रस की प्रतिकूलता सिद्ध होता है। वैदर्भी रीति मे दीर्घ समास का अभाव होता है। इसलिए वैदभी रीति के द्वारा माधुर्य गुण की व्यजना होती है। पण्डित राज जगन्नाथ ने वैदर्भी रीति की विवेचना करते हुए बताया है कि विद्वज्जन उस रचना विशेष को वैदर्भी कहते है। जिसमे माधुर्य गुण के भार से परिपूर्ण सुन्दर पदो और वर्णो का विन्यास होता है जिसमे रचनाकार की व्युत्पत्ति प्रकाशित होती है— प्रसाद गुण से जो युक्त होती है, जिसमे रस का पूर्ण परिचायक होता है। इस वैदर्भी रीति को ही कुछ लोग उपनागरिका वृत्ति से अलकृत करते है।[2] पण्डितराज जगन्नाथ[3] ने ओज गुण के प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति सभी रचनाओ मे होता है।[4]

ध्वनिवादियो की रीतिमूलक चिन्तन की अलंकारिता

ध्वनिवादी अथवा रसवादी आचार्यो की कविता—कामिनी का लौकिक श्रृगार रस तत्व है इसलिए इनकी कविता का प्राणतत्व ध्वनि या रस तत्व है। इन तत्वो के अतिरिक्त गुण अलकार और रीति तत्व की अलकारता सिद्ध होती है क्योकि इनका वर्णन अग के रूप मे किया जाता है। इन अलकार तत्वो की एकरूपता केवल अलकार को लेकर है नही तो इनके स्वरूप और

---

१ तत्रध्युपनागरिका । रसगगाधर

२ एभिर्विशेषविषयै समान्यैरपि च दूषणै रहिता।
माधुर्यभारभगुर सुन्दर पद— वर्णविन्यासा।।
व्युत्पत्तिमुद्गिरन्ती निर्मातुर्या प्रसादयुक्ता।
ता विबुधा वैदर्भी वदन्ति वृत्रि गृहीतपरिपाकाम्।। प्रथम भाग पृ० २८४ रसगगाधर

३ दीर्घवृत्यात्म गुम्फ ओजस । पृ २५६ रसगगाधर चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

४ अय च सर्वसाधारणौ गुण । पृ २५६ रसगगाधर चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

स्थिति मे विभिन्नता है। इसका नित्य धर्म गुण महत्वपूर्ण तत्व है। अलकार तो अनित्य धर्म है। रीति तत्व पद और वाक्य मे अलकारिता उत्पन्न हुआ शब्दार्थ का ही रचना धर्म बनकर गुणो के माध्यम से रसो का उपकारण सिद्ध होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि रीति पद और वाक्य के सघटनात्मक पहलु का निर्धारण करती है। अलकार शब्द और अर्थ चमत्कार उत्पन्न करता है। और विशिष्ट रचना धर्मिता से व्यजित होने वाले गुण रस के उपकारक सिद्ध होते है।

रीति विवेचन पर विहगम दृष्टि

सम्पूर्ण आचार्यो की रीति विवेचना को एक सूत्र मे नही बाधा जा सकता है। जैसे आत्म तत्व की विवेचना मे मतैक्य नही है उसी प्रकार रीति विवेचना के तात्विक निर्णय मे मतभेद की स्थिति है रीति की परिभाषा, काव्य मे उसकी स्थिति उसकी सख्या तथा सैद्धान्तिक मान्यताओ मे आचार्यो के निरूपण मे कही भी एकरूपता देखी नही जाती। वामन की रीति विशिष्ट पद रचना है, वही आनन्दवर्धन की रीति सघटना के नाम से जानी जाती है। विश्वनाथ इस रीति को काव्य के शारीरभूत शब्दार्थ की रचना मानते है। वामन के रीति काव्य की आत्मा है जबकि आनन्दवर्धन विश्वनाथ मम्मट आदि इसे गुणो का अभिव्यजक धर्म मानते है। ध्वनि एव रसवादी आचार्यो ने तो ध्वनि या रस को काव्य ही माना है। दोनो मान्यताये समुद्र के दो तट है। वामन का प्रधान तत्व रीति अलकार्यवादी आचार्यो का गौण तत्व है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है। कि वामन जिस रीति को कविता कामिनी का लवण्य मानते है उसे ध्वनिवादी आचार्य शरीर के सुसगठित अग मानते है। रीतियो की सख्या मे पर्याप्त मतभेद है। वामन आदि ने रीतियो की सख्या जहॉ तीन मानी है विश्वनाथ ने उनकी सख्या चार कर दी है। विश्वनाथ की विवेचना मे प्राचीनता के साथ–साथ अर्वाचनीयता का भी सौरभ है। रीतियो के नाम मे भी एकरूपता का अभाव है, किसी ने इसे मार्ग कहा, किसी ने

रीति की सज्ञा दी किसी ने सघटना या रचना की सज्ञा दी। इसके अतिरिक्त इनके नामो मे भी मौलिकता स्वाभाविकता और पारम्परिकता की सत्ता देखी जाती है। मम्मट ने तो उपनागरिका आदि नामो से विभूषित करने का प्रयास किया है।

रीति के स्वरूप तथा नामत अन्तर के साथ–साथ दोनो प्रकार के अर्थात अलकार और अलकार्यवादी आचार्यो के विवेचन की प्रक्रिया मे सर्वथा विपरीतता देखी जाती है। वामन की दृष्टि मे काव्य का आत्मस्थानीय तत्व रीति केवल प्रधान तत्व ही नही वरन् आकाश की भाति उनकी काव्य व्यापकता भी प्रतिपादित की गयी है। वामन की रीति का सबसे बडा वैशिष्ट्य यह है कि वह उपादेय और उपादेयता दोनो कोटियो मे व्याप्त रहता है। इनकी रीति प्रक्रिया गुण अलकार, रसादि तत्वो को समेटते हुए अपनी प्रधानता अभिव्यक्त करती है। रीति की उपजीव्यता, अलकार गुण को उपजीविता मे परिवर्तित कर देती है। वामन की सम्पूर्ण विवेचनाओ मे पद गुम्फन प्रक्रिया पर विशेष बल दिया है। इस प्रक्रिया मे रस की प्रधानता उसी प्रकार अन्तर्भूत हो जाती हे जैसे अलकार प्रिया अलकार के बोझ से लदी हुई तारूणी का लावण्य।

जब हम अलकार्यवादी अर्थात ध्वनिवादियो आचार्यो की रीति विवेचना पर दृष्टिपात करते है तो यही प्रतीत होता है कि इनके यहा काव्य व्यापी अगीतत्व रस तत्व ही काव्य पुष्पिका का सौरभ है। रीति, गुण, अलकार इन आचार्यो की दृष्टि मे अग बनकर राजा के सेवक की भाति काव्य तत्व का उपकार करते है। वामन ने तो काव्यगत रसो का समावेश कान्ति नामक गुण मे ही कर डाला है।[१] वामन ने कान्ति नामक[२] गुण को वैदर्भी रीति से निकृष्ट[३] गौणी रीति का आधार माना है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि

---

१ दीप्त कान्ति। दीप्ता रसा श्रृङ्गारादयो यस्य स दीप्त रस।
३/२/१५ काव्यालकार सूत्रवृत्ति (वामन)

२ ओज कान्तिमती गौणी । वामन काव्यालकार सूत्रवृत्ति।

३ तासा पूर्वा ग्राहया । वामन काव्यालकार १/२/२४

वामन ने अपने काव्य तत्व मे रस की कितनी महत्ता स्वीकार की है। वामन के विपरीत अलकार्यवादी आचार्य रसादि को ही काव्य की आत्मा मानकर कविता के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते है।

वामन का रीति तत्व ही नही वरन गुण—तत्व भी काव्य का नित्य एव व्यापी धर्म सिद्ध होता है। वामन की दृष्टि मे रीति के काव्य का अस्तित्व नही है किन्तु श्लेषादि गुणो के अभाव मे भी रीति की कल्पना नही की जा सकती।[१] वामन का रस तत्व गुण और रीति की भाति काव्य का नित्य एव काव्यव्यापी तत्व नही है। इन्होने उपमालकार को काव्य शोभा मे अतिशयता लाने वाले अनित्य धर्मो के रूप मे स्वीकार किया है। कहने का आशय यह है कि गुणो के बिना पद—रचना के वैशिष्टय की सत्ता असिद्ध होकर रीति का निर्माण कर सकती। वामन का रस तत्व गुण और रीति की भाति काव्य का नित्य और काव्यव्यापी तत्व नही है। इन्होने उपमा अलकार को काव्य शोभा मे अतिशयता लाने वाले अनित्य धर्मो के रूप मे स्वीकार किया है। कहने का आशय यह है कि गुणो के बिना पद—रचना के वैशिष्ट्य की सत्ता असिद्ध होकर रीति का निर्माण नही कर सकती। इसकी विवेचना की जा चुकी है कि रस किचित गुणो का धर्म है। काव्य की शोभा का मूलतत्व विशिष्ट पद रचना है। अलकार तत्व तो उस शोभा की वृद्धि करने वाले अनित्य धर्म है। इस प्रकार वामन की रीति विवेचना स्थूलात्मक प्रकिया का प्रतिफलन रूप प्रतीत होता है। वामन का सारा श्रेय गुणात्मक पद रचना को सवारने मे है। कुन्तक का मार्ग तत्व कवि स्वभाव से नियन्त्रित होने के कारण अनेको गुणो के सयोग से काव्य—तत्व का निर्माण करता है। उनके यहा वक्र—मणितत्व का ही वैशष्ट्यि है।

ध्वनि रसवादी आचार्य रीति या मार्ग विवेचना की मरीचिका से उन्मुक्त है। उनके यहा रीति या मार्ग सघटना पद वाक्य योजना मात्र की परीचिका प्रस्तुत करती है। यह सघटना या रीति काव्य का अनियत तत्व है।

---

१ विशेषो गुणात्मना । १/२/८ वामन काव्यालकार सूत्रवृत्ति।

अलकारवादी आचार्यो की दृष्टि मे सघटना की ही नही वरन वर्ण पद वाक्य आदि की रस व्यजकता स्वीकार की गई है। इन आचार्यो ने माधुर्यादि गुणो को रस का नित्य धर्म[1] स्वीकार किया है। इसलिए माधुर्यादि गुणो की रसव्यजकता सिद्ध होती है। माधुर्यादि गुणो की रसव्यजकता सिद्ध होती है। माधुर्यादि गुणो की सत्ता वर्ण पद आदि की विशेष सघटना पर आधारित है। इसलिए वर्ण आदि की भी रस–व्यजकता सिद्ध होती है। सघटना या रीति की रस–व्यजकता नीरस काव्यो मे सभव नही है। इसलिए गुण और सघटना को एकात्मकता सिद्ध नही हाती है। अलकारवादियो के यहा रीति की उपादेयता काव्य के अगरूप मे है।

सम्पूर्ण आचार्यो की रीति–विवेचना का मूल तत्व है कि विशिष्ट रचना–पद्धति को रीति मार्ग या सघटना का नाम दिया है लेकिन काव्य मे इसकी सत्ता और इसकी उपादेयता के निर्धारण मे मतभेद है। इसलिए रीति को एक परिभाषा के अन्तर्गत सूत्रित करना समुद्र को मुट्ठी मे बन्द करना है। इतना होते हुए भी हम यह कह सकते है कि सम्पूर्ण आचार्यो की रीति–विवेचना भौगोलिक मान्यताओ पर आधारित नही है वरन् कवि–स्वभाव से प्रादुर्भूत है। यह दूसरी बात है कि एक भौगोलिक परिवेश ने कवि–स्वाभाविकता को सीमाबद्ध कर दिया किन्तु इसकी व्यापकता पर उगली नही उठाइ जा सकती है। प्रत्येक कवि–स्वभाव की विशिष्टता से होने वाली रचना अनन्त रीतियो के पाश मे बध जाएगी इसलिये उस रीति को कुछ सीमा मे बाधना आवश्यक है। भारतीय काव्यशास्त्रियो ने जिस प्रकार शैली अथवा रीति की विवेचना की है उसके मूल मे पद–सघटनात्मक विन्यास परिलक्षित होता है।

रीति और वृत्ति

गत्यर्थक रीड्० धातु मे क्तिन् प्रत्यय लगने पर रीति शब्द की निष्पत्ति होती है। अमरकोष मे रीति का अर्थ 'प्रचार और स्पन्दन किया गया

---

१ ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मन ।
उत्कर्षहेतव स्युरचलस्थितयो गुणा ।। ८/६६– मम्मट का प्र अष्टम उल्लास

है।[1] लेकिन काव्यशास्त्र मे रीति का अर्थ मार्ग या पद्धति है। रीति के वाच्यार्थ और काव्यशास्त्र मे रीति का अर्थ मार्ग या पद्धति है। रीति के वाच्यार्थ और काव्य–प्रयुक्त अर्थ की दूरी की उपेक्षा करते हुए आचार्यों द्वारा स्वीकृत अर्थ का आश्रय लेना चाहिए। सर्वप्रथम वामन ने अपने काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति मे रीति शब्द का प्रयोग किया हे यद्यपि दण्डी और भामह ने इस रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया था। दोनो शब्दो के प्रयोग का लक्ष्य काव्य–रचना की पद्धति का विश्लेषण करना है। यह बात कल्पित नही वरन सत्य है कि काव्य निर्माण के पश्चात् ही उसके भाषा शास्त्र या व्याकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। मानव स्वभावत कलात्मक रूचियो का स्थूलात्मक सगठन है। प्रकृति के अवयवो मे गीत्यात्मक कविता का प्रभाव देखा जा सकता है। मानव के हृदय से स्वत कविता की धारा फूटती है। मनुष्य चेतन प्राणी होने के कारण देश काल एव परिस्थिति से पूर्णत प्रभावित होता है। इसलिए अनेक भावो की अभिव्यक्ति भौगोलिक और सास्कृतिक मार्ग का आश्रय लेकर नूतन ससार की सृष्टि करती है। कला या कविता के सृजन के पश्चात् आलोचक उसके नियम का निर्धारण करता है। कविता की सृष्टि आलोचक की बुद्धि को झकझोर कर उसे कुछ नियम–सरचना के लिए बाध्य करती है। यह तो आलोचक की बुद्धि की सूक्ष्मता तथा हृदय की सवेदनशीलता पर निर्भर है। कि यह कविता–कामिनी के लावण्य को किस रूप मे देखता है। कविता का प्रधान तत्व उसका भाव या रस पक्ष होता है। सगठनात्मक तत्व उसका वाह्य पक्ष है। किन्तु यही सगठनात्मक तत्व भाव या रस तत्व का वाहक होने के कारण कविता का उपकारक तत्व सिद्ध होता है।

भामह और दण्डी ने कविता के वाह्य–पक्ष– जिसे हम शब्द–रचना पद–रचना या वाक्य–सरचना कह सकते है– को मार्ग की सज्ञा दी है और यही मार्ग रीति के रूप मे विकसित होकर सङ्घटना, सरचना आदि नामो से

---

१ प्रचारस्यन्दनो ।अमरकोष ३/६/८

विभूषित होता है। भरतमुनि द्वारा प्रणीत नाटयशास्त्र सम्पूर्ण काव्य शास्त्र का आकर ग्रन्थ है। वस्तुत रीतिशास्त्र रीतिसिद्धान्त या मार्ग सिद्धान्त का प्रारम्भिक केन्द्र बिन्दु भरतमुनि या नाटय शास्त्र है। भरत—मुनि ने नाट्यशास्त्र मे चार प्रकार की प्रवृतियो— आवन्ती दाक्षिणास्य पाचाली और ओड मागधी का उल्लेख किया है। इन प्रवृत्तियो का प्रयोग प्राप्तीय वेश—भूषा आचार और वार्ता के प्रयोग के लिये किया है।[१]

भरत के इस मत का समर्थन राजशेखर और सिहभूपाल ने भी किया है। प्रवृत्ति जहा व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त होती है रीति उसके एकदेशीय अर्थ अर्थात वचन विन्यास को अभिव्यक्त करती है। प्रवृत्ति का माप—दण्ड भौगोलिकता की परिणिति है। जब कि रीति काव्य की रचना धार्मिकता की प्रवृत्ति का है। भरतमुनि प्रवृत्ति के अतिरिक्त वृत्ति शब्द का भी प्रयोग किया है उनकी दृष्टि मे वृत्तिया नाट्य की माताए है।[२] भरतमुनि ने दो प्रकार की वृत्तिया स्वीकार की है— शाब्दी और आर्थी । श्रृगारतिलक[३] मे वृत्तिया रस की अवस्थाओ की सूचिका कही गई है। यही कारण है कि अभिनवगुप्त की दृष्टि मे रसोचित चेष्टाविषयक वृत्ति है।[४] भरतमुनि ने चार प्रकार की वृत्तिया सात्वती भारती, कौशिकी और आरभटी मानी है। भारती शब्दी वृत्ति है और शेष तीनो वृत्तियो की आर्थी सज्ञा है। भारती का अर्थ वाणी होता है। इसलिए इसे शब्दी वृत्ति कहा गया है। लघुसिद्धान्तकौमुदी मे वृत्ति का प्रयोग पाच अर्थो—— कृदन्त, समास, तद्धित एकशेष तथा सनादयन्त धातु रूप मे किया है। इसकी यदि मीमासा की जाए तो ये शाब्दी वृत्तिया अर्थ की भी अभिव्यक्ति करती है।[५] साहित्य मे वृत्ति शब्द का प्रयोग कई अर्थो मे किया जाता है। शब्द शक्तियो

---

१ प्रवृति देशविशेषगता वेशभूषा समाचार वैचित्र्यप्रसिद्धा उच्चते।— अभिनव भारती ६३/६८

२ चतस्त्रो वृत्तयो होता सर्वनाट्यस्य मातृका
स्युनायिकादिव्यापारविशेषा नाटकादिषु ।। सा द ६/१२३

३ चतुस्त्र वृत्तो गेय रसावस्थान सूचित ३/५२

४ रसोचित एव चेष्टाविशेषो वृति । लोचन ३/४०

५ परार्थाभिधानम् वृत्ति । सहसुपा २/१/४/ लघुसिद्धान्त कौमुदी की वृत्ति

की अभिव्यक्ति के लिए वृत्ति शब्द का प्रयोग शक्ति का पर्याय मात्र सिद्ध होता है। भरतमुनि ने वृत्तियो का प्रयोग नाटयमाताओ के रूप मे कैशिकी आदि वृत्तियो के लिए किया है। समास और असमास के रूप मे वृत्ति शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। अनुप्रास जाति के अर्थ मे वृत्ति शब्द का प्रयोग आचार्यो ने किया है।

भरत मुनि की वृत्ति या श्रृङ्गार रस की अभिव्यजिका है। कैशिकी श्रृङ्गार और हास्य की सात्वती वीर रौद्र और अद्भुत की आरभटी भयानक और वीभत्स की अभिव्यजिका है। भारती वृत्ति सभी रसो मे वर्तमान रहती है।[1] अभिनव भारती मे आचार्य अभिनवगुप्त ने वृत्ति का अर्थ व्यापार के रूप मे ग्रहण किया है। यह व्यापार पुरूषार्थ को सिद्ध करने वाला है।[2] नाट्यदर्पणकार ने अभिनवगुप्त के मार्ग का अनुसरण किया है।

समास और असमास के रूप मे वृत्ति का प्रयोग करने वाले रूद्रट ने भामह के द्वारा प्रचलित मार्ग मे सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया। रूद्रट ने समास और असमास भेद से दो प्रकार की वृत्तियो की स्वीकृति दी है। समास वाली वृत्ति के तीन भेद--- पाचाली, लाटीया और गौणी है और वैदर्भी रीति समासहीन वृत्ति है। इससे यह सिद्ध होता है कि वृत्तिया समासाधीन है। यही वृत्ति आगे चलकर वैदर्भी गौणी और पाचाली रीतियो के रूप मे प्रसिद्ध हुई। यह बात दूसरी है कि वेदर्भी मे समासाभाव या अल्प समास की कल्पना की गई। गौणी मे दीर्घ–समास, पाचाली मे पाच–छह पदो का समास और लाटी मे दो–तीन पदो के समास की कल्पना की गई। अनुप्रास जाति के अर्थ मे वृति शब्द के प्रयोग के प्रवर्तक उद्भट ने वृत्यनुप्रास के प्रसग मे वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है। उसके तीन भेद है। परूषा उपनागरिका और ग्राम्या। परूषावृत्ति के आधार पर होने वाला अनुप्रास परूषानुप्रास, उपनागरिका वृत्ति

---

१ श्रृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारभटी पुन ।
रसे रौद्रे च वीभत्से, वृति सर्वत्र भारती।। २/६२ दशरूपकम् द्वितीय प्रकाश

२ व्यापार पुरूषार्थसाधको वृत्ति । अभिनवभारती १८/११०

पर होने वाला उपनागरिकानुप्रास और ग्राम्या वृत्ति पर आधारित अनुप्रास को ग्राम्यानुप्रास कहते है। अनुप्रास जाति के अर्थ मे वर्णवृत्ति शब्द का प्रयोग देखा जाता है। इस वृत्ति के प्रयोक्त आचार्य उद्भट ने अनुप्रास के तीन भेदो मे वृत्यनुप्रास का उल्लेख किया है। उन्होने पूरुषा उपनागरिका और ग्राम्या वृत्ति के कारण वृत्यनुप्रास को स्वीकार किया है।

परुषा वृत्ति[1] मे शकरादि कठोर सयुक्त वर्णों की सत्ता रहती है। उपनागरिका[2] वृत्ति मे तो किसी वर्ण के पचम वर्ण का सयोग उसी वर्ग के अन्य वर्णों के साथ होता है। ग्राम्या वृत्ति मे कोमल वर्णों की सयोजना रहती हे। उपनागरिका वृत्ति का नाम शिक्षिता नगरवधू के सौन्दर्य विन्यास का प्रतिबिम्ब है। ग्राम्यावृत्ति ग्राम्य युवतियो के सौन्दर्य की अनुकृति है। इसी वृत्ति के आधार पर वृत्यनुप्रास रसगत चारुत्व का प्रतिपादन करता है। उद्भट्ट की वृत्ति, वर्णयोजना की शैय्या मे शयन करती हुई रस की वर्षा करती है।

मम्मट ने काव्यप्रकाश मे अनुप्रास अलकार के प्रसग मे नियत–वर्ण–गत रसविषयक व्यापार रूपा वृत्ति की विवेचना प्रस्तुत की है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मम्मट की वृत्ति वह शब्द–सरचना है जो रसो को अभिव्यक्त करती है।

सरस्वतीकण्ठाभरण मे भोजराज ने तीन वृत्तिया–सौकुमार्य प्रौढि और मध्यमत्व को स्वीकार किया है। उद्भट की वृत्तियो का नामान्तर रूपा कोमला परुषा और ललिता को गम्भीरादि नामक वारह वृत्तियो के अन्तर्गत स्वीकार किया है। भोजराज ने कणाटी आदि बारह अनुप्रास की जातियो की गणना की है। भोजराज ने नूतनता के नाम पर भरत की वृत्तियो मे मध्य कैशिकी और मध्यम आरभटी जोडकर उनकी सख्या रद्द कर दी है। इसी प्रकार मागधी और अवन्तिका रीतियो के योग से वैदर्भी आदि रीतियो की भी सख्या छह कर दी है। इस प्रकार भोजराज ने सभी क्षेत्रो मे जो नवीनता लाने का प्रयास किया है। उसमे केवल नूतनता का प्रयास मात्र है।

---

१ काव्यालङ्कार सार सग्रह, १/४
२ काव्यालङ्कार सार सग्रह १/५

रीति और वृत्ति मे अन्तर

वृत्ति का अर्थ समास आदि व्यापक अर्थो मे प्रयोग किया गया है। वाक्य पद और समासो का सघटनात्मक रूप है। व्याकरण की समास वृत्ति रूद्रट की प्रतिभा से रीति–तत्व को प्राप्त कराई गई है या कहा जाए कि समास के कारण जिन्हे वैदर्भी आदि की सज्ञा प्रदान की गई थी उसे रूद्रट ने रीति के साथ तादात्म्य लाने का प्रयास किया है। अभी यह देखा गया है कि वृत्ति साहित्य मे कई अर्थो मे प्रयुक्त है। मूलत समास–रचना की आधारशिला रीति वृत्ति से भिन्न होते हुए भी कुछ सीमा तक एक रूप है। वर्णवृत्ति वृत्यनुप्रास के रूप मे प्रयुक्त होकर रस की अभिव्यक्ति करती है। इसी वर्णवृत्ति ने उपनागरिका ग्राम्य आदि नाम से सिद्ध होकर पाचाली वैदर्भी आदि रीतियो का स्थान ले लिया है। यही कारण है कि काव्यप्रकाश मे मम्मट ने उपनागरिका आदि वृत्तियो को वैदर्भी आदि रीतियो को एकरूपता प्रदान की है। परन्तु मम्मट की यह विवेचना वेदवाक्य नही है क्योकि वामन का रीति तत्व समास रूपी शैय्या पर ही आधारित रहता है। वर्ण–वृत्ति पर आश्रित उपनागरिका आदि वृत्तिया समासाधीन वैदर्भी आदि रीतियो की एकरूपता उसी प्रकार सम्भव हो सकती है जैसे पखुडियो और पुष्प की एकरूपता सिद्ध की जा सकती है। वामन की रीति और आनन्दवर्धन आदि की वृत्तिया दोनो अपने विशिष्ट अर्थो का सम्पादन करती है। आनन्दवर्धन ने सङ्घटना या वृत्ति की जो विवेचना प्रस्तुत की है उससे स्पष्ट पता चलता है कि सघटना या वृत्ति रसो की किसी न किसी प्रकार माधुर्यादि गुणो के द्वारा अभिव्यजिका सिद्ध होती है। रीति की यह स्थिति नही है क्योकि रीति के एक गुण मे ही रस अन्तर्भूत हो जाता है।

वर्णवृत्ति या वर्ण योजना रूपवृत्ति रीति के अन्तर्गत इसलिए अर्न्तभूत हो सकती है क्योकि रीति समास पर आश्रित रहती है। वृत्ति की अनुप्रासता रीति से पार्थय की प्रतीति कराती है।

रीति और वृत्ति के अन्तर को दूसरे शब्दो मे हम इस प्रकार कह सकते है कि वर्ण–वृत्ति के अन्तर्गत समास–वृत्ति रूप रीति नही आ सकती। परन्तु समास के अन्तर्गत वर्णवृत्ति का अन्तर्भाव हो सकता है। वर्ण–वृत्ति की उपस्थिति सर्वथा सम्भव है। अनुप्रासगत वर्णवृत्ति समास वृत्ति से कुछ पृथक ही होती है। दोनो की एकरूपता सहज नही है वरन् कृत्रिम है। जितनी प्रकार की वृत्तियो की विवेचना की गई उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वृत्ति की व्यापकता किसी न किसी रूप मे स्वीकार की गई है। रीति और वृत्ति केवल सघटनात्मक रूप से कुछ सीमा तक एक रूप मे प्रतीत होता है। किन्तु प्रयोजन भेद से उनकी अर्थान्तरता सिद्ध होती है। वर्ण रूपा वृत्ति भी रीति का स्वगत भेद है। अत रीति से इसके पार्थक्य की कल्पना नही की जा सकती है दोनो मे यदि कोई अन्तर है तो अवयव और अवयवी का ही है। वृत्यानुप्रास की नियामिका वर्णारूपा वृत्ति अनुप्रास अलकार तत्व की व्यजिका होने से रीति से सर्वथा विपरीत होती है। अलकार वामन की दृष्टि मे शोभा की वृद्धि करने वाला धर्म है इसलिए इसे रीति के अन्तर्गत किसी भी रूप मे नही रखा जा सकता है।

रीति और मार्ग

'मार्ग' वैदर्भी आदि के नाम से जाना जाता है। कुन्तक ने मार्ग को कवि–स्वभाव से सम्बन्धित माना है। इसलिए इन्होने केवल तीन मार्गो की विवेचना की है। कुन्तक के मार्ग मे कवि स्वभाव की प्रधानता होने के कारण मार्ग की विशेष रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

कुन्तक के मार्ग विशेष गुणो से सम्बन्धित है। उन्होने कवि–स्वभाव के कारण सुकुमार विचित्र और मध्यम मार्ग की कल्पना की है। सुकुमार मार्ग मे किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नही की जा सकती है। इस मार्ग के द्वारा स्वाभाविक प्रतिभा के काव्यो की रचना की जाती है। कुन्तक के मार्ग मे

न रीतियो की उत्तमता मध्यमता और अधमता है न भौगोलिक सीमा का अनावश्यक प्रभाव ही। कुन्तक ने सुकुमार मार्ग के लिए जिन गुणो की कल्पना की है उससे यही प्रतीत होता है कि सभी मार्गो के लिए विशेष प्रकार के गुणो की आवश्यकता पडती है। अर्थात् सुकुमारादि मार्ग मे माधुर्य प्रसाद लावण्य और अभिजात्य गुणो की सत्ता को स्वीकार किया है। इनके मार्गो मे पद बन्ध की उतनी महत्ता नही है जितनी विषय की महत्ता है। इनके सुकुमार और विचित्र दोनो मार्गो के माधुर्य नामक गुणो मे असमस्त पदो की सत्ता रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि इनके मार्ग पद–रचना धार्मिकता से नियन्त्रित नही है वरन् विशिष्ट प्रकार के अर्थो के अभिव्यजक होने के कारण सुकुमारादि मार्गो के अस्तित्व है। रीति मे यह बात देखने को नही मिलती क्योकि रीति को समास वृत्ति और वर्ण वृत्ति की रचना धर्मिता की उपेक्षा नही कर सकती। रीति तत्व कवि का प्रधान तत्व माना जाता है।

सस्कृत के आचार्यो ने रचना–पद्धति के लिए मार्ग, रीति सघटना, वृत्ति आदि शब्दो का प्रयाग किया है। उसके मूल मे वर्ण और पदो के विन्यास की प्रकिया ही परिलक्षित होती है।

रीति और शैली

जिस प्रकार सस्कृत के आचार्यो ने रचना पद्धति के लिए रीति शब्द का प्रयोग किया है उसी प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र के पण्डितो ने रचना पद्धति के लिए स्टाइल शब्द का प्रयोग किया है। भारतीय चिन्तन–प्रकिया मे 'रीति शब्द रचना के गत्यात्मक पहलू की विवेचना करता है। रीति की विशेषता काव्य–रचना पद्धति अथवा कवि रचना–पद्धति दोनो कोटियो मे देखी जा सकती है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्टाइल शब्द 'लोहे की नोकदार कलम के लिए प्रयुक्त हुआ है। क्लासिकल लैटिन मे स्टाइल व शब्द का अर्थ लिखने का प्रकार और आत्माभिव्यक्ति के प्रकार मे रूढ हो गया है। इसलिए आधुनिक साहित्य मे अभिव्यक्ति की मनोहारिणी पद्धति अथवा शब्दो के

कलात्मक विन्यास के रूप मे शब्द का प्रयोग होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली एक ओर अभिव्यक्ति की प्रकारता को अभिव्यक्त करती है दूसरी ओर वैयक्तिक अनुभूतिया काव्य के शब्दो मे नवीनतम अर्थो को अभिव्यक्त करती है। अग्रेज आलोचक मिलिन्टन परे[1] के अनुसार शैली अभिव्यक्ति का वह विशेष माध्यम है जिसके द्वारा लेखक का परिचय प्राप्त होता है। लोकस के शब्दो के परिधान मे अन्तर्निहित व्यक्तित्व की सज्ञा ही शैली है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली कवि अथवा लेखक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए सम्भवत आचार्य दण्डी ने व्यक्ति–भेद से काव्य–पद्धति की अनन्ता को स्वीकार किया है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण एक ही रामायण की कथा उत्तरामचरितम् मे बालरामायण, अनर्घ राघव आदि मे भिन्न रूपो मे प्रस्तुत की गई है। सभी रचनाओ मे भिन्नता का मूलाधार वैयक्तिक भिन्नता है। कुन्तक ने कवियो के द्वारा स्वीकृत रचना–पद्धति–मार्ग को वैयक्तिक आवरण से आच्छादित करके काव्य–रचना को स्वाभाविक कारण का कार्य माना है। दण्डी और कुन्तक दोनो मे यद्यपि वैयक्तिकता की बात तो स्वीकार की है किन्तु इसकी आध ाारशिला पर विभिन्न प्रकार के रचना–धार्मिता रूप चित्र का निर्माण नही किया है। यह इसलिए किया गया है क्योकि कवि भेद की अनन्तता देखी जाती है। इसलिए दण्डी ने दो मार्ग–वैदर्भी और गौणी और कुन्तक तीन मार्ग–– सुकुमार, विचित्र और माध्यम की सत्ता की स्थापना कर कवि स्वभाव को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनके प्रयास मे अदोषता और गुणत्व का प्रतिफलन है। विश्व मे सम्पूर्ण व्यक्तियो की भिन्नता होते हुए भी इनको सीमित भागो मे विभाजित किया जाता है। उसी प्रकार आचार्यो ने भी स्वभाव अथवा मार्ग के आधार पर कवि–स्वभाव अनन्तता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह कथन शैली व्यक्ति है, सर्वथा सस्कृत साहित्य के कवियो मे भी चरितार्थ होता है। पश्चिम और पूर्व की विचारधाराए एकात्मक भिन्नता का

---

१ एफ मिडिल्टन मरे प्रोबलम आफ स्टाइल, पृ० ४

सृजन करती है। पाश्चात्य शैली मे व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार की गई है। जब कि सस्कृत साहित्य मे वस्तु तत्व की स्थापना मे वैयक्तिक अभिव्यक्ति अन्तर्निहित हो गई है।

कला सौन्दर्य की अनुपम अभिव्यजना है। इस सौन्दर्य की अभिव्यजना के लिए अनेक पद्धतियो का विकास हुआ। भारतीय कलाविदो ने कला की चौसठ सख्या स्वीकार की है। इन चौसठ कलाओ मे सम्भवत साहित्य को स्वीकार करने मे आनाकानी की गई है। भतृहरि ने तो साहित्य की कलात्मकता को डके की चोट पर स्वीकार किया है। विश्व के सम्पूर्ण साहित्य मे कला के द्वारा दो पहलुओ की अभिव्यजना होती है। ये दोनो तत्व कला के बाह्य और अन्तरिक तत्व होते है। वस्तु--निरूपण कला का आन्तरिक पक्ष तथा रेखा एव शब्दादि विन्यास कला के वाह्य पक्ष होते है। भारतीय आचार्यो ने कला के दोनो पक्षो को समान रूप से सवारने का प्रयास किया है। शब्दो मे रेखाचित्रो का और अर्थ मे शब्द चित्रो का मजुल सामजस्य उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है। सस्कृत के कवियो ने जिस सत्व की अभिव्यक्ति के लिए शब्द चित्रो का निरूपण किया है वह तत्व रसाभिव्यक्ति है। विश्व का प्रत्येक प्राणी आनन्द प्राप्ति के लिए प्रयास करता है, यह बात दूसरी है कि उसमे आनन्द--प्राप्ति के साधनो मे भिन्नता पाई जाती है। भारतीय कवियो की साहित्यिक कृतियो मे भारतीयो की चिन्तन धारा का परिपाक अन्तर्निहित है। भारतीय दार्शनिको की परमतत्व ब्रह्म का रसत्व रूप अथवा आनन्दात्मक रूप कविता की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। और प्रत्येक कवि की आनन्दात्मक आत्मा अथवा आनन्दानुभूति अथवा वैयक्तिक अभिरूचि की परिणिति अथवा स्वाभाविकता का मूर्तिमान रूप शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। ललित कलाओ चित्रो तथा सगीत आदि के लिए नैपुण्य की आवश्यकता होती है। व्यक्तिवादी नैपुण्य किसी भी अर्थ को सौन्दर्यात्मक परिवेश मे खड़ा करके दर्शक या पाठक को आनन्द की अनुभूति कराता है।

इस आनन्दानुभूति का आधार काव्य क्षेत्र मे शब्द योजना होता है। यद्यपि शब्द—सयोजना कला का बाह्य पक्ष होता है फिर भी इस वाह्य पक्ष मे रसवादी या सहृदय कवि की आत्मा जब चित्रित होती है तो कला कला न होकर अपने सौन्दर्यात्मक पहलू को अभिव्यक्ति देती है। कोई भी कला हो उसमे भावो की गम्भीरता विचारो की एकात्मक गरिमा कवि की प्रतिबिम्बित आत्मा और शैली की उत्कृष्टता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हे कला का हम दो रूपो से अध्ययन कर सकते है एक व्यष्टि रूप तथा समिष्ट रूप। कलाकार की व्यष्टिमूलक अभिव्यजना जब समष्टि रूपात्मक भावो को मूर्तमान रूप मे प्रस्तुत करती है तो कलाकार की कला लोक सीमा का उल्लघन कर साधारण सी लगने वाली वस्तु को अलौकिक बना देती है।

भारतीय कवियो की रचनाओ मे उनकी वैयक्तिक भावनाओ पर परम्पराओ का यतिकचित आरोप देखा जा सकता है। लेकिन इसे अस्वीकारा नही जा सकता कि उनकी भावमयी कला मे केवल परम्परावादी अथवा अनुकरणात्मक तत्वो का मिश्रणाधिक्य है। भारतीय मनीषियो ने यह स्वीकार किया है कि कवि की प्रतिभा किसी कामिनी की सीमा मे बधकर अपने स्वतत्र दृष्टिकोणो की हत्या नही करती। इसलिए उनकी रचनाओ मे जहा विविधता पाई जाती है वही पर शाश्वत अर्थ के प्रतिपादन की एकरूपता का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है।

पाश्चात्य काव्यमनीषियो ने स्टाइल अथवा शैली को जिस रूप मे देखा है उसमे भी उनकी भौगोलिक मान्यता अथवा सास्कृतिक मान्यता अथवा चिन्तन की नवीनता का प्रतिरूप देखा जा सकता है। प्लेटो ने काव्य भाषा की सहजता विचित्रता और मिश्रिता की जिस रूप से व्याख्या की है उसका प्रतिबिम्ब कुन्तक के तीन मार्गो सुकुमार विचित्र और मध्यम मे देखा जा सकता है। दोनो चिन्तको मे भाव तत्व के निर्माण के लिए वैयक्तिक तत्व की प्रधानता का नियमन देखा जाता है।

प्लेटो के पश्चात अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र मे रीति के मूलत दो भेदो की स्वीकृति दी है। उन्होने साहित्यिक और बादात्मक– जिन्हे हम पद शैली और गद्य–शैली कह सकते है रूपो की कल्पना की है। अरस्तू के अनुसार शैली के लिए दो गुण स्पष्टता और औचित्य दो गुणो को स्वीकार किया गया है। इन्ही शैलियो की निर्दोषत के लिए चार प्रकार के दोषो से मुक्त रहने की शिक्षा प्रदान की है। ये दोष है–समासो का अधिक प्रयोग और अप्रयुक्त शब्दो का व्यवहार विशेषण का अधिक आडम्बर दुरूद्ध रूपो का प्रयोग।

अरस्तू की स्पष्टता मे सज्ञाओ और क्रियाओ के प्रयोग मे सामान्यता वर्णित है और गरिमा नामक गुण मे सामान्य प्रयोगो की भिन्नता पर बल दिया गया है। अरस्तू की यह शैली–विवेचना कुन्तक के औदात्य आदि गुणो की स्वीकृति को अभिव्यजित करती है। अरस्तू ने कथ्य के अभिव्यक्ति के प्रकार पर विशेष बल दिया है। यह सम्पूर्ण विवेचन भारतीय रीति विवेचनाओ मे प्राप्त होते है। भारतीय रीति–विवेचना मे भिन्न–भिन्न रसो की अाीव्यक्ति के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की रचना–पद्धति स्वीकार की गई है। अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित शैली के दोष किचित या अधिक रूप मे भारतीय काव्यशक्तियो ने अपने काव्यशास्त्रो मे स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। अगर यह देखा जाए तो अरस्तू के शैलीगत सारे दोष गौणी मार्ग की असयत्ता मे देखे जा सकते है।

डिमेट्रियस ने अपने 'आन दी स्टाइल (on the style) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ मे रीति के चार भेदो को प्रसन्न मसृण (Polıched) उदात्त (Staley) और ओजस्वी (Powerful) भेद माने है। डिमेट्रियस ने जो शै–भेद प्रस्तुत किया है उनमे इन्होने फीलोडेमस के द्वारा प्रतिपादित तीन भेदो की ज्यो का त्यो ले लिया है। और उसमे एक नये भेद को जोड दिया है। डिमेट्रियस के अनुसार प्रसन्न शैली के मूल तत्व असमानता है क्योकि इसमे विशिष्ट तथा विचित्र शब्दावली समास, अलकार तथा काव्यरूढ भाषा का वाहुल्य देखा जाता है।

मसृण शैली मे शोभा और कान्ति का बाहुल्य होता है उदात्त शैली मे स्पष्टता और सरलता देखी जाती है अतएव इसमे नित्य प्रति भाषा का प्रयोग होता है। डिमेटियस ने इन चारो के विपरीत चार दुष्ट रीतियो शिथिल नीरस और कृीतम है। डिमेट्रियस की इस शैली को भारतीय काव्यशास्त्र मे वर्णित वैदर्भी आदि मार्गो मे अन्तर्भूत किया जा सकता है। डिमेटियस की मसृण शैली पाचाली की अनुकृति है। इनकी प्रसन्न शैली कुछ सीमा तक वैदभी का पर्याय नही तो वैदर्भी के कुछ अशो को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। दूसरे शब्दो मे यदि और थोडी सूक्ष्म विवेचना की जाए तो यह कहा जा सकता है। डिमेट्यिस की ये शैलिया मम्मट आदि आचार्यो के द्वारा स्वीकृत उपनागरिका और कोमला के अधिक सन्निकट है डिमेटियस की शैली विवेचना मे आनन्दवर्धन की भार्ति पदावली एव वर्णो की योजना तथा समास—वृत्ति का भी विचार देखा जाता है। सिसरोदे एटिक और एशि-याटिक नामक दो शैलियो की विवेचना से काव्य की सहजता और कृत्रिमता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनकी एटिक शैली मे सहजता सरलता स्वच्छता यथार्थता तथा अनलकृतता का समावेश वणित है। एशियाटिक शैली मे अतिशय अलकृत तथा चमत्कारपूर्ण वणान का बाहुल्य है। सिसरो की इस शैली विवेचना को वैदर्भी और गौणी रीति के फ्रेम मे कसा जा सकता । सिसरो का शैली विवेचन व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित है जिस प्रकार दण्डी ने व्यक्ति भेद से शैली की अनन्त भेदता स्वीकार की है। उसी प्रकार सिसरो ने भी व्यक्तित्व भेद से शैली—भेद को स्वीकार किया हे। सिसरो के शैली—विवेचन मे जिस औचित्य विषय और उद्देश्य की नियामिकता की चर्चा की गई है उसका सुसगठित रूप आनन्दवर्धन की सघटना के लिए स्वीकृत वक्ता वाच्य, विषय बोधक रसादि के औचित्य वर्णन मे देखा जा सकता है। रोम के प्रसिद्ध रीतिशास्त्र के प्रणेता होरस ने अपने ग्रन्थ आर्स पोमटिका ने शब्द—चयन शब्द योजना का विश्लेषण करते हुए भारतीय वैदभी रीति के स्वर मे स्वर मिलाते हुए उन्होने समासविहीन और कोमल शब्दो के प्रयोग पर बल दिया है। होरस

की शब्द योजना– जो शैली का प्रमुख तत्व है। कुन्तक के बन्ध विवेचन मे अन्तर्भूत किया जा सकता हे। उनकी स्पष्टता रूप शैली का गुण भारतीय काव्यशास्त्र के किसी भी पृष्ठ मे देखा जा सकता है। अमनोसियस का रीति–विवेचन प्लेटो और सिसरो की रीति–विवेचना की अनुकृति मात्र प्रतीत होती है। इन्होने व्यक्तितत्व और शैली तत्व दो रूपो से शैली–विवेचना प्रस्तुत की है। नकी शैली मे व्यक्तित्व की– अभिवेयक्तिकता पद–रचना की नियामकता को तिरस्कृत करती हुई प्रतीत होती है। व्यक्तित्व की अपेक्षा शैली के नियामक तत्व विषय और भाव का औचित्यपूर्ण गुफन काव्य को उत्कृष्टतम बना देता है। इनके शैली–तत्व मे शुद्धता स्पष्टतया और समास–गुणता का प्राधान्य देखा जाता है। इस प्रधानता मे आनन्दवर्धन की सघटना विवेचना की झलक दिखाई पडती है। डायनोसियस मे व्यक्ति की नियामकता आनन्दवर्धन की अपेक्षा अधिक है। स्पष्टतया समास आदि गुणो का विवेचन भारतीय आचार्यो के प्रसाद आदि गुणो की विवेचना से साम्य रखता है। डायनोसियस के कोमल, उदात्त और मित्र गुण कुन्तक के सुकुमार आदि मार्ग मे अन्तर्भूत किए जा सकते है। इनकी पद–योजनात्मक स्वरूप वामन की विशिष्ट पद रचना रीति और आनन्दवर्धन के पद–वाक्य सन्निवेश रूप रचना विधान के रूप मे वर्णित हुआ है।

शोपेन हावर ने सहज और आडम्बरपूर्ण जिन दो प्रकार की शैली की विवेचना की है वे दोनो शैलिया दण्डी की वैदर्थ और गौणी मार्गो मे अन्तर्भूत की जा सकती है। लाजायिन्स ने शैली की विवेचना करते हुए बताया कि धारणा की भव्यता भावना की तीव्रता अलकारो का उपयुक्त प्रयोग भाषागत आभिजात्य तथा पद–रचना का औदार्य ही शैलीगत विशेषताए है। भारतीय काव्यशस्त्रियो के सिद्धान्त मे इनका सिद्धान्त अन्तर्भूत है। कुन्तक के आभिजात्य गुण पद–रचना की गरिमा वामन आदि आचार्यो के द्वारा औदार्य, कान्ति तथा श्लेषादि गुणो मे लाजाइन्स के शैलीगत सिद्धान्त अन्तर्भूत हो जाते है।

क्विण्टीनियल के अनुसार शैली एटिक एशियाटिक और रोडियन नामक तीन शैलिया होती हे इन शैलियो मे शब्द—चयन अलकरण तथा पद—रचना का वैशिष्ट्य देखा जाता है। क्विण्टीमल की दो शैलिया सिसरो की अनुकृति मात्र है जिन्हे वैदर्भी और क्विण्टीमल गोणी रीतियो मे देखा जा सकता है। रोडियन शैली भौगोलिक सीमा को अभिव्यक्त करती है। अर्थात रोडस डील के कवियो की पद्धति को रोडियन शैली कहा गया है। क्विण्टीनियल के द्वारा स्वीकृत शब्द चयन अतण्करण और पद—योजना रूप तीन तत्वो मे से प्रथम तत्व को वैदर्भी के माधुर्य गुण मे अपना कुन्तक के द्वारा स्वीकृत सुकुमार मार्ग के माधुर्यादि गुणो मे अन्तर्भूत किया जा सकता है। यह शैली हमारे भारत देश के विदर्भ देश के लोगो की शैली की भाति ही एटिक शैली भौगोलिक सीमागत वैशिष्टय को अभिव्यक्त करती है उसी प्रकार गौणी गौण देशी लोगो के शैली की भाति एशियाटिक शैली है। इस शैली का अलकरण रूप तत्व कुन्तक के विचित्र मार्ग मे अनुस्यूत हो जाता है। तीसरा तत्व पद योजना कुन्तक के मध्य मार्ग के मिश्रित गुणो का प्रतिबिम्ब रूप है। क्विण्टीनियल की तीसरी शैली भारत की पाचाली रोतिही है। विनचेस्टर का रीति—विवेचन कुन्तक के मार्ग विवेचन से मिलता जुलता है जैसे कुन्तक ने दो प्रकार की प्रवृत्तिया सुकुमार और विचित्र होती है उसी प्रकार विनचेस्टर ने कवियो की मूलत दो प्रवृत्तियो सहज और अलकारप्रिय का उल्लेख किया है। विनचेस्टर का यह विवेचन कुन्तक के मार्ग का स्मरण दिलाता है।

दाते ने काव्यशैली की विवेचना करते हुए उन्होने शैली अथवा रचना के चार भेद किए है—

१ रूचि विहीन

२ केवल सुरूचिपूर्ण

३ सुरचिपूर्ण तथा सुन्दर

४ सुरूचिपूर्ण, सुन्दर तथा उदात्त।

दाते के इस वर्गीकरण मे सिसरो डायनोसियस आदि का अनुकरण मात्र प्रतीत होता है। दाते का केवल सुरुचिपूर्ण शैली परम्परागत प्रसन्न शैली की उच्छिष्टता की अभिव्यक्ति मात्र है। दाते का शैली–विवेचन भारतीय रीतिशास्त्र की वैदर्भी की समस्त गुणो मे देखा जा सकता है।

बेन जानसन यूरोप की स्वर्णयुगी विचार धारा की उपज है। इन्होने शैली के जिन गुणो की विवेचना की है उन्होने मानव–शरीर का रूपक प्रतिबिम्बित किया है। वेन जानसन ने जिन चार शैलियो सक्षिप्त शैली समस्त शैली व्यस्त शैली और समन्वित शैली की विवेचना की है उनमे प्राचीनता का अभाव होने के कारण नवीनता की अभिव्यक्ति है। बेन जानसन ने उदात्त क्षुद्र और मध्यम भेद से जो शैली की विवेचना प्रस्तुत की है उसमे प्राचीनता का सामजस्य है। वस्तुत बेन जानसन की शैली विवेचना मे केवल नवीनताभास ही है उनकी सक्षिप्त और समस्त शैली केवल विभेद मात्र को प्रतीत करती है। क्षुद्र शैली तो काव्यदोषो की निर्णायिका है। मध्यम और उदात्त शैली मे प्राचीनता का नवीन चित्रमात्र है। इन सम्पूर्ण शैलियो की रूपरेखा भारतीय आचार्यो के गुण–विवेचन और सामासिक सघटनाओ मे देखी जा सकती है।

नव्यशास्त्रवादी मे पोप ने दो प्रकार की शैली–अशुद्ध और शुद्ध की विवेचना की है। अशुद्ध शैली मे वाञ्जाल रहता है शुद्ध शैली मे सूर्य प्रकाश की सी पदार्थो को स्पष्ट करने की क्षमता रहती है। पोप की दृष्टि मे केवल कर्णप्रिय वर्ण–मुफ्फन काव्यजन्य आनन्द को प्राप्त कराने मे सक्षम नही हो सकते। शब्दो मे आर्धाभिव्यक्ति की रहने वाली क्षमता ही काव्य के वास्तविक आनन्द को प्राप्त करा सकती है। पोप के केवल मनोहर वर्ण–गुफन की निन्दा भामह की उक्ति मे देखी जा सकती है।[१] अट्ठारह शती के अन्त तक काण्ट शैली आदि दार्शनिको ने पदार्थो को नए ढग से देखने की दिशा प्रदान की है।

१– अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजुकोमलम्।
भिन्नगेयमिवेद तु केवल श्रुतिपेशलम् ।। –भामह – १/३५ काव्यालड्कार

इनकी दृष्टि मे ज्ञान सापेक्ष वस्तु की सत्ता है। इसका प्रभाव यह पडा कि कविता का वाह्य पक्ष उसके अर्न्तपक्ष के सौन्दर्य की साधना मे जलकर भस्म हो गए। वर्डसवर्थ की दृष्टि मे कविता की भाषा व्यक्ति की मातृभाषा होनी चाहिए। वर्डसवर्थ का वह सिद्धान्त सार्थक नही है। क्योकि व्यक्ति की अभिरुचि और अध्ययन की क्षमता तथा उसका परिवेश ही भाषा का निर्माण करता है इसलिए वर्डसवर्थ के सिद्धान्त मे केवल व्यर्थ की कल्पना है।

वर्डसवर्थ की गद्य और पद्य विवेचना भारतीय साहित्यिक विवेचना से भिन्न नही है। सस्कृत साहित्य मे गद्य और पद्य दोनो की साहित्यिकता स्वीकार की गई है।

बीसवी शताब्दी मे यूरोपीय आलोचनाशास्त्र कुछ नवीन कल्पनाओ के साथ प्रादुर्भूत हुआ। पेटर ने शैली के जिन मूल दो तत्वो—मस्तिष्क और आत्मा की चर्चा की है उसे भारतीय सिद्धान्त के बुद्धि—पक्ष और हृदय—पक्ष के साथ जोडा जा सकता है। बाल्टर रेत ने शैली की विवेचना के प्रसग मे बताया कि अर्थ के लिए शब्द—चयन और शब्द के लिए अर्थ चयन करना ही साहित्य का कार्य है। इनका यह सिद्धान्त कुन्तक के साहित्य के समीप है। इन्होने शैली के अन्तरिक तत्व निश्च्छन्ता, सयमन आत्म—निषेध आदि तत्व की मीमासा के प्रसग मे इसके वाह्य तत्व—नाद— गुण चित्रगुण तथा अर्थ गुण की विवेचना की है और इन तत्वो मे निश्छलता तथा सयमन वैयक्तिक तथा किचित सामान्य को अभिव्यक्त करता है। शब्द—गुण आदि तो शब्दो की सम्पदा है जिसका वर्णन वामन से लेकर मम्मट के गुण—विवेचन मे देखा जा सकता है।

क्रोचे के अभिव्यजनावाद ने कला की व्याख्या करते हुए बताया कि कला और काव्य अभिव्यजना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अभिव्यजना वाद का प्राण तत्व उक्ति सौन्दर्य है। यह अभिव्यजनावाद अखण्डात्मक होने के कारण गुण और अलकार के कारण खण्डित नहीं किया जा सकता। रीतिवाद तथा अभिव्यजनावाद की विषमता सखण्ड और अखण्ड व्याख्यात्मक

पहलू को लेकर है। क्रौचे का अभिव्यजनावाद हमारे भारतीय सिद्धान्त के अखण्ड स्फोटात्मक विवेचन का प्रतीय है। काव्य एक ध्वनिरूप है। उसी ध्वनि की अभिव्यक्ति के लिए वर्ण पद और समास को सदा काव्यात्मक वेष मे अखण्डता का प्रतिपादन करती है। क्रोचे का अभिव्यजनावाद कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है तथा इसमे काव्यात्मक अखण्डता है।

यूरोपीय शैली–विवेचना के क्षेत्र मे प्रो मररी स्टीवेन्सन वाल्टर रेले आदि विद्वानो ने भी शैली के ऊपर अपनी लेखनी चलाई है। पश्चिम के शैली–विवेचन की यदि मीमासा की जाए तो यही ज्ञात होता है कि उनकी शैली–विवेचना मे वैयक्तिक अभिव्यजना अखण्डात्मक अभिव्यजना और कला की उत्कृष्टता के लिए निर्पेक्ष विवेचना की रूपरेखा प्रस्तुत की है। वैयक्तिक अभिव्यजना कवि वैयक्तिक छाप को कविता मे इस प्रकार उपस्थित करती है कि सम्पूर्ण कविता मे कवि का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। दण्डी ने तो व्यक्ति–भेद से शैली भेद की बात तो की है किन्तु इसकी विवेचना प्रस्तुत नही की है। कुन्तक ने स्वभाव के आधार पर मार्ग की जो विवेचना की है वह पूर्णत वैयक्तिक अभिव्यजना का मापक तो नहीं है। किन्तु उसमे कवि की वैयक्तिकता की छाप स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। पश्चिम की अभिव्यजना भारतीय रीति का पर्याय है।१ १– यद्यपि अभिव्यजनात्मक रीति वामनादि की रीति–विवेचना की पूर्णताअनुकृति तो नहीं है फिर भी कुछ सीमा तक दोनो की एकरूपता देखी जा सकती है। शैली का तीसरा रूप–निर्देक्ष रूप है जिसमे वैयक्तिक और सामान्यात्मक तत्वो का पूर्ण समजित रूप है। इस प्रकार का विवेचन आनन्दवर्धन की सघटना आदि वर्णन मे देखा जा सकता है।

पाश्चात्य रीति–कवि की वैयक्तिक भावो को प्रमुखता देती है। इसलिए पाश्चात्य रीति–विवेचना वस्तुपरक न होकर आत्म–परक है। भारतीय विचारको ने वस्तु की प्रधानता इसलिए दी है कि क्योकि सहृदय की अनुभूति साधारणीकरण को प्राप्त होती है। यदि वैयक्तिक दृष्टिकोणो का प्रतिबिम्बित

काव्य मे किया जाय तो भी वस्तु के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती। वस्तु की स्थूलात्मा सूक्ष्म की अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि है। इसलिए भारतीय चिन्तको ने काव्य के वैयक्तिक सत्ता की स्थापना मे गौणता ही दिखलाई है। पाश्चात्य रीति कवि–स्वभाव या काव्य की वैयक्तिकता की उद्घाटयित्री विशेषता को अभिव्यक्त करने के कारण शैली के नाम से जानी जाती है। भारतीय शैली शब्द की प्राचीनता का अपलाप नही किया जा सकता।

प्राचीन शैली जिस अर्थ मे प्रयुक्त होती है। उसी अर्थ को आज भी अभिव्यक्त करती है। किन्तु कालान्तरता के कारण अर्थान्तरता की अभिव्यक्ति को ठुकराया नही जा सकता। शैली की वैयक्तिकता सामूहिक शैली की अभिव्यक्ति होती है। यद्यपि व्यक्ति–वैशिष्टय उसके कार्यो मे भिन्नता सम्पादित करता है तथापि सामान्य रूप से समूह को अभिव्यक्त करता है। इसलिए वैयक्तिक अनन्ता भी किचित सीमाबद्ध होकर कुछ सख्या मे विभक्त होकर ही अभिव्यक्त करती है ऐसा नही है कि वह केवल व्यक्ति से हटकर किसी वस्तु के लिए ही समर्पित हो। आधुनिक शैली आज जिस अर्थ मे प्रतीत होती है उसका सम्बन्ध विवेचना से कम वैज्ञानिकता से अधिक है।
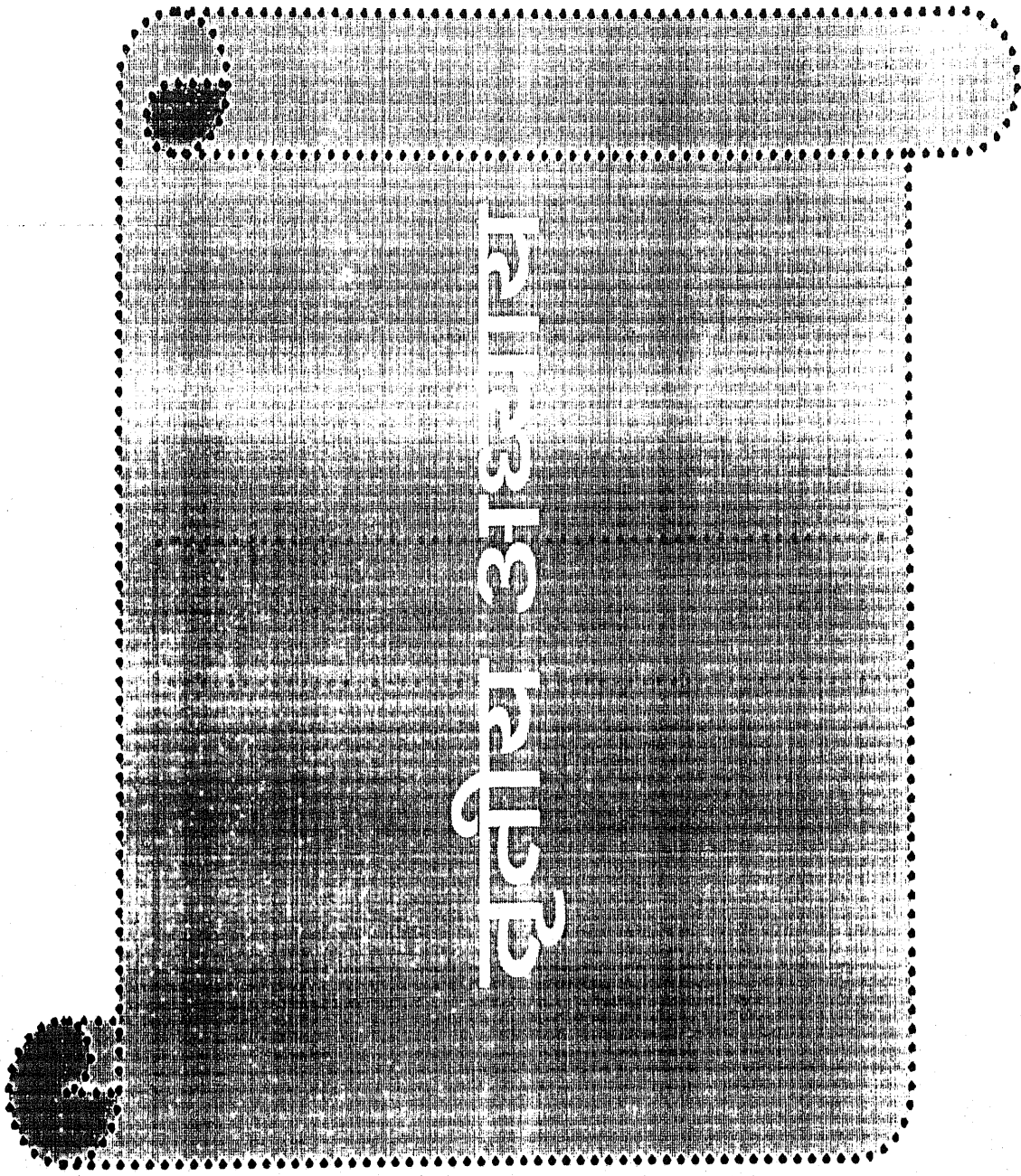
तृतीय अध्याय

'लघुत्रयी का परिचय

वैदिक साहित्य की सर्जना के पश्चात् लौकिक साहित्य की वासन्ती सुषमा ने सस्कृत साहित्य के कण–कण मे मादकता आह्लादकता और तन्मयता का रस भर दिया है। इसके रसात्मक सौन्दर्य को देखकर सम्पूर्ण विश्व के सहृदय विद्वान् आत्मविभोर हो जाते है। सस्कृत साहित्य की सम्पूर्ण विधाओ मे इसका काव्यात्मक स्वरूप जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वो को प्रकृति के कण–कण मे ढालकर इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि ससार के दावानल से परितप्त मानव मन कल्पनातीत आनन्द को प्राप्त करता है। कालिदाससे पूर्व प्रमुखत रामायण महाभारत एव भास के नाटको का प्रभुत्व था, इन्होने अपनी लेखनी से साहित्य मे रसमयी धारा का सृजन किया जिसने सम्पूर्ण विश्व को आनन्द सरिता मे मज्जित कर हिमालय की तरह ऐसे अद्वितीय मापदण्ड की स्थापना की जो पृथ्वी के सम्पूर्ण साहित्यिक कृतियो को अनायास ही नाप रहे है।

सस्कृत साहित्य मे कुछ ऐसे महाकाव्य है जिनमे इतिवृतान्तता का प्राधान्य रहा है, जैसे रामायण एव महाभारत। कुछ ऐसे महाकाव्यो की सर्जना हुई जिसकी इतिवृत्तात्मक लताओ मे काव्यात्मक सौन्दर्य के सुरभित सुमन भरे हुए है– जैसे रघुवश सौन्दरनन्द आदि। तीसरे ऐसे काव्य जिनके शब्दो के प्रत्येक कण मे रागात्मक भावो की मद्माती सुरभि भरी हुई है। इस प्रकार के काव्य पाठक को अपने रसात्मक भावो मे अन्तर्भूत कर लेते है। इस प्रकार के काव्य मेघदूत ओर गीतगोविन्द है ऐसे काव्य मे इतिवृत्तात्मकता की गौणता तथा भावो की प्रधानता रहती है। चौथे प्रकार के महाकाव्य अलङ्कार प्रधान महाकाव्य होते हैं इनमे कथात्मकता, अर्थात इतिवृत्तात्मक भाव अलङ्कारो

के बोझ से इतने तिरोहित हो जाते है कि सम्पूर्ण महाकाव्याकाश मे केवल अलङकारो की तारावली दिखाई पडती है। इस प्रकार के महाकाव्यो मे किरातार्जुनीयम् शिशुपालबधम् नैषधीयचरितम और रत्नाकर कृत हरविजय है।

रघुवश

रघुवश कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमे उनकी परिपक्व प्रज्ञा एव प्रौढ प्रतिभा के दर्शन होते है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल मे निर्मित ४० टीकाओ के अस्तित्व मे मिलता है। इसलिये सस्कृत के ग्रन्थकारो एव शुभाषितकारो ने कालिदास को **'रघुकार'** के नाम से उल्लखित किया है। रघुवश मे १६ सर्ग तथा २६ सूर्यवशी राजाओ का यशोगान है। राजाओ मे रघु नामक राजा बडा प्रतापी तथा दानशील हुआ। उसी के वशधर राजाओ का काव्यमय वर्णन इस काव्य मे किया गया है जिसमे मर्यादा पुरूषोत्तम राम भी हुए। इसी से इस काव्य का नामकरण 'रघुवश पडा।

कालिदास के रघुवश काव्य की विशालता तथा काव्यात्मक चारूता रघुवश की विशेषता है। रघुवश नाम ही काव्य की सम्पूर्ण विजय सामग्री को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है जैसे सहस्त्र–रश्मि शब्द सूर्य के सम्पूर्ण विशेषताओ को अभिव्यक्त करता है। रघुवश नाम रघुकुल के सम्पूर्ण राजवश के सच्चरित को अभिव्यक्त करने वाला है। कवि की दृष्टि मे रघुवश का चरित्र पूनम की चन्द्रमा की वह ज्योत्सना है जिसके आलोक से दिग्दिगन्त आलोकित हुआ है।

रघुवश की रचना ने कालिदास की उन मानवीय चारित्रिक उत्कर्ष तथा जीवन की विभिन्न परिस्थितियो के विलास को इस प्रकार से चित्रित किया है जिसके एक–एक शब्द मे जीवन की गहराई प्रतिविम्बित हुई है।

दिलीप से प्रारम्भ होने वाली तथा कथा का वीज अङ्कुरित पल्लवित पुष्पित होकर जब अपने सौरभ को विखेरता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि रघुवश की कथा मे पारिजात नामक पुष्प की अलौकिक सौरभ की मादकता है। और इस कथा की परिणति के लिये अग्निवर्ण नामक राजा उपस्थित होता है तो सुरभित पुष्पो के भार से नमित रघु की कथा रूपी लता पर प्रलय कालीन अग्नि की वर्षा हो जाती है। अग्निवर्ण का नित्ध चरित्र चित्रण सम्पूर्ण रघुवश के यशस्वी चन्द्रमा के लिये राहु बन जाता है।

अग्निवर्ष का चरित्र उस विलासी कामी लम्पट और धूर्त का चरित्र है जिसमे मानवता कराहती हुई दिखाई पडती है। अग्निवर्ण के चरित्र वर्णन से कवि ने अत्यन्त बुद्धिमानी पूर्वक प्राकृतिक यथार्थ का वर्णन करते हुए मानव को कान्तासम्मित शिक्षा देने का सफल प्रयास किया है। पूर्वदिशा की दिग्वधू की माग को अरूणिम करने वाला सहस्त्ररश्मि जिस प्रकार निशा के श्यामल परिधान मे अन्तर्निहित हो जाती है उसी प्रकार तपस्या और धर्म के मूर्तिस्वरूप दिलीप की तपस्या से उत्पन्न होने वाला रघुकुल का नाश हो जाता है। यह एक प्राकृतिक सत्य है कि सर्जना की लता प्रलय की गोद मे झुलस कर राख हो जाती है। दूसरा शाश्वत सत्य यह है कि मानव जीवन पाशविक आचरण से मानवता को नही प्राप्त कर सकता। मनुष्य की मनुष्यता तभी जीवित रह सकती है जब मानव मे त्याग, तपस्या, परोपकार की भावना के लिये सर्वस्व का त्याग, प्रजा की सुरक्षा के लिये जीवन के सर्वस्व का परित्याग करना शौर्य शालीनता आदि गुणो की उतनी ही आवश्यकता है जितना जीवन के लिये प्राण की। अग्निवर्ण राजा ने सम्पूर्ण मानवीय गुणो को तिलाञ्जलि देकर जिस काम सरोवर मे स्नान करना प्रारम्भ कर दिया उसमे सदा—सदा के लिये स्वकीय वश की प्रतिष्ठा सहित विमज्जित हो गया।

रघुवश एक अद्वितीय महाकाव्य है। महाकाव्य के लिये जिन तत्वो की आवश्यकता होती है उन सभी तत्वो को कालिदास ने अपने कलात्मक

सूत्र मे पुष्प की भॉति पिरो करके मनोहारिणी माला बना दी है। जिसे देखकर यही प्रतीत होता है कि इस माला की निर्मित किसी देवी प्रतिमा से हुई है। रघुवश के उन्नीस सर्गो मे जिस प्रकार कथाओ का गुम्फन किया गया है उसमे उनकी चतुष्कोणात्मक प्रतिभा देखी जा सकती है।

प्रथम सर्ग मे वर्णित सच्चरित्र दिलीप की द्वितीय सर्ग मे गुम्फित की गयी गौ सेवा तृतीय सर्ग मे दिलीप के राज्य को अलकृत करने के लिये तथा सुदक्षिणा रूपी ऊषा की सूनी गोद भरने के लिये रघु रूपी सूर्य को उत्पन्न करती है। यहॉ तक कवि द्वारा ऐसी भूमिका प्रस्तुत की गयी है जिसमे गो सेवा की महत्ता के साथ–साथ श्रुति एव स्मृतियो की मर्यादाओ की सुरक्षा की गयी है इसी अर्थात तीसरे सर्ग के अन्त मे सुदक्षिणा सहित दिलीप तपोवन मे जाकर जीवन की अधूरी तपस्या को पूर्ण करने का प्रयास करते है। कालिदास की दूसरी भूमिका चौथे सर्ग से आठवे सर्ग तक देखी जा सकती है। चतुर्थ सर्ग का उत्कर्ष रघु के दिग्विजय से अलङ्कृत है। पचम सर्ग मे भारतीय सस्कृति की चिरन्तन आत्मा रघु के दानशीलता के चित्रो मे चित्रित की गयी है। एक राजा का राजसिहासन सरस्वती के सेवक कौत्स के सामने झुक जाता है। राजा विद्या की अखण्ड ज्योति के समक्ष अपनी राज्य की दीप प्रभा को इतना तुच्छ समझता है कि कौत्स की स्वय पूजा करने वाला रघु कौत्स की तुच्छ इच्छा को पूर्ण करने के लिये कुवेर पर आक्रमण करने के लिये तैयारी कर देता है। कालिदास के पचम सर्ग मे एक ओर दानशीलता की गगा बहती है तो दूसरी ओर रघु की शूरवीरता का यमुना, जो सरस्वती की उपासना के लिये जीवन के उच्च आदर्श के प्रयास मे आकर मिलती है।

कवि का षष्ठम् एव सप्तम् सर्ग कवि की कलात्मक एव रागात्मक भूमिका का सुन्दर समन्वय है। रघु का पुत्र अज, राजा ही नहीं वह सम्मोहन

विद्या का निष्णत धनुर्धर है। मन्मथ के हृदय इस धनुर्धारी के समक्ष इन्दुमती रति की भॉति उसी प्रकार अज के हृदय मे अन्तर्निहित हो जाती है जैसे माधवी लता रसाल की शाखाओ मे इन्ही सर्गो मे कवि ने मानवीय प्रकृति के साथ–साथ वाह्य प्रकृति के जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है। उसमे भौगोलिकता वासन्ती परिधान मे लिपटी हुई नवयौवना के विलास को प्रस्तुत करती है।

आठवा सर्ग कवि का वह सर्ग है जिसमे करूणा की अजस्र धारा प्रवाहित होती है। इस धारा मे पाषाण हृदय भी पिघल जाता है। इन्दुमती की मृत्यु और अज के विलाप की सवेदना की ऐकान्तकिता विखण्डित होकर के जिस साधारणीकरणता को प्राप्त होकर रस की सवेदनात्मक भूमिका उपस्थित करती है उसकी कल्पना केवल कालिदास की लेखनी ही कर सकती है।

नवे से लेकर पन्द्रहवे सर्ग तक कालिदास की तीसरी भूमिका उपस्थित होती है। जिसमे मर्यादापुरूषोत्तम राम का चरित्र चित्रण किया गया है। रघुवश मे राम का चरित्र वाल्मीकि रामायण की अनुकृति मात्र नही है। राम का चरित्र कालिदास की कल्पनाओ का नवीनतम चित्र प्रतीत होता है। राम की कथा की कलात्मक भूमिका जीवन की यथार्थता ओर आदर्शता को प्रस्तुत करने मे तत्पर हुई है। गर्भिणी सीता का परित्याग राम की हृदयहीनता का भले ही परिचायक हो लेकिन इस परित्याग मे वर्णाश्रम तथा धर्म की रक्षा का भाव है। सीता ने जिस भावात्मक सदेश देकर लक्ष्मण को दूत बनाया है उसमे नारी हृदय की विवशता किचित आदर्श का आवरण ओढे हुई खडी है। सास्कृतिक मान्यता श्रुति स्मृति के परिपालन की आवश्यकता है। कालिदास की चतुर्थ भूमिका सोलहवे सर्ग से प्रारम्भ होकर के उन्नीसवे सर्ग मे समाप्त होती है। सोलहवे सर्ग मे राम के पुत्र के विवाह के प्रसङ्ग मे एक और अयोध्या की दुर्दशा का मर्मान्तक वर्णन किया है, और

दूसरी ओर कुश के जल विहार के वर्णन मे कवि ने अपनी कलात्मक भूमिका के साथ राजा की काम विलासिता का चित्र उपस्थित किया है।

सत्रहवे सर्ग मे कुश के पुत्र अतिथि का चरित्र चित्रण १८ वे सर्ग की भूमिका मात्र है। १८वे सर्ग मे इक्कीस राजाओ का वर्णन मात्र है।

रघुवश का उन्नीसवॉ सर्ग जहॉ एक ओर अग्निवर्ण के उद्दाम कामक्रीडा को प्रतिबिम्बित करता है वही दूसरी ओर इस बात का सकेतक है कि कोई नृपति यदि स्वकीय कर्तव्य मार्ग का परित्याग कर केवल विलासात्मक सरोवर मे डूवा रहता है तो उसका नाश उसी प्रकार होता है। जैसे रजनी के कुन्तकलाप छूने की लालसा मे सूर्य का नाश हो जाता है। रघुवश की कथात्मकता की काव्यता पर विचार किया जाए तो यह वात स्पष्ट हो जाती है कि कालिदास की कृत्तियो मे जैसी काव्यात्मकता कुमारसम्भव मेघदूत अभिज्ञानशाकुन्तलम् मे मिलती है उसका रघुवश मे अभाव है। यद्यपि कालिदस ने स्वत कहा है **''रघुणामन्वय वक्ष्ये''** अर्थात रघु के वश का वर्णन मै कर रहा हूँ फिर भी इस वर्णन मे इतनी कथाओ की भरमार है कि सबमे एकरूपता की अभावात्मकता है। काव्यात्मक कथा जब विस्तारता तथा विविधिता को प्राप्त हो जाती है तब कथा प्रवाह पुष्प की नोची गयी पखुडियो का समन्वय प्रतीत होता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान 'राइ्डर का कहना है कि प्रस्तुत काव्य मे एकसूत्रता का अभाव है तथा उसका कथानक रूपविहीन एव असम्वद्ध है। इसके अतिरिक्त दसवे से लेकर पन्द्रहवे सर्ग तक की कथावस्तु मे राम का आख्थान वर्णित है। एक महाकाव्य के अन्तर्गत एक अन्य महाकाव्य के समान प्रतीत होता है।[१] यद्यपि **रामास्वामी ने राइडर** के इस मत का खण्डन किया है फिर भी उस सत्य को मिथ्यायित नही किया जा सकता है कि रघुवश के

---

१ महाकवि कालिदास–रमाशकर त्रिपाठी सदृर्श क्षत्रियो तापि पृ ६३

आकाश मे कथाओ की तारावली झिलमिलाती रहती है। कथा का नायक फल का भोक्ता होता है। रघुवश मे नायकत्व की समस्या का समाधान करना केवल हठवादिता का प्रदर्शन मात्र है।

राम अथवा रघु को नायक मानना फलभोक्तता के रूप नायक के साथ अन्याय करना है। वस्तुत रघुवश पर अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्द का प्रभाव प्रतीत होता है। सौन्दरनन्द की प्रतिस्पर्धास्वरूप मे रघुवश की रचना हुई है। अश्वघोष ने जिस निवृत्तिमार्ग को श्मशान की राख से कविता कामिनी की मॉग को अरूणिम करने का प्रयास किया कालिदास ने इसके विपरीत प्रवृत्तिमार्ग के सिन्दूर की अरूणिमा से कविता कामिनी की माग को सौभाग्य से भर दिया वस्तुत कालिदास ने रघुवश मे वहुनायकत्व की स्थापना की है सम्भवत रघुवश को ही ध्यान मे रखकर विश्वनाथ ने महाकाव्य के लिये विकल्प से वहुनायकत्व की व्यवस्था को स्वीकार किया है।[1] रघुवश की कथा खण्ड रूप मे उपस्थित तो होती है किन्तु इसके प्रवाह को विच्छिन्न नही होने देती कवि ने —

सदृश क्षत्रियो वापि धोरादात्तगुणान्वित ।

एकवशभवा भूपा कुलजा वहवोऽपि वा।।

सा०द० विश्वनाथ पृष्ठ ३१६

रघुवश कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप मे सर्वोत्तम निदर्शन है। कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पद—पद पर परिलक्षित होता है। एक ओर भावो का सौन्दर्य तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार एक ओर भाषा मे प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर अलङ्कारो की अनुपम छटा। एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी ओर व्यङ्ग्यार्थ का अपूर्व सयोजन।

---

१ "क रह रघुकारे न रमते"

एक ओर सभोग श्रृड्गार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ श्रृडगार की मार्मिक अनुभूति। एक ओर वाह्य प्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी ओर अन्त प्रकृति का तात्विक विश्लेषण। एक ओर अज इन्दुमती के प्रगाढ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता परित्याग का मार्मिक दृश्य। एक ओर दिलीप आदि का तपोमय जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयाशक्ति। एक ओर राजा का आदर्श और उसकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी ओर प्रजा की राज भक्ति। एक ओर राजतन्त्र का महत्व है तो दूसरी ओर प्रजा की राजभक्ति। एक ओर राजतन्त्र का महत्व है तो दूसरी ओर प्रजा मे विचार स्वातन्त्रय। इस प्रकार रघुवश विविध विरोधी गुणो का समन्वय है। कहीं दार्शनिक पाण्डित्य का प्रदर्शन है तो कही काव्यशास्त्रीय वैदुष्य कही उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कही अर्थान्तरन्यास की छटा, कही श्रमसाध्य यमक है तो कही सहज उत्प्रेक्षाये कही वर्णन वैविध्य है तो कही कल्पना की ऊँची उडान। इसीलिये कालिदास सभी दृष्टि से कवियो के लिये आदर्श हो गये। रघुवश कालिदास के इस वैशिष्ट्य के कारण ही कवियो एव आलोचको को कहना पडा है कि—

"क इह रघुकारे न रमते

कुमारसम्भव

कालिदास का कुमारसम्भव जिस प्रणयभूमि का मूर्तिमान चित्र है, उसे देखकर यही स्वीकार करना पडता है कि 'अभिज्ञानशाकुन्तल का व्यष्टिमूलक प्रेम कुमारसम्भव मे जिस समिष्टता की सर्जना को प्राप्त हो जाता है उसमे काम का वरदान रूप अभिव्यक्त होता है। कालिदास की जो शिव भक्ति रघुवश के वाणी और अर्थ के साथ—साथ प्रस्फुटित हुई थी। वही अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे अष्टरूप वाले शिव मे समाहित हुई। लेकिन कुमारसम्भव

का तो प्रत्येक श्लोक ऐसी ऋचा है जिसमे शिव शिवा की इस प्रकार से स्तुति की गयी है कि कामी व्यक्ति भी शिव भक्ति को प्राप्त कर सकता है। वस्तुत शिव विश्वमूर्ति है और शिवा सम्पूर्ण चराचर मे व्याप्त होने वाली आह्लादिनी परम शक्ति है। सम्भवत इसी तत्व को स्वीकार करने के लिये कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रथम श्लोक मे **'अस्ति'** शब्द का प्रयोग किया है। कहने का आशय यह है कि यह प्रणयमूलक मङ्गलात्मक काम का अस्तित्व चाहे जड हो चाहे चेतन हो देव हो मनुष्य मे समान रूप से व्याप्त है। सम्भवत इसी सत्य का प्रतिपादन करने के लिये कवि ने **'अस्ति'** शब्द का प्रयोग किया है।

कुमारसम्भव की रचना जिन सत्रह सर्गो मे हुई है ये सर्ग वस्तुत जीवन की सम्पूर्ण वासनाओ को समेटे हुए है। ये सत्रह सर्ग सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्व है। इसी सूक्ष्म शरीर मे कर्मो की सम्पूर्ण वासनाये अन्तर्भूत है। कर्मो का मूल प्रेरक काम की वासना है। यह काम वासना जब मङगल की सर्जना करती है तो वह इतना ही पवित्र हो जाती है जितना शिव और शक्ति का चिन्तन मिलन। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग मे हिमालय के वर्णन का गौरव भारत की गरिमा को ही नही व्यक्त करता वरन् इसकी सास्कृतिक मूल्यो को अपने वनस्पतियो, लताओ और स्वच्छ हिमश्रृगों के माध्यम से व्यक्त करता है। कवि ने हिमालय के वर्णन का माध्यम एक और भारत के प्राकृतिक वैभव को व्यक्त किया है—वहीं दूसरी ओर सम्पूर्ण काव्य की कथा की भूमिका को शिव की तपस्या मे अन्तर्निहित किया है। कवि शाश्वत सत्य का वास्तविक द्रष्टा है। आसुरी शक्ति को पद धूल के नीचे दैवीय शक्ति जिस प्रकार से लुण्ठित हो गयी है वह सृष्टि की शाश्वत किन्तु प्रातिभासिक शाश्वत है। कवि आसुरी शक्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये ऐसे कुमार की सृष्टि करना चाहता है कि जिसका जन्म तपस्या के बीच हो।

शिव समाधि को भडग करने के लिये कामदेव की कल्पना करनी पडती है तथा शिव की समाधि जगत के कल्याण के लिये भडग होती है।

दूसरे सर्ग मे देवताओ ने ब्रह्मा की स्तुति की वहाँ पर उन्हे यह ज्ञात होता है कि शिव का पुत्र कार्तिकेय तारकासुर का विनाश कर सकता है और इस पुत्र की उत्पत्ति के लिये शिव की चित्त उमा की ओर आकर्षित करना आवश्यक है। ब्रह्मा ने इस प्रसग मे शिव की जो महिमा वर्णित की है उसमे कालिदास का शिव के प्रति समर्पित जीवन अभिव्यक्त होता है। कालिदास की अपनी मान्यता है कि तमोगुण को नष्ट करने के लिये उत्कट सत्वगुणमय तेज की आवश्यकता होती है। कहने का आशय यह है कि तारकासुर का तभी नाश हो सकता है जब शिव के वीर्य को धारण करने वाला पात्र हो उसे मूर्तिमान रूप देने मे समर्थ हो। इस अभिव्यक्ति मे केवल एक ही तत्व को परमोत्कृष्टता ही नही अभिव्यक्त होती है। वरन् तीन तत्वो को परमोत्कर्ष अभिव्यक्त होता है। शिव के वीर्य को धारण करने के लिये कालिदास की दृष्टि मे केवल उमा ही सक्षम है। अतएव उमा को तपस्यानल मे जलाकर स्वर्ण बना दिया है। इन दो तत्वो के मिलन से जिस तीसरे तत्व कुमार' की उत्पत्ति की उद्भावना दी गयी है, उसके समक्ष समस्त आसुरी शक्ति का विनाश हो जाता है।

तीसरे सर्ग मे कामदेव जब शिव की तपस्या को भड्ग करने के लिये सन्नद्ध होकर आता है उस समय की दशा इतनी रमणीय हो जाती है कि सम्पूर्ण विश्व मे काम का ही विलास दिखाई पडता है। काम के प्रभाव से वासन्तिक सुषमा सम्पूर्ण चराचर को अपने मनमोहक भुजा पाश मे बॉध देती है। लेकिन शिव की तपस्या के समक्ष काम का वर्चस्व जल कर क्षार हो जाता है। शिव की लोकोत्तर समाधि भड्ग इसलिये नहीं हो पाती क्योकि शाश्वत सत्य जागतिक सौन्दर्य से अनभिभूत रहता है। यद्यपि काम ने अपने

दुर्वल साधनो से शिव पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई और कुछ अश तक उसे सफलता मिल गयी। क्योकि शिव के चित्त सागर मे किचित प्रेम की लहरिया उद्भूत हो गयी। और उनकी दृष्टि क्षण भर के लिये पार्वती के बिम्बाधर के पान मे रम भी गयी। लेकिन एक ही क्षण मे शिव के तीसरे नेत्र ने काम को सदा के लिए अनडग बना दिया। इस प्रसडग मे कवि ने शिव के तीसरे नेत्र रूपी ज्ञान की जिस अपरिमित शक्ति का चित्रण किया है और उसके समक्ष काम की सम्पूर्ण कलाए जलकर नष्ट हो जाती है।

कालिदास का चतुर्थ सर्ग चिन्तन करूणा की धारा से ओत–प्रोत है। रति का विलाप जीवन के उस तत्व को अभिव्यक्त करता है जहॉ प्रेम रूपी काम के अभाव मे जीवन का उपवन मरूस्थल वन जाता है। रति केवल काम की प्रिया ही नहीं है, वरन सम्पूर्ण चेतन की प्रमोदात्मक शाश्वत वासना है। कवि ने रति विलाप के माध्यम से वाल्मीकि रामायण के करूण तत्व को ऐसा सजीव स्वरूप दिया है, जिसे देखकर सहृदय अपने को सभाल नही पाता है। रति भी चिता पर भस्मीभूत होने के लिये तत्पर हो जाती है, किन्तु आकाशवाणी ने उसे आशान्वित कर जागतिक मर्यादा की रक्षा की। कालिदास यह कहना चाहते है कि रति का नाश असम्भव है। यही रति ही आलम्बन भेद से विभिन्न रूपो को प्राप्त होकर मानव को प्रवृत्ति से निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाती है। इसी लिये कवि ने काम एव रति दोनो के शाश्वत मिलन की सम्भावनाओ का चित्रण प्रस्तुत कर मानव के मनोराज्य के वैभव को प्रस्तुत किया है।

कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग का उतना ही महत्व है, जितना भरतमुनि का पचम वेद नाट्यशास्त्र। कालीदास का प्रेम तात्कालिक सवेगजन्य नही है। इस प्रेम के परिपाक हेतु जिस कठिन तपस्या की आवश्यकता है, उसे केवल उमा ही पूर्ण कर सकती है। कालिदास की यह पक्ति–'प्रियेषु

सौभाग्यफलाहि चारूता [1] कुमारसम्भवम्– ५/२१ जिस परम सत्य को चित्रित करती है उसमे भारतीय नारी की आत्मा प्रतिविम्बित होती है।

अवास्यते वा कथमन्यता वयतादृश ।।[2] कुमारसम्भवम्– ५/२

यह पक्ति पार्वती के पवित्र मन का ही सार नही है वरन् भारतीय सास्कृतिक चेतना का अमूल्य चिन्तन सार है। पति प्राप्त हो सकता है किन्तु प्रेम की प्राप्ति नही हो सकती। प्रेम मिल सकता है किन्तु पति नहीं मिल सकता। यदि दोनो ही मिल जाये तो वे तथाविधि अर्थात शाश्वत अथवा जन्म जन्मान्तर मे कभी भी न भग होने वाला अमरप्रेम नही मिल सकता। इस प्रेम और पति परमेश्वर की प्राप्ति हेतु तपस्याग्नि मे जलना ही पडता है। पार्वती जो कुसुम शैय्या पर शयन करने वाली थी शिव की प्राप्ति के लिये अपने तन को जलाती है। शिव जिस समय ब्रहमचारी का रूप बनाकर उपस्थित होते है, उस समय का वर्णन सम्पूर्ण विश्व साहित्य को चुनौती देने मे सक्षम है। शिवा अपने परम प्रिय शिव की निन्दा नही सुन सकती। ज्योहि वह निन्दा श्रवण रूपी पाप से बचने के लिये उद्यत हुई कालिदास की मर्मस्थली को स्पर्श करने वाली भाषा मे उपस्थित किया।[3]

त वीक्ष्य वेपथुमती सरसाड्ग यण्टिनिक्षेपाय पदमुदधृतमृद्धहन्ती।
मार्गाचलव्यतिरिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ।।

कु०स० ५/८५

छठे सर्ग मे शिव के विवाह की तैयारी जिस वातावरण को उपस्थित करती है, वहॉ लौकिक और अलौकिक का भेद मिट जाता है। पार्वती ने शिव का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है किन्तु उनके प्रणय मे सरिता की चचलता

---

१ कुमार सम्भव ५/१
२ " कु स ' ५/२
३ त वीक्ष्य वेपथुमती सरसाड्ग मष्टिर्निक्षेवाम पदमुदधृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिरिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ।। कु स ५/८५

नही है वरन सागर की गम्भीरता है। इसीलिये वे सखियो के माध्यम से कहलाती है कि मेरे प्रणय का लौकिक रूप मेरे पिता के स्वीकृति पर आधारित है। कालिदास की लोक मर्यादा इतनी सुसगठित एव सवेदनशील है जिसे स्वीकार करने मे अनिच्छा को स्थान नही मिल पाता। विवाह की तैयारी का प्रसग लौकिक जीवन के उत्कर्ष के प्रथम सोपान के रूप मे वर्णित किया गया है। सातवे सर्ग मे विवाह के प्रसग को कवि ने इतना आकर्षक रूप प्रदान किया है कि अनुरागी पाठक को जहॉ अमृत फल की प्राप्त हो जाती है वहीं विवेकशील पाठक शिव एव शक्ति के अनादि मिलन को नूतन मिलन के रूप मे मूल्याकन करते है। इस प्रसग मे कवि विवाह के प्रसग मे होने वाले स्वाभाविक वर्णन की जिस दिव्य झॉकी को प्रस्तुत करता है उसको देखकर आश्चर्य होता है।

अष्टम सर्ग शिव एव पार्वती की विलास लीला का जीवन्त चित्रण है। यह प्रसग यद्यपि लौकिकता के परिवेश मे चित्रित किया गया है किन्तु इसके मूल मे अलौकिकता की सुधामयी धारा प्रवाहित होती रहती है। शिव और शिवा मूलत मानवीय चेतना की सत्कल्पना के मूर्तिमान मगलकारी तत्व है। मानवोचित कामक्रीडा साधारण पाठक को भले ही अश्लीलता का परिचायक लगे किन्तु इसके मूल मे जिस अलौकिक दो चेतनाओ का मिलन है वही पर शब्द और अर्थ की सपृक्तता की धारा प्रस्फुटित होती है।

सभोग जीवन जहॉ एक ओर वाह्य एव स्थूल स्वरूप को प्रस्तुत करता है वहीं इसके मूल मे शाश्वत सत्य का वीज अन्तर्निहित रहता है। इस सुरत क्रीडा का आक्षेप करना अपने को मिथ्याभिमानी सिद्ध करना है। काव्य की भाषा अलौकिक तत्व को भी यदि लौकिक धरातल पर अथवाा साधारणीकरण की स्थिति का सृजन करने मे समर्थ नही हो पाती तो वह भाषा दृष्टिहीन पथ प्रदर्शिका मात्र वनकर रह जाती है। रति क्रीडा ऐकान्तिक

नही है वरन् सृष्टि के उद्भव का मूल तत्व है। सम्पूर्ण सृष्टि ही इसी का विलास है। विलास की अनुभूति यदि वाणी का रूप ग्रहण करती है तो वह किस प्रकार अश्लीलता की उपाधि से अलङकृत हो सकती है। व्यक्ति की वासनाा वस्तु के स्वरूप का निर्धारण करती है। शिव और पार्वती का जो सात्विक रूप चित्रित किया गया है उसके विलास मे भी सात्विकता है। यदि यह बात न होती है तो सभोग काल की चिरन्तनता लौकिकता से प्रभावित होकर विच्छिन्नता को प्राप्त हो जाती है।

अन्तिम नौ सर्गो की कथा मे कुमार की उत्पत्ति और तारकासुर के वध की सौन्दर्य पूर्ण चित्रण रेखा का वर्णन किया है। शिव की सभोग क्रीडा मे देवताओ ने अग्नि को कबूतर के रूप मे विघ्न डालने को भेजा। सात्विक शिव के वीर्य के ताप को अग्नि का तेज नही सह सका। इसलिये उसने उस वीर्य को जब स्वर्ग गगा मे डाल दिया तब उस तेज को न सह सकने गगा ने स्नान करती हुई छ कृतिकाओ के शरीर मे डाल दिया उस तेजस्वी वीर्य को गर्भवती कृतिकाए भी धारण करने मे असमर्थ रही। इसीलिये उन्होने वेतस वन मे शिशू का परित्याग कर दिया। शिव और पार्वती ने जब शिशु को देखा तब उसे अपना पुत्र समझकर उसे उठा ले आये। यही बालक छह दिनो मे वृद्धि को प्राप्त होकर सम्पूर्ण शस्त्र एव शास्त्रो मे पारगत हो गया। देवताओ का सेनापति बना कुमार ने तारकासुर का वध करके इन को सकट से मुक्त कर दिया।

नवे सर्ग मे कवि ने कैलाश पर्वत की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया है। दशवे एव ग्यारहवे से लेकर शेष सर्गो मे शिव और पार्वती के कुछ वर्णनो से कालिदास ने कुमारसम्भवम् की रचना समाप्त की है। कुमारसम्भव के सर्गो के विषय मे जो मतभेद पाया जाता है उसके अनुसार कुछ लोगो की दृष्टि मे कालिदास की लेखनी ने कुमारसम्भव मे केवल ८ सर्गो की ही

रचना की है क्योकि प्रथम आठ सर्ग पर्यन्त ही मल्लिनाथ एव मल्लिनाथ प्रभृति विद्वान की टीकाये उपलब्ध होती है। इसका कारण यह है कि परवर्ती सर्गो के श्लोको का उल्लेख आचार्यो के द्वारा लक्षण ग्रन्थो मे नहीं किये गये है। तीसरा कारण शैली की विभेदता है। प्रथम आठ सर्गो की शैली परवर्ती सर्गो की शैली से नितान्त भिन्न है। प्रसद्धि इतिहासकार कीथ ने भी आठ सर्ग पर्यन्त कालिदास की रचना मानी है।[1] पण्डित बलदेव उपाध्याय ने भी कीथ के मत का समर्थन किया है।[2] लेकिन मेरी दृष्टि मे इन लोगो के विचार मे केवल मल्लिनाथ आदि टीकाओ की अनुपलब्धि को प्रमाण मानना सत्य के साथ अन्याय करना है। कुमारसम्भव की कथावस्तु का प्रारम्भ एक परम निश्चित लक्ष्य की ओर पर्यवस्ति होने वाला है। आठवे सर्ग तक कुमार कार्तिकेय के उत्पत्ति के हेतु बीज का वपन भी नही किया गया है। काव्य का शीर्षक कुमारसम्भव इस बात का प्रतीक है कि काव्य मे ऐसे शिशु की उत्पत्ति बतायी जायेगी जो कु (दुष्टो) को मारने मे सक्षम होगा।

कालिदास की जितनी भी रचनाये है उनके शीर्षको की रमणीयता सर्वत्र देखी जाती है। इसलिये कुमारसम्भव की रचना की यथार्थता आठ सर्ग पर्यन्त चरितार्थ नही हो सकती। कालिदास ने रघुवश जैसे काव्य की रचना जब पूरी की तो कुमारसम्भव की रचना की पूर्णता क्यो नहीं सम्पन्न हुई। रही वात अलकार—शास्त्रियो के श्लोको के उल्लेख करने की वात तो उनके द्वारा जिन काव्यो के श्लोक यदि उल्लिखित न किये जाये तो क्या उनकी काव्यता सन्दिग्ध समझी जा सकती है। शैलीगत विभिन्नता कवि की रचनाओ मे देखी जाती है। रघुवश मे भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की शैली मे किचित भेद देखा जा सकता है। इन आधारो पर यह सिद्ध करना कि कालिदास ने केवल आठ सर्ग पर्यन्त ही कुमारसम्भव की रचना की थी कहना नहीं उचित प्रतीत होता।

---

१ महाकवि कालिदास, रमाशकर त्रिपाठी पृ० १००।

२ सस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ११२ वलदेव उपाध्याय।

यह भी सम्भावना की जाती है कि कालिदास केवल आठ सर्गो तक ही कुमारसमभव की रचना कर पाये हो लेकिन यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है क्योकि विद्वानो ने कालिदास की कुमारसम्भव की रचना को अन्तिम रचना ही मानी है। इसलिये यह कहना तर्क सगत नहीं प्रतीत होता कि वे काव्य को पूरा नही कर पाये।

कालिदास का कुमारसम्भव जहाँ एक ओर दार्शनिक तत्वो की सूक्ष्म मीमासा प्रस्तुत करता है वही समष्टि प्रणय के सौन्दर्य को निश्छल मन से अभिव्यक्त करता है। कुमार सम्भव की दार्शनिकता कालिदास की काव्यात्मक भूमिका मे इस प्रकार अन्तर्निहित हो गयी है कि साधारण पाठक की दृष्टि उधर जा ही नहीं सकती। कालिदास का शिव एव शिवा का युग्मत्व केवल वैयक्तिक भूमिका पर ही नही वरन् समस्त वातावरण के लिये चित्रित किया जा सकता है जबकि शिवा के तुल्य तमोमयी बुद्धि की प्राप्ति हो और इन दोनो का सयोग ही कुमार जैसे अक्षय भण्डार को उत्पन्न कर सकता है जिससे विनासकारी आसुरी प्रवृत्ति का क्षण भर मे नाश हो जाता है। जिन लोगो ने कालिदास को विलासी कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होने सम्भवत कालिदास पर अपनी विलासिता को आरोपित किया है।

कालिदास की उमा जिस तपस्या की अग्नि मे जलती है क्या उसमे विलासिता का गन्ध आती है। कालिदास का प्रेम केवल शाब्दिक अथवा फूलो की सेज पर अठखेलिया खेलने वाला प्रेम नही है। अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला तपस्या की ज्वाला मे जलने के उपरान्त ही राजा दुष्यन्त को प्राप्त कर सकती है। कुमारसम्भव की शिवा, शिव अनायास ही नही मिल सकते क्योकि कुमारसम्भव की शिवा शकुन्तला नहीं है। वह तो सम्पूर्ण मानवीय सृष्टि की बुद्धि की प्रतिरूप है। उसे शिव को प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या के खड्गधार पर चलना नितान्त आवश्यक है।

कालिदास ने कुमारसम्भव मे जिस रूप सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है उसमे राजभवनो का विलास नही है वरन् प्रकृति के कोमल एव मनमोहक अवयवो की अभिरामता या आकर्षणशीलता पार्वती के प्रत्येक अवयवो से अभिव्यक्त होती है। इनके कुमारसम्भव के शिव कामी नही है वरन् उसमे शाश्वत सयम और विश्वमगल की सर्वतो भद्र भावना है उसे शिवा चाहिये। वह भी शिवा जो उसके रूप सौन्दर्य पर ही नही वरन् आन्तरिक सौन्दर्य शिवत्व चाहती है। कालिदास ने उमा और शिव के माध्यम से सयमित काम विलास के वैभव को प्रतिपादित किया है। सयमित काम ही उस कुमार को उत्पन्न कर सकता है। जिसे आसुरी शक्ति का विनाश तथा दैवीय शक्ति की सुरक्षा की जा सकती है यही है कुमारसम्भव का रहस्य यही है कवि का सन्देश जिसके श्रवण से सम्पूर्ण मानवता का उद्धार हो जाता है।

कालिदास का कुमारसम्भव ध्वनितत्व की विस्तृत भूमि का निर्वाह किया है। इनका यह काव्य श्रृगार रस की तीर्थ स्थली है। कवि वासनाजन्य प्रेम का पक्षपाती नहीं है। वासनाजन्य प्रेम दु ख क्लेश का परिणाम होता है। काम वासनाओ को विना भस्मीभूत किये सच्चे स्नेह की प्राप्ति नहीं हो सकती है। तपस्या से स्नेह परिनिष्ठित नहीं होते है, यह कुमारसम्भव का अमर सन्देश है। सम्पूर्ण महाकाव्य मे श्रृगार–रस की गगा प्रवाहित होती रहती है वहीं पर भयानक रस[1] की विभीषिका मे मदन का प्रवेश भयभीत हो जाता है। रस रस के निर्वहण के लिये कवि ने जिस वीरासन के साथ–साथ रूद्राक्ष माला से युक्त अनुभावो का चित्रण किया है। उसे देखकर कवि की प्रतिभा की अद्वितीयता की उपाधि देनी पडती है। श्रृगार रस के उपवन मे

---

१ पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायत सनमितोभयासम्।

उत्तानपाणिद्वयसनिश्वे शात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये।। कु स ३/४५

जब रौद्र[1] रस अपने स्वरूप को प्रकट करता तो काम की सम्पूर्ण कला जल कर क्षार हो जाती है। कालिदास का रति विलास करूण रस का अद्वितीय उदाहरण है। यद्यपि मम्मट ने रसे रस दोष के रूप मे चित्रित किया है किन्तु जिस रूप मे रति विलाप करती है वहाँ करूणा का मूर्त रूप प्रस्तुत हो जाता है। करूणा से ग्रस्त नारी की चेतना विलुप्त हो जाती है इसलिये उसमे स्वस्थ बुद्धि का अभाव रहता है। अत कालिदास ने करूणा की भूमिका मे स्वत अन्तनिर्हित होकर रति–विलाप का चित्रण प्रस्तुत किया है। शान्त रस वीर रस का चित्रण भी प्रसङ्गानुकूल होने से कवि की कला कुमारसम्भव के सौन्दर्य को निखार देती है। शिव की वारात के प्रसग मे उपस्थित होने वाला भावाभास[2] एक अद्भुत चित्र प्रस्तुत करता है इसी प्रकार कामदेव को भस्म करने के प्रसग मे शिव को भावोदय[2] और रति विलाप के प्रसग मे होने वाला भाव शान्ति[3] तथा पॉचवे सर्ग के अन्त मे शिव के उपस्थित होने पर पार्वती की भाव सन्धि[4] का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

कालिदास की अलकार योजना कुमार सम्भव मे इस प्रकार प्रतीत हुई है जैसे सम्पूर्ण अलकारत्व काव्य की रमणीयता के प्रतिपादन करने के लिये उपस्थित हुए हो। उपमाओ की कोकिला मधुर ध्वनि सुनाती है तो कही उत्प्रेक्षा की भ्रमरावली कमल–रस का पान करते हुए गुजार–करती रहती है। पर्योक्ति की भगिमा अर्थ के चारूत्व का निष्पादन करते हुए समासोक्ति के सौन्दर्य से प्रतिस्पर्द्धा करती हुई प्रतीत होती है। यत्र तत्र अर्थान्तरन्यास का मधुर विन्यास अर्थ के गाम्भीर्य तथा चारूत्व का प्रतिपादन करता है। इन्होने जिस प्रकार से अलङ्कारो को अपने काव्य मे विनियोजित किया है। उसे

---

१ निवेदित निश्वसितेन सोष्मणा मनस्तु मे सशयमेव गाहते।

२ तमेकदृश्य नयनै पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासा सर्वात्मना चक्षुरिव प्रदिष्टा।। कु०स० ७/६४

३ कु०स० ३/७०

४ कु०स० ४/४०, ४१

देखकर यही लगता है कि इनकी कविता कामिनी के नयनो मे स्वाभाविक अजन है अधरो मे स्वाभाविक अरूणिमा है। चाल मे स्वाभाविक हस की गति है। कालिदास ने नारी के अङ्गज अलङ्कारो का जितना स्वाभित्व वर्णन प्रस्तुत किया है उसे देखकर सरस्वती भी लज्जित हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास का कुमारसम्भव अनुपमन्यास है। इसमे पौराणिक कथा का न्यास कवि की प्रतिभा से जिस साहित्य सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है उसमे विश्व का सम्पूर्ण शिवत्व समाहित है। कालिदास ने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे जिस हिमालय की सत्ता और सौन्दर्य को चित्रित किया है वह सम्पूर्ण सौन्दर्य कुमारसम्भव मे अन्तर्निहित है। वस्तुत कुमारसम्भव पृथ्वी के सम्पूर्ण काव्यो को मापने के लिये मानदण्ड के सदृश प्रस्तुत है। इसी कुमारसम्भव के हिमालय मे शिव और शिवा का मिलन है। यह कुमारसम्भव मे वर्णित हिमालय तपस्या का रमणीय स्थल है। यही पर दुर्घष काम की कला जल कर क्षार हो जाती है। इस प्रकार कुमार सम्भव एक ओर काम की परिणति का चित्रण करता है दूसरी ओर काम विजय की शिक्षा से मानव को कल्याण की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। सच पूछा जाये तो रघुवश मे जिस वाणी और अर्थ की वन्दना उमा और पार्वती के रूप मे की गयी थी उसका सम्पूर्ण विलास कुमारसम्भव मे वर्णित है।

मेघदूत

मेघदूत समस्त सस्कृत गीतिकाव्य साहित्य का परम् उज्जवल रत्न है। एक विरही यक्ष की मार्मिक मनोव्यथाओ के अभूतपूर्व चित्रण ने इस काव्य को अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। मेघदूत मे १२१ छन्द है। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो भागो मे विभाजित है।

पूर्वमेध तथा उत्तरमेघ।

कथा विन्यास के दृष्टिकोण से गीतिकाव्य का महत्व नही होता वरन् उसकी गेयात्मक प्रवृत्ति भाव–वोधन की चारूता तथा हृदय की आवर्जकता का महत्व होता है। मेघदूत की कथा एक यक्ष विरही की कथा है। अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर से शापित होकर रामगिरि पर्वत पर एक वर्ष के लिये प्रवास करता है। वेचारा यक्ष प्राणाधिक अपनी प्रिय पत्नी से दूर भारत की निम्नभूमि मे येन- केन प्रकारेण विरह के आठ माह व्यतीत करने के पश्चात वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे ही उसके हृदय की कोमल भावनाये उसकी नेत्रो के समक्ष प्रिया को उपस्थित करती है। मेघूदत की रचना कोमलता, सरसता और सम्पूर्ण चित्त की उद्रेकता का प्रतिरूप है। कवि ने मेघ को दूत बनाकर इस वात को चरितार्थ करने का प्रयास किया कि दु खी व्यक्ति के लिये कोई भी अब चेतन तत्व उसकी बेदना को शामित करने मे सहायक सिद्ध हो सकता है। कालिदास ने स्वत इसका समाधान करते हुए बताया कि कामार्त व्यक्ति चेतनाहीन हो जाता है। वर्षा की प्रथम रूपरेखा को देखकर उसका चित्त प्रिया मिलन के लिये व्याकुल हो उठता है। मेघ को अपना परम मित्र समझकर उससे अनुनय–विनय करता है कि वह उसके सन्देश को प्रिया से कह दे। कालिदास की कितनी अनूठी कल्पना है कि यक्ष यह कल्पना कर लेता है कि मेघ ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। कवि ने भविष्यकालीन घटना को अतीत की तूलिका से रग कर पाठको के समक्ष जब वर्तमान वातावरण मे प्रस्तुत करता है तो अनुभूति होती है कि कालिदास प्रत्येक विरही की अन्तरचेतना को प्रस्फुटित कर देते है। कालिदास ने मेघ को दूत इसलिये बनाया कि वह अम्बुवाह है इसलिये वह यक्ष के सन्देश को भी वहन कर सकता है और अपने अम्बु से उसके प्रिया के जलते हुए हृदय को सींच सकती है। मेघ कालिदास के पक्ष मे मार्ग का ज्ञान करता है। कालिदास ने अपनी प्रिया के समीप मेघ को पहुँचने के लिये मार्ग बताने

के माध्यम से जिस प्राकृतिक दृश्यो को उपस्थित किया है उसमे कालिदास का सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण प्रतिविम्बत होता है। मेघ के गर्जन को कवि जब भ्रूविलास मे अनभिज्ञ ग्राम्य–युवतियो के नेत्रो से देखते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के नेत्रो मे नव–यौवना की सम्पूर्ण लालसाए झलक रही हो। मेघ के मार्गदर्शक कालिदास विदिशा की वेत्रयत्री के भू–भ्रगो से मनोहर मुख स्वय मेघ के रूप मे चूम लेते है। नीचै नामक पहाडियो पर विलासिनियो की मुख मदिरा उनकी चेतना को अङ्कपास मे बाध लेती है। उज्जयिनी की सुन्दरियो की चचल चिन्तवन जहॉ एक ओर मधु की वर्षा करती है वही दूसरी ओर निर्पन्ध्या की तरल तरङ्गो मे कवि का अनुरागी मन अठखेलिया करने लगता है तो वहॉ की कृतिमता प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मिलकर अद्वितीय सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत करती है। उज्जयिनी के उपवन तथा चमणवती सरिता का रूप पौराणिक कथा की प्रकृति के उच्छ्वासो मे सौदर्य की सृष्टि करता है। कवि के मेघ से मिलने के लिये नदिया उसी प्रकार व्याकुल रहती है जैसे विरहणी अपने प्रिय से मिलने के लिये आतुर रहती है। मेघ अनुराग का प्रतीक है जिसके हृदयाकाश से झॉकने से प्रकृति के कण–कण मे रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इस मेघ के अनुराग के अभाव मे कोमल प्रकृति के नेत्रो मे ज्वालामुखी छलकने लगता है।

कालिदास ने अलकापुरी का जैसा चित्र प्रस्तुत किया है उसमे उनकी कलात्मक प्रतिभा तथा विलासी मानसिकता प्रतिध्वनित होती है। मेघ को यक्ष प्रिया का गृह खोजने मे प्रयास नहीं करना पडेगा। उसकी प्रिया ऐसे भवन मे होगी जहॉ पर सम्पूर्ण रत्नो का आगार होगा। कुरवक, अशोक एव वकुल पादपो की रमणीयता होगी और जहॉ सारिका का सौन्दर्य प्रतिविम्बित होता होगा। उसकी प्रिया विरह की ज्वाला मे जल कर आकृतिमात्र के रूप

मे यक्ष की प्रतीक्षा कर रही होगी। कालिदास मेघ को सचेत करते है कि प्रिया सन्देश कथन मे शीघ्रता मत करना। कालिदास सन्देश के महत्व को समझते है कि प्रिय का सन्देश कितना मादक कितना आह्लादक ओर जलते हुए हृदय पर अति शीतल चन्दन का लेप करने वाला होता है।

इस काव्य की कथावस्तु का निरीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि को इस काव्य के प्रणयन की प्रेरणा रामायण से प्राप्त हुई होगी। रामायण मे सुग्रीव का वानरो का मार्ग बताना लङ्का का वर्णन, सायकाल की बेला मे हनुमान का लङ्का का प्रवेश, अशोक वन मे सीता वर्णन और दूसरे दिन प्रात काल हनुमान का सीता से मिलना इत्यादि वर्णनो का प्रभाव कालिदास पर किसी न किसी रूप मे अवश्य पडा होगा।

कवि ने पूर्व मेघ के सर्वातिशय गौरव को जिस रूप मे प्रस्तुत किया है उसमे अचेतन मेघ साक्षत चेतन की तरह से सम्पूर्ण प्रकृति को तृप्त करता हुआ प्रतीत होता है। उत्तर मेघ के अलका के सुख विलास मे जहॉ कालिदास ने लक्ष्मी के मधुमय विलास को चित्रित किया है वहॉ दूसरी ओर यक्षिणी के अलौकिक रूप को उसकी अर्न्तपीडा मे स्थापित कर प्रणय की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त किया है। मेघदूत उनके वैयक्तिक जीवन का प्रतिविम्ब हो चाहे न हो किन्तु सहृदय अनुराग के कोमल तन्तुओ को अभिव्यक्त करके बहुत ही सरस ढग से प्रस्तुत करता है। वैयक्तिक धरातल पर होने वाली विरहिणी व्यथा, विरहणी की वेदना, मेघदूत मे अपनी सार्वभौमिकता को प्रस्तुत करती है। मेघदूत का एक २ शब्द जहॉ एक ओर सगीत की स्वर माधुरी को प्रस्तुत करता है वही दूसरी ओर अर्थ के जिस सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। उसमे अन्त एव वाह्य प्रकृति की रागात्मक वासना का चित्र अपूर्व आनन्द प्रदान करता है। मेघदूत का यक्ष ही प्रिया के विरह मे व्याकुल नहीं

है वरन् प्रकृति के एक–एक कण से लेकर पर्वत तक जल विन्दु से लेकर नदियो की तरङगे और समुद्र की लहरे जिस विरह वेदना को व्यक्त करती है वहॉ पाषाण भी द्रवित हो जाता है।

उत्तरमेघ के कालिदास ने प्रिया मिलन की जिस व्याकुलता का वर्णन किया है उसकी मात्र अनुभूति ही की जा सकती है। जब दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्ति होता है तो चित्र मे भी प्रिया मिलन सम्भव नही हो पाता है। यक्षिणी भारतीय नारी की सास्कृतिक मूल्यो को प्रस्तुत करती है उसका एक वेणीत्व, मलिन वसनत्व, सारिकाओ से पति के आगमन को पूॅछना वीणा के तार का ऑसुओ से भींग जाना भारतीय नारी की आत्मा की अभिव्यक्ति है। कवि का विरही मन प्रिया को आश्वासन देता है कि मै शीघ्र ही तुमसे मिलूॅगा। मेघदूत मे प्रकृति का मानवीयकरण बडे ही सुन्दर ढग से किया गया है। वस्तुत मेघदूत कवि की रागात्मक प्रवृत्ति का सुन्दर रूप प्रस्तुत करता है। मेघदूत के माध्यम से अपने भौगोलिक ज्ञान की सूक्ष्मता को साहित्यिक शब्दो मे मनोरम ढग से प्रस्तुत किया है।

काव्य की शब्द रचना चमकते हुए हीरो की भॉति निर्दोष तथा उज्जवल है। अर्थरूपी रत्नो की उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यासादि सुन्दर–सुन्दर अलङ्कारो मे जड देने मे उनकी आभा और भी त्रिगुणित हो जाती है।

मेघदूत मे सर्वत्र विप्रलम्भ श्रृङ्गार का ही चित्रण हुआ है। विशेषकर उत्तरमेघ मे यक्ष, अपनी पत्नी की विरहवस्था का वर्णन जिन श्लोको मे करता है अत्यन्त ही करूणोत्पादक एव मार्मिक है।

सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द मे प्रणीत है जो विरह की तीव्रता अनुभूतियों के चित्रण मे पूर्णतया सक्षम है। हम कह सकते है कि यदि

कालिदास ने केवल मेघदूत की ही रचना की होती तो भी वे सर्वोत्कृष्ट महाकवि गिने जा सकते थे। उनकी मन्दाक्रान्ता के छन्द से प्रभावित होकर किसी कवि ने भावुक उद्गार व्यक्त किये है।

इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास के रघुवश कुमारसम्भव और मेघदूत—तीनो काव्य भारतीय सास्कृतिक मूल्यो को काव्यात्मक भाषा मे प्रस्तुत कर मानव को शिवत्व का सन्देश देते है। इन कवियो के काव्यो का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन मानव को ऐहिक और पारलौकिक सभी सुखो को प्रदान कर सकता है।

चतुर्थ अध्याय
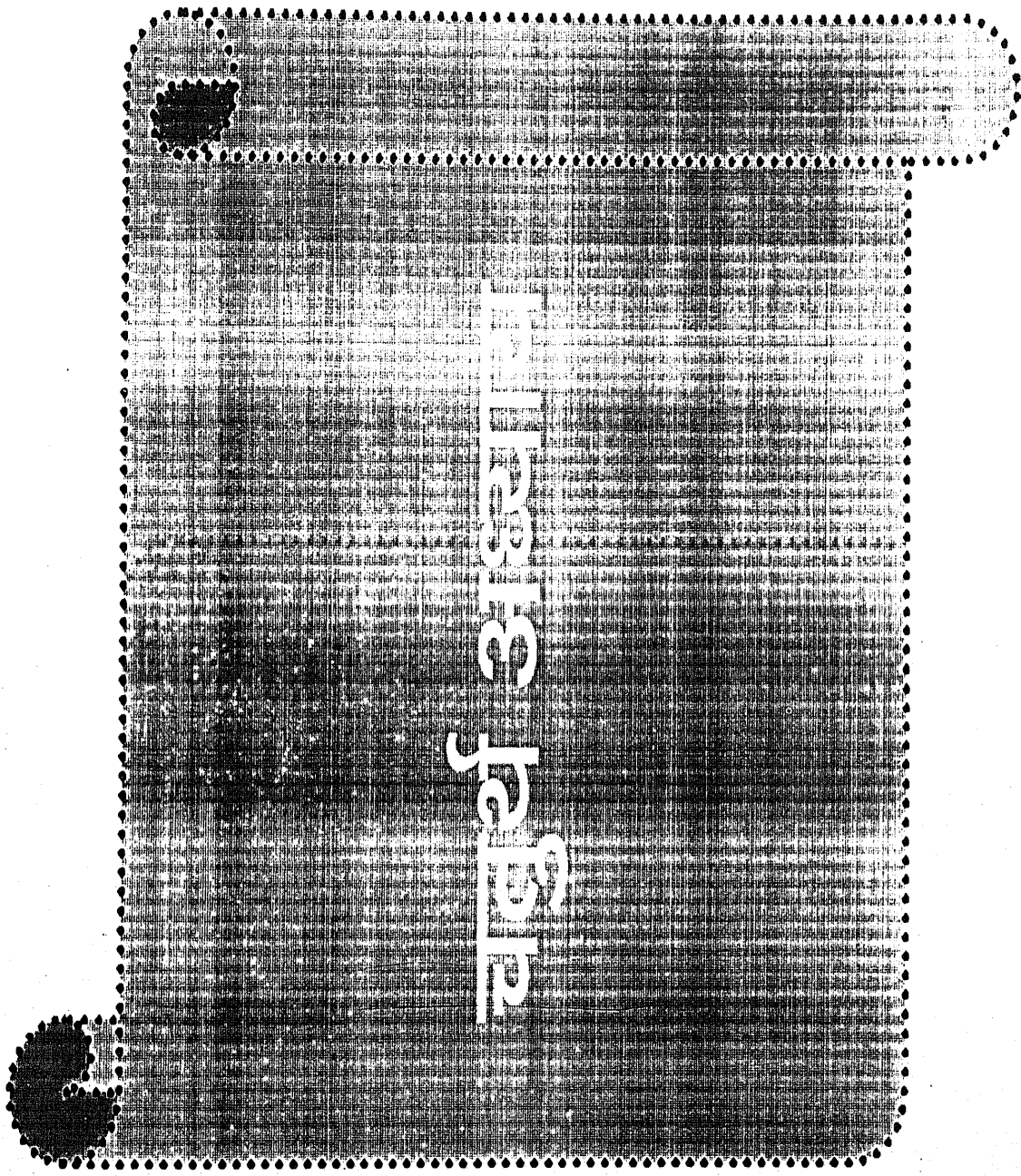
रूढ़िशब्द का अर्थ

सस्कृत साहित्य मे रूढि शब्द का प्रयोग भूयस प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के उपलब्ध सस्कृत हिन्दी कोश से रूढि शब्द के अर्थ की जानकारी प्राप्त होती है।

ना स्त्री १ परम्परा २ शब्द का सामान्य अर्थ ३ उगना ४ जन्म ५ वृद्धि या प्रवृद्धि ६ ऊपर चढने की क्रिया, ७ बदनामी।[1]

रूढि = स्त्री ( ) रूह + क्तिन्

शब्द की शक्ति जो यौगिक न होने पर भी अर्थ स्पष्ट करता है। १ जन्म २ उत्पत्ति, ३ वृद्धि ४ उभार ५ ख्याति ६ प्रसिद्ध ७ प्रथा ८ चाल[2] **डॉ हरदेवबाहरी** ने रूढि शब्द का अर्थ रीति रस्म, रिवाज प्रथा दस्तूर दिया है।[3]

इस प्रकार रूढि शब्द का अर्थ परम्परा से चली आई हुई कोई ऐसी चाल या प्रथा जिसे साधारणत सब लोग मानते हो अथवा जिसका पालन लोक मे होता है।[4] आचार्य विश्वनाथ, मम्मट ने रूढि शब्द का प्रयोग अभिधा शक्ति के प्रसङ्ग मे किया जाता गया है। जो शक्ति वाचक शब्द के द्वारा वाच्यार्थ का बोध कराए उसे अभिधा शक्ति कहते है। इसे आचार्यो ने शब्द की प्रथमा शक्ति कहा है। जिस शक्ति (अर्थबोधक व्यापार) के द्वारा साक्षात् सङ्केति अर्थ का बोध या ज्ञान हो, उसे अभिधा कहते है। इसके द्वारा शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है।

---

१ दिनमान सस्कृत हिन्दी कोश, आदित्येश्वर कौशिक दिनमान प्रकाशन दिल्ली
२ तारिणीश झा
३ डा हरदेव वाहरी– मानक हिन्दी पर्याय कोश विद्या प्रकाशन मन्दिर नई दिल्ली–२
४ रामचन्द्र वर्मा– मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

तत्र सकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।। सा द २/४

स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।। काव्यप्रकाश २/८

अभिधशक्ति के द्वारा जिन वाचक शब्दो का बोध होता है वे तीन प्रकार के होते है। रूढि, यौगिक योगरूढि।

१ रूढि

जब शब्द समुदाय– रूप मे अर्थ का बोध कराए तो रूढि होगी। रूढि शब्दो के टुकडो का पृथक–पृथक अर्थ नही होता जैसे पेड पौधा आदि। इसमे शब्द की अखण्ड शक्ति से ही एक अर्थ का ज्ञान होता है।

अखण्डशक्तिमात्रेणैकार्थप्रतिपादकत्व रूढि।

अप्पयदीक्षित वृत्तिवार्तिक पृ १

अजौ तर्‌यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अड्‌ग।
नाक, बास वेसरि लहयौ वसि मुकटन के सड्‌ग।। विहारी

यहॉ तर्‌यौना, श्रुति, नाक तथा वेसर आदि शब्दो मे रूढि है।

आचार्य विश्वनाथ ने लक्षणा शक्ति का प्रथम भेद रूढि लक्षणा को माना है, जब रूढि (प्रचलित परम्परा) के कारण मुख्यार्थ को छोडकर उससे सवद्ध (मुख्यार्थ) दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाय तो रूढि लक्षणा होगी। अभिप्राय यह है कि मुख्यार्थ मे वाध या व्यवधान होने पर जब रूढि के कारण उससे (मुख्यार्थ से) सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ गृहीत हो तो रूढिलक्षणा होती है जैसे कहा जाय कि कलिड्‌ग साहसिक' या कलिड्‌ग साहसी है। या पजाब लडाका है तो यहॉ कलिड्‌ग तथा पजाब शब्द मे लक्षणा (रूढि) होगी। कलिड्‌ग और पजाब व्यक्ति न होकर स्थान या देश है। अत, उनका साहसी या लडाका होना सम्भव नहीं है। यहॉ मुख्यार्थ मे बाधा आ जाती है। यदि कलिड्‌ग और पजाब से सम्बन्ध रखने वाला

कलिङ्ग–निवासी या पजाबी अर्थ किया जाय तो बाधा दूर हो जाती है। समाज मे पजाबी को पजाब कलिङ्ग–निवासी को कलिङ्ग कहने का प्रचलन या रिवाज भी है। अत दोनो उदाहरणो रूढिलक्षणा होगी।

क्वणद्विरेफावलिनीकङ्कण प्रसार्यशाखाभुजमाम् वल्लरी।
कृतोपगूढा कलकठकूजितैरनामय पृच्छति दक्षिणानिलम्।।

आम्रलता, क्षण–क्षण शब्द करते हुए द्विरेफो की पक्ति के नीचे कङ्कणवाली शाखारूपी वाहु को फैलाकर (वायु के द्वारा) आलिङ्गत किए जाने पर दक्षिण वायु की कोकिला की कुहू के द्वारा कुशल पूछ रही है।

यहॉ द्विरेफ शब्द मे रूढि लक्षणा है जिसका अर्थ भ्रमर लिया जाता है।

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब व्रज बेहाल।
कप किसोरी दरस ते, खरे लजाने लाल।। विहारी

यहॉ 'व्रज' शब्द मे रूढि लक्षणा है जिसका अर्थ 'वज्रवासी किया गया है देखकर व्रज बेहाल हो गया का अर्थ होगा कि 'ब्रज के निवासी बेहाल हो गए।

जैसे 'कुशल शब्द को विवेचित करने पर पता चलता है कि प्राचीन काल मे जो कुश को कुशलता पूर्वक ले आता था उसे 'कुशल कहा जाता था लेकिन वर्तमान समय मे किसी भी कार्य को सरलता से कर लेने पर कुशल' व्यक्ति की विशेषता से विभूषित होता है। यह रूढि' है। 'रूढि' के कारण ही कुशल शब्द का प्रयोग होने लगा।

जैसे गङ्गा स्नान करने की प्रक्रिया प्राचीनकाल से प्रचलित है, जिसका कारण 'गङ्गा जल' के पावनत्व के कारण है, आज भी गङ्गा स्नान की परम्परा प्रचलित है ऐसे रूढियो (परम्परा) के कारण ही प्रचलित है।

रघुवश

इस काव्य के प्रणयन मे कालिदास वाल्मीकि के सबसे ऋणी है। काव्य के आरम्भ मे ही पूर्वसूरिकृत ग्रन्थो का अनुशरण कर मै रघुवश की रचना करता हूँ। ऐसा कवि ने सडकेत किया है। नवे सर्ग से पन्द्रहवे सर्ग मे कवि ने वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा ग्रहण की। पुराणो मे भी रघुवशी राजाओ की नामावलि दी गयी है किन्तु उन नामावली और रघुवश मे चर्चित नामावली मे महानान्तर है। यथा दिलीप—रघु के बीच वाल्मीकि रामायण' मै दो 'वायु पुराण मै उन्नीस एव विष्णु पुराण मे अठारह राजाओ के नाम दिये है।

विभिन्न आर्ष ग्रन्थो 'रामायण पुराणादि मे वर्णित सूर्यवश से कथा सूत्र लेकर महाकवि ने अपनी अनन्य सामान्य रसमयी शैली मे वस्तुत इतिहास की ही अवतारणा की है। पूर्वसूरय मे बहुवचन का प्रयोग वाल्मीकि व्यास च्यवन भास सौमित्ल, कवि पुत्र तथा पुराण—प्रणेताओ का बोध कराता है।

महाकवि कालिदास ने सबसे अधिक श्रद्धा महर्षि वाल्मीकि के ही प्रति प्रकार की है। उन्होने वाल्मीकि को आदि कवि भी कहा है तथा उनके महाकाव्य की चर्चा की है। वे लिखते है कि—

जब वाल्मीकि—रचित रामायण को कुश तथा लव गाया करते थे तो सभा ध्यानावस्थित होकर उस कथा का श्रवण किया करती थी।

"तद्गीतश्रवणैकाग्रा ससद श्रुमुखी वभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातनिर्वातेव वनस्थली।। रघु १५/६६
वृत्त रामस्य वाल्मीके कृतिस्तो किनरस्वनौ।
कि तद्येन मनो हर्तुमल स्याता न श्रृष्वताम्। रघु १५/६४

महर्षि वाल्मीकि के प्रति प्रदर्शित इस आदरभाव के आधार पर यह कहा जाना असङ्गत न होगा कि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवश का कथानक वाल्मीकि–रामायण से ही लिया है इससे स्पष्ट है कि महाकवि रामायण कालीन रूढियो का पूर्णत निर्वहन किया है।

"रघुवंश का महाकाव्यत्व"

रघुवश की गणना महाकाव्य के अन्तर्गत की जाती है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्य दर्पण मे आचार्य विश्वनाथ द्वारा महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है।

अर्थात् महाकाव्य सर्गो मे बँधा होता है। उसमे एक नायक (प्रधानपात्र) होता है जिसका देवता अथवा सद्वशोत्पन्न क्षत्रिय होना आवश्यक है। अथवा एकवश मे ही उत्पन्न अनेक कुलीन राजा भी नायक हो सकते है। श्रृङ्गार, वीर शान्त इन ही तीन रसो मे से किसी एक को अङ्गी (प्रधान) रस के रूप मे होना चाहिए। अन्य रसो का प्रयोग गौण अथवा सहायक रसो के रूप मे किया जा सकता है। कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन उदारधर्मात्मा व्यक्ति का वीरतापूर्ण अथवा अनुकरणीय कार्य होना चाहिए। चार पुरूषार्थो (धर्म, अर्थ काम, मोक्ष) मे से किसी एक की प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिए। महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण से होना चाहिए। कही पर दुष्टो की निन्दा हो तो कही सज्जनो की कीर्ति अथवा उसका गुणगान। न्यूनातिन्यून आठ सर्गो का होना भी आवश्यक है जो न बहुत छोटे ही हो और न बहुत विस्तृत ही। प्रत्येक वस्तु सर्ग मे एक ही प्रकार के छन्द हो किन्तु सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन भी उचित है। कभी–कभी किसी सर्ग मे अनेक छन्दो का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रत्येक सर्ग के अन्त मे आगामी सर्ग के विषय से सम्बन्धित स्वख्य सकेत भी होना आवश्यक है। महाकाव्य मे सायकालीन प्रकृतिवर्णन, सूर्योदय रात्रि सन्ध्या प्रात काल मध्याह्न आखेट पर्वत ऋतु वन सागर विरह तथा मिलन मुनि नगर यक्ष युद्ध आक्रमण विवाह तथा पुत्रोत्पत्ति आदि का यथोयोग्य साङगोपाङग वर्णन होना भी आवश्यक है। महाकाव्य का नामकरण भी कथानक के आधार पर अथवा प्रमुख नायक के नाम पर होना चाहिये तथा सर्ग का नाम सर्ग से सम्बन्धित कथा के आधार पर होना उचित है।

सर्गबन्धो महाकाव्य, तत्रैको नायक सुर ।
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदान्तगुणान्वित ।।
एकवशभवाभूपा कुलजा वहवोऽपि वा।
श्रृड्गारवीरशान्ता नामेकोऽड्गी रस इष्यते।।
अड्गानि सर्वेऽपि रस सर्वे नाटकसधय ।
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तय वर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवेत।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्नन्दा खलादीना सता च गुण कीर्तनम्।
एकवृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै ।
नाति स्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तभय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत्।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासरा ।।
प्रातर्मध्याहनमृगया शैलर्तुवन सागरा ।
सयोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ।
रणप्रयाणौपथममन्त्र पुत्रोदयादय ।

वर्णनीया यथोयोग साङ्गोपाङ्गा अभी इह ।।
कवेवृतस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु।। इत्यादि।।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणो मे जिस बातो का होना आवश्यक बतलाया गया है वे सभी बाते रघुवश महाकाव्य मे विद्यमान है। अत रघुवश शास्त्रीय दृष्टि से रूढियो (परम्परा क) के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी मे आता है।

कुमारसम्भव

इस काव्य का मूल कथानक है शिव और पार्वती का परिणय हिमालय की पार्वत्य सुषमा के वर्णन के साथ इस काव्य का समारम्भ होता है। वसन्त वैभव बनश्री रति, विलाप पार्वती तपस्या, शिव–पार्वती सम्वाद परिणय और रति क्रीडा आदि का वर्णन करते हुए कुमार की उत्पत्ति और सेनापतित्व के वर्णन के साथ तारकासुर के वध की कथा का वर्णन इस काव्य का कथानक सुगठित हुआ हे।

कुमारसम्भव की कथा–वस्तु का मूलाधार शिव–पुराण की कथा है। शिवपुराण के आधार पर ही कालिदास ने इस काव्य की रचना की है। शिवपुराण मे रूद्रसहिता के पार्वतीखण्ड और कुमारखण्ड के अध्याय कुमारसम्भव काव्य के उपजीवक है। कुमारसम्भव का प्रथम सर्ग (हिमालय वर्णन) कालिदास की कल्पना की सृष्टि है। शेष पार्वती खण्ड के अध्याय ६ ७,८ तथा अध्याय १४ से लेकर अध्याय ५५ तक एव कुमारखण्ड के अध्याय १२ तक के आधार पर लिखा गया है। शिवपुराण की कथा शिव और पार्वती के दार्शनिक सम्वाद् को कालिदास ने नही लिया है। शिवपुराण और कुमारसम्भव मे बहुत अधिक साम्य है। कही–कही तो श्लोक की पक्तिया तक समान है

कुमारसम्भव मे महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते है। यह काव्य ८ सर्गो से अधिक १७ वर्णो का है। इसका कथानक प्रसिद्ध शिवपुराण से गृहीत है। स्वामिकार्तिकेय के जन्म की कथा और उनके चरित्र का इसमे वर्णन है। अन्य उपर्युक्त विषयो का भी समावेश इस काव्य मे यथास्थन हुआ है। श्रृङ्गार इस इस काव्य की अङ्गी रस है। शान्त, करूण वीर वीभत्स आदि रस अङ्गभूत हैं। ग्रन्थ के नायक कुमार कार्तिकेय के जन्म की घटना से सम्बद्ध 'कुमार सम्भव' इस काव्य का नाम है। इन सभी लक्षणो के युक्त होने के कारण इसे महाकाव्य कहना उपयुक्त ही है।

मेघदूत काव्य का मूल स्रोत

मेघदूत का मूल श्रोत वाल्मीकीय रामायण के अन्तर्गत सीता के प्रति हनुमान द्वारा भेजे गये राम के सन्देश मे देखने का प्रयास किया है रामायण और मेघदूत के कुछ भेजे गये राम के सन्देश मे देखने का प्रयास किया है रामायण और मेघदूत के कुछ अशो मे भाव एव पदावली की समानता के आधार पर यह दिखाने का प्रयत्न किया हैं कि कालिदास ने मेघदूत की रचना रामायण के अनुकरण पर की है। प्राचीन टीकाकारो मे से दक्षिणावर्तनाथ[1] और मल्लिनाथ[2] ने भी रूढियो (परम्परा) के अनुसार मेघदूत का प्रेरणा–श्रोत रामायण को कहा है। मेघदूत मे राम सीता सम्बन्धी उल्लेखो[3] से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत की रचना के समय कालिदास के मन मे रामकथा का विचार अवश्य रहा होगा। कालिदास ने रघुवश मे अपने पूर्ववर्ती विद्वानो का ऋण स्वीकार किया है।[4] कवि की पूर्ववर्ती कवियो

---

१ इह खलु कवि सीता प्रति हनुमता हारित सन्देश हृदयेन समुद्वहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन सदेश करोति।

२ सीता प्रति हनुमत्सदेश मनसि निधाय मेघ सदेश कवि कृतवानित्याहु।

३ जनक तनयास्नानपुष्योदकेषु (पू मे १) रघुपति पदैरङिकत मेखलासु (पू मे / १२) इत्याखाते पवनतनय मैथिलीवोन्मुखी सा (उ मे /४)

४ रघुवश १,४)

के काव्य तथा अन्य पुराणशास्त्र आदि ग्रन्थो का अच्छा अभ्यास किया था यह उनके काव्यो के पर्यावलोचन से बिल्कुल स्पष्ट है इसीलिये कालिदास पर वाल्मीकि के प्रभाव से इकार नही किया जा सकता है।

वृहत्कथा मे वर्णित यक्षो के शापो की कथाओ और महाभारत् श्रीमद्भागवत् तथा जातक कथाओ मे आये हुए दूत प्रसङ्गो से भी कवि ने कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो यह सम्भावना की जा सकती है।

यक्ष को अलकाधीश्वर कुबेर ने जो शाप दिया है उसका आधार पद्मपुराण है। वहॉ के 'योगिनी नामक आषाण–कृष्ण–एकादशी–महात्म्य प्रसङ्ग से जिस अश को लेकर महाकवि ने मेघदूत की उद्भावना की है वह निम्नलिखित है।

अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेर शिवपूजक ।
तस्यासीत्पुण्पवटुको हेममालीति नामत ।

श्रीमद्भागवत मे शिशुपाल से अपने विवाह की बात निश्चित होने पर रूक्मिणी ने एक ब्राह्मण को दूत बनाकर भगवान श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजा है।

अस्तु मेधदूत का प्रेरणा–स्थल जो भी हो, किन्तु इतना निश्चित है कि काव्य का सर्वप्रथम प्रणयन महाकवि कालिदास ने ही किया है। बहुभाषावित वङ्गीय विद्वान हरिनाथ दे लिखा है कि कालिदास के पूर्व चीन के कवि स्यूकाङ् ने अपने काव्य मे मेघ को दूत बनाया है। परन्तु स्यूकाङ् का समय ईसा पू द्वितीय शताब्दी है। इसलिए ई पू प्रथम शताब्दी मे विद्यमान कालिदास दूतकाव्य के सर्वप्रथम स्रष्टा है, इसमे किसी प्रकार का मीन मेष नही है।

वाल्मीकि से प्रभावित कालिदास की भॉति कालिदास ने प्रभावित अन्य कवियो ने दूत काव्य की रूढिया (परम्परा) स्थापित कर दी है। विक्रम कवि—कृत नेमिदूत धोयीकृत पवनदूत वेदान्तदेशिक कृत हससन्देश उद्दण्डकविकृत कोकिलसदेश पूर्णसरस्वतीकृत हस सन्देश विष्णुत्राताकृत कोकसदेश विनयप्रभकृत चन्द्रदूत माधवकवीन्दकृत उद्धवदूत वादिचन्द्र कृत पवनदूत आदि प्रमुख है।

पंचम अध्याय
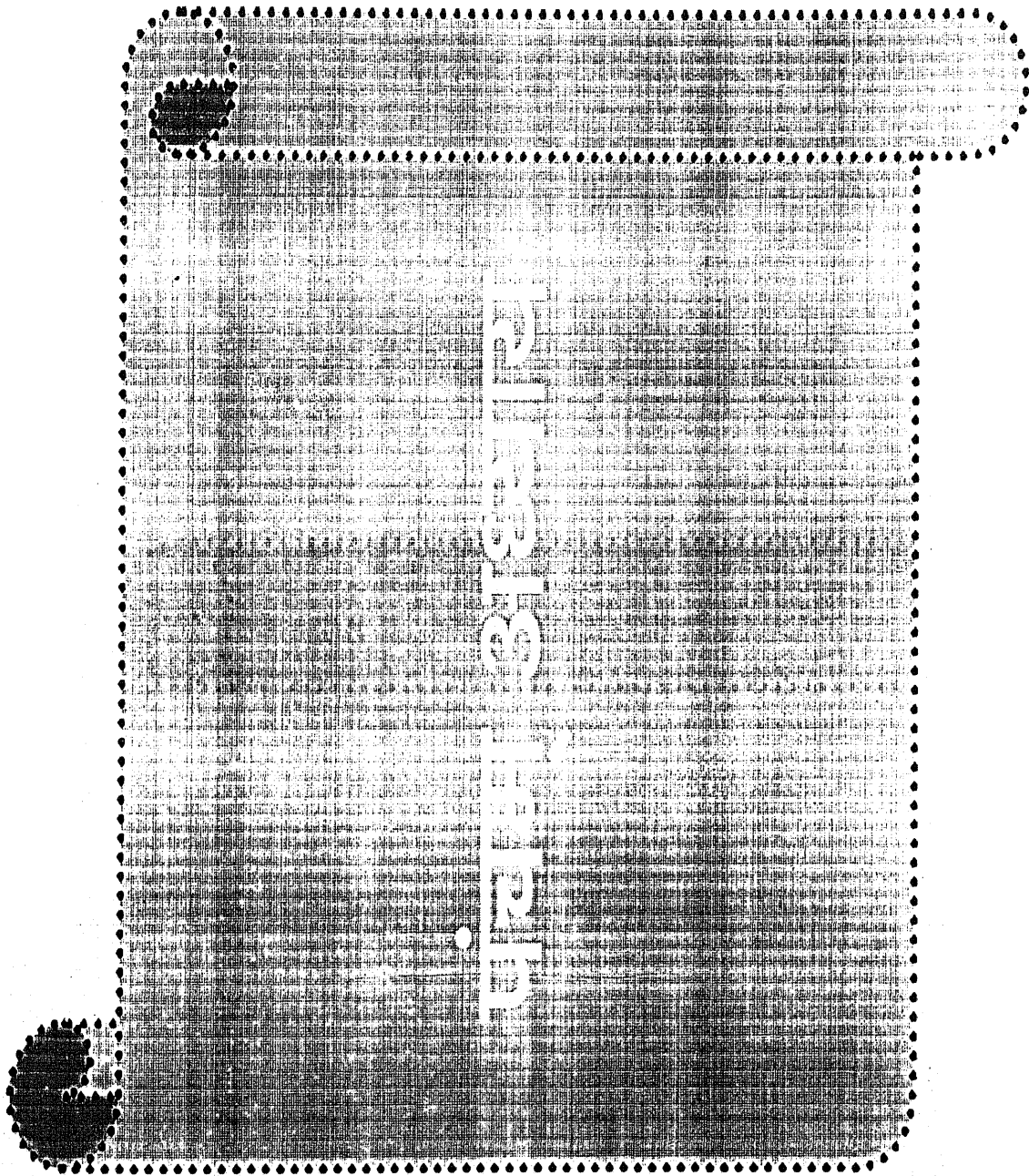
लघुत्रयी की शैलीगत रूढियों की व्याख्या

विश्व साहित्य मे कालिदास ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की है नि सन्देह उसका श्रेय उनकी शैली को है। कैसा भी नीरस से नीरस कथानक क्यो न हो अपनी कल्पना शक्ति और सृष्टि निपुणता से उसको सजीव व आकर्षक बनाने की कला मे वे निपुण है। उन्होने अपनी कृतियो की कथावस्तु प्राचीन आख्यानो से रूढियो (परम्परा) को लेकर उन्हे अपनी मनोरम कल्पना शक्ति द्वारा इस प्रकार सजाया है कि कथानक अत्यन्त रमणीय वन गये है।

महाकवि कालिदास के काव्य मे प्रसादगुणोपेत वैदर्भी रीति के ही सर्वत्र दर्शन होते है। कालिदास इस शैली के श्रेष्ठ कलाकार माने गये है– 'वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ।। वैदर्भी शैली की प्रमुख विशेषता है– प्रसाद गुण का होना। काव्य शास्त्रियो ने प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार किया है।

शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत् सहसैव य ।

व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थिति । का प्र ८

उनको इस प्रसाद गुण समन्वित शैली ने ही उनको विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियो मे स्थान प्राप्त कराया है। इस गुण से युक्त वैदर्भी रीति का लक्षण आचार्यों द्वारा इस प्रकार किया गया है।

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचनाललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्ति वैदर्भी– रीतिरिष्यते।। सा द ६/२–३

मधुर शब्द, ललित पदविन्यास, समासो का पूर्णतया अभाव अथवा कम समासयुक्त पदो का होना ही वैदर्भी रीति की विशेषता है। आचार्य दण्डी

तो कालिदास की वैदर्भी युक्त रचना शैली से बहुत प्रभावित हुए। उनकी मान्यता है कि वैदर्भी रीति की उद्भावना कालिदास ने ही की है।

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिर ।
तेनेद वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम्।।

माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णो के प्रयोग तथा दीर्घ समासो के अभाव उनका समस्त काव्य सुन्दर माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णो के प्रयोग तथा दीर्घ समासो के अभाव उनका समस्त काव्य सुन्दर एव सहज प्रेषणीय हो गया है। उनके काव्य मे कठोर महाप्राण ध्वनियो कर्कश सयुक्ताक्षरो तथा लम्बे समासो का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है।

काव्य मे श्रृङ्गार एव करूण रस की प्रधानता होने के कारण कालिदास की रचनाओ मे वसन्त ऋतु मे हिमालय पर रति–क्रीडा करती हुई किन्नर–किन्नरियो के अनुभवो का कवि ने बडे सरल शब्दो मे कथन किया है।

यत्राशुकाक्षेपविलज्जिताना यदृच्छया किपुरूषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वार विलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।। कु स १/१४

वसन्त का मादक प्रभाव सम्पूर्ण चराचर को अभिभूत कर देने वाला था और किन्नरो की तो यह दशा हो गई कि–

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशै किचित्समुच्छ्वासितपत्त्रलेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुख किपुरूषश्चुचुम्बे।। कु स ३/३८

तपस्या करती हुई पार्वती के इस वर्णन को भी ध्वनि काव्य की चमत्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

स्थिता क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता ।
वलीषु तस्या स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण प्रथमोदविन्दव ।।

कु स ५/२४

पार्वती के तपो परीक्षार्थ प्रस्तुत ब्रह्मचारी शङ्कर की परिहास की मधुरता बडे ही सुन्दर ढग से व्यक्त हुआ है।

कियच्चिर श्राम्यसि गौरि। विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसचित तप ।

तदर्धभागेन लभस्व काडक्षति वर तमिच्छामि च साधु वेदितुम्।

कु स ५/५०

तत्पश्चात् पार्वती की तपस्या से प्रसन्न शिव का मधुर सम्भाषण कितना यथार्थ है। नरोढा की श्रेष्ठता युक्त लज्जा एव उसके प्रियतम के नक्ष नखक्षत्रो को कितनी सुकुमारता के साथ कवि ने अङिकत किया है।

व्याहृता प्रतिवचो न सदर्भ गन्तुमैच्छदवलम्बिताशुका।

सेवते स्म शयन पराडमुखी सा तथापि रतये पिनाकिन ।।

कु स ८/२

रघुवश मे कोमलकान्त पदावली का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है। कालिदास की वैदर्भी विभिन्न भावो एव रसो की व्यञ्जना करने मे अत्यन्त निपुण है। वन मे नन्दिनी की सेवा करते हुए राजा दिलीप का यशोगान देवताओ ने गद्गद्कण्ठ से किया है।

स कीचकैर्मारूतपूर्णरन्ध्रै कूजद्भिरापादितवशकृत्यम्।

शुश्राव कुञ्जेषु यश स्वमुच्चैरूद्गीयमान वनदेवताभि ।। रघु २/१२

विवाह के अवसर पर इन्दुमती के स्वाभाविक सौन्दर्य की बडी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्ष प्रम्लानवीजाङ्कुरकर्णपूरम्।

वधूमुख पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्वभूव।। रघु ७/२७

नवम् सर्ग मे वसन्त के शनै–शनै आगमन का चित्र रेखाङ्कित करता हुआ कवि कहता है–

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।

इति यथाक्रममाविरभून्मधुद्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।। रघु ९/२६

वसन्तोत्सव के समय कामिनियो मधुर कल्पनाए एव उनकी श्रृङगारिक अनुभावो का कथन बडे ही सरल ढङग से करता हुआ कवि कहता है।

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सव पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया।

अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलता जलतामबलाजन ।। रघु ९/४६

तेरहवे सर्ग मे लङ्काविजय के पश्चात विमान से लौटते हुए राम वियोग के क्षण उन स्थानो को जहॉ उन्होने निवास किया था देखकर अत्यन्त भाव विभोर हो उठते है और सीता को दिखाते हुए कोमल शब्दो मे कहते है।

त्व रक्षसा भीरू । यतोऽपनीता त मार्गमेता कृपयालता मे।

अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्य शाखाभिरावर्जितपल्लवाभि ।। रघु १३/२४

असहाय राम के प्रति हारणियो की सहानुभूति कितने मार्मिक—सरल शब्दो मे व्यक्त हुई है।

मृग्यश्च दर्भाकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञ समबोधयन्माम्।

व्यापारयन्त्यौ दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।।

रघु १३/२५

चित्रकूट को देखकर राम पूर्वानुभूत मधुर बेला का स्मरण करते हुए मधुर शब्दो मे कहते हैं।

अय सुजातोऽनुगिर तमाल प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।

यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतस परिकल्पितस्ते।। रघु १३/४९

मेघदूत तो वर्णो की स्निग्ध पद शैय्या ही है। मधुर कल्पनाओ, सुकोमल पदो का ऐसा मणि काचन सयोग केवल यक्ष के सन्देश कथन मे

ही सम्भव हो सकता है। मेघ को अभिज्ञानार्थ अपने गृह का परिचय देता हुआ कहता है।

तस्यातीरे रचितशिखर पेशलैरिन्द्रनीलै क्रीडाशैल कनकदली–वेष्टनप्रेक्षणीय । मन्द्रेहिन्या प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण प्रेक्ष्योपान्त स्फरिततडित त्वा तमेव स्मरासि।। उ मे १७

पीडित यक्ष की विरहावस्था का चित्र रेखाङ्कित करते हुए कहता है–

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी नीत्वा मासान्कनक वलयभ्र शरिक्तप्रकोष्ठ ।। आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु वप्रक्रीडापरिणत– गजप्रेक्षणीय ददर्श।। पू मे २

यक्ष अपनी समझदारी से मेघ को अपने घर मे प्रवेश करने के लिये निर्देश देता है।

गत्वा सद्य कलभतनुता शीघ्रसपातहेतो
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्ण ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतिता कर्तुमल्लपाल्पभास
खद्योतालीविलसितनिभा विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।। उ मे २१

विरह की करूण धारा के मध्य भी सयोग की मधुर स्मृति को चित्रित करता हुआ यक्ष कहता है।

वामाश्चास्या कररूहपदैर्मुच्चयमानो मदीयैर्मुक्ताजाल चिरपरिचित त्याजितो दैवगत्या। सभोगान्ते मम समुचितो हस्तसवाहनानी यास्यत्यूरू सरसकदली स्तम्भगौरश्चलत्वम्।। उ मे ३६

करूण रस के वर्णन मे भी कालिदास ने सुन्दर शब्द विन्यास के माध्यम से काव्य निपुणता का परिचय दिया। पत्नी की मृत्यु पर विलाप करते हुए अज ने मानव की समस्त वेदना एकत्रित कर ली है।

विललाप स वाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु।। रघु ८/४३

पत्नी की मृतदेह को देखकर आशान्वित स्वर से कहते है।

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन भृङगरूचस्तवालकान्।
करभेरू ! करोति मारूतस्त्वदुपावर्तनशङिक मे मन ।। रघु ८/५३

सन्ध्या के समय उज्जयिनी मे महाकाल की आरती का कितने स्निग्ध शब्दो मे व्यक्त करता है।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्य ते नयनविषय यावदत्येति भानु ।
कुर्वन्सध्यावलिपटहता शूलिन श्लाघ्नीया
मामन्द्राणा फलमविकल लप्स्यसे गर्जितानाम्।। पूमे ३७

इस प्रकार कालिदास के काव्य मे भाषा का कोमल एव सरस रूप ही लक्षित होता है। कहीं भी दीर्घ समास एव कर्कश ध्वनियो का प्रयोग नही दिखाई पडता। यद्यपि वीर वीभत्स तथा रौद्र रसो मे गौणी रीति तथा वाञ्छनीय समझे जाते है। ऐसी रूढिया (परम्परायें) प्रचलित है कालिदास की कृतियो मे उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है।

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग मे विघ्न होने से कुथित शिव जी का चित्रण करते समय कवि प्रौढ शैली का प्रयोग करता है।

स्फरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष्ण कुशानु किल निष्पपात। कु स ३/७१

रधुवश मे रघुइन्द्र के अवसर पर गौणी शैली का अनुकरण किया गया है।

हरे कुमारोऽपि कुमारविक्रम सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनाम चिन्ह निचखान सायकम्।।
रघु ३/५५

रघुवश मे वीररस की ही प्रधानता है उसके लिए गौणी रीति ही उपयुक्त समझी जाती है। किन्तु वीर रस के इन स्थलो मे भी भाषा का सरस रूप ही समक्ष आता है।

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य वछुश शम गत ।

सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ।। रघु ११/७१

मुद्रिका खो जाने पर कुश के क्रोध का कथन कितने सहज ढग से हुआ है।

तत स कृत्वा धनुराततज्य धनुर्धर कोपविलोहिताक्ष ।

गारूत्मत तीरगतस्तरस्वी भुजडगनाशाय समाददेऽस्त्रम् ।। रघु १६/७७

आचार्यो तथा कवियो ने वैदर्भ मार्ग की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। राजशेखर ने वैदर्भी रीति को वाणी का मधु बताया है।[१] दण्डी ने कालिदास ने वैदर्भी मार्ग की प्रशसा की है।

परिमलगुप्त की दृष्टि मे वैदर्भी मार्ग खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण है जिस पर चलकर कालिदास आदि कवियो ने प्रशसा प्राप्त की है। तिलकमजरी मे धर्मपाल ने सम्पूर्ण रीतियो मे वैदर्भी रीति की अत्यन्त प्रशसा की है।[२]

विक्रमाड्कदेवचरित मे विल्हण ने कहा है वैदर्भी रीति अमृत की वर्षा करती हुई सरस्वती के विलासो की जन्मभूमि को अलड्कृत करती है।[३] नैषधकाव्य के प्रणेता श्रीहर्ष ने वैदर्भी रीति का प्रशसा की है। नायिका दमयन्ती भी वैदर्भी ही थी। वह वैदर्भी धन्य भी जिसने अपने उदार गुणो से नैषध (काव्य तथा काव्य का नायक नल) को आकृष्ट कर लिया था।[४]

इस प्रकार उपुर्यक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास रीति विवेचना मे रूढियो (परम्परा) का पूर्ण निर्वाह किया है।

---

१ कालरामायण, ३१४
२ वैदर्भीमिव रीतिनामधिकमुद्भासमानाम् नवसहसाड्कचरित २१५ तिलकमजरी
३ विक्रमाड्कदेवचरित। १/९
४ नैषधीयचरित ३/११६)

रस

'रसौ वै स ' रस तो जीवन का प्राण है। काव्य के आत्मतत्व विषय पर मतभेद रखते हुए सस्कृत काव्यशास्त्र के प्राय सभी आचार्यो ने रस (रसध्वनि) को ही काव्य का प्राण तत्व माना है। अलौकिक आनन्द को उत्पन्न करने वाले रसात्मक वाक्य को ही काव्य की सज्ञा दी गयी है। रस स्फुट पद्यो तथा समूचे प्रबन्ध मे दिखाई पडता है। जिस प्रकार महाकाव्य मे एक प्रधान कथानक होता है तथा जितने उपनायक अथवा प्रासङ्गिक कथावस्तुए होती है वे सब उसी प्रधान कथानक का पोषण करती है। ठीक उसी प्रकार प्रधान कथानक के मुख्य उद्देश्यो को दृष्टि मे रखते हुए प्रत्येक महाकाव्य तथा गीतिकाव्य मे एक प्रधान रस भी होता है। इस प्रधान रस को प्रबन्ध रस या 'अङ्गी रस' भी कहा जाता है। महाकाव्य मे अङ्गी रस के अतिरिक्त अन्य सभी रसो की भी योजना हो सकती है किन्तु ये सभी रस अङ्गी रस' के अतिरिक्त अन्य सभी रसो की भी योजना हो सकती है किन्तु ये सभी रस अङ्गी रस के पोषक के रूप मे प्रयुक्त होने चाहिए। काव्यशास्त्रीय रूढियो (परम्परा) के अनुसार श्रृङ्गार वीर शान्त इन तीन रसो मे से किसी एक को महाकाव्य के अङ्गी रस के रूप मे प्रयुक्त होने चाहिए अन्य सभी रस अङ्ग रूप मे प्रयुक्त होने चाहिए।

श्रृङ्गार वीरशान्तानामेकोऽङगी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा ।। सा द ६/३१७

रघुवश महाकाव्य मे प्रधान रस वीर तथा प्रधान रस के अतिरिक्त अङ्गी रसो का वर्णन श्रृङगार हास्य करूण रौद्र भयानक अद्भुत आदि रसो का प्रयोग देखने को मिलता है इस महाकाव्य मे काव्यशास्त्रीय रूढियो (परम्परा) को अपनाया है। कुमारसम्भव मे प्रधान रस श्रृङ्गार है तथा इसके अतिरिक्त हास्य, करूण भयानक, रौद्र आदि रसो का प्रयोग किया गया है। इस महाकाव्य मे भी महाकवि ने रूढियो का निर्वहन किया है।

मेघदूत मे विप्रलम्भ श्रृङ्गार का वर्णन किया गया है। इस गीति काव्य मे भी कवि ने रूढियो का प्रयोग किया है।

रस शब्द का अर्थ एव परिभाषा

भारतीय वाङमय मे रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो मे हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रमेण रस का अर्थ वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ। आदि मे यह शब्द किसी वस्तु के सार के रूप मे प्रयुक्त हुआ था और क्रमश इस शब्द से भाव सुख और आनन्द का बोध होने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक जगत मे जो ब्रह्मानन्द का वाचक था वही काव्यजगत मे ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यतत्त्व का वाचक हा गया।

भिन्न–भिन्न काव्यशास्त्रियो ने रस की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार स की है। भरत का प्रसिद्ध रससूत्र **विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति "** इसकी परिभाषा के रूप मे सर्वत्र उद्भूत किया जाता है। यद्यपि भरत के सूत्र रस की परिभाषा नही अपितु इसकी निष्पत्ति की प्रक्रिया की ओर सङ्केत मिलता है। किन्तु अधिकाश काव्यशास्त्री रस की परिभाषा के रूप मे इसी सूत्र को उद्घृत करते है अस्तु यह सूत्र रस सिद्धान्त का मूल बीज बन गया है अस्तु विभाव अनुभाव व्यभिचारी के सयोग से रस निष्पत्ति (अर्थात् उनसे सम्बद्ध स्थायी भाव की आनन्दमयी अनुभूति) होती है। इस शब्द मे सयोग तथा निष्पत्ति दो शब्द महत्वपूर्ण है। और जिस किसी आचार्य ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से रस सिद्धान्त की आलोचना प्रत्यालोचना की है उसका समस्त विवेचन इन्हीं दो शब्द के आधार पर है अधिकाश विद्वान यही स्वीकारते है कि सयोग का अर्थ है– किसी स्थायी भाव के अनुकूल विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावो का सम्मिलन। भरत ने स्वय निष्पत्ति शब्द की कोई व्याख्या नही की है। प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य लोल्लट श्री शङ्कुक, भट्टनायक आदि ने '**निष्पत्ति** शब्द की अपने–अपने

ढग से व्याख्या किया। भट्टलोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति करते है। अर्थात् उसके मतानुसार अनुकर्ता नट मे रस की उत्पत्ति होती है। श्रीशङकुक निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति करते है। अर्थात् दर्शक विभावादि द्वारा नट मे रस का अनुमान करता है। भटटनायक निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति करते है अर्थात दर्शक विभावादि के सयोग से रस का भोग करता है।

व्यञ्जनावादी आनन्दवर्धन ने रस को व्यङग्य माना तथा निष्पत्ति का अर्थ **'अभिव्यक्ति'** माना है। ध्वनिकार ने अनुभाव को अभिनवगुप्त ने रस स्वरूप को व्यङ्ग्य मानते हुए उनके निष्पत्ति प्रकार की प्रत्यभिज्ञादर्शन के सहारे अनुपम एव विशद व्याख्या की। कालान्तर मे आचार्य मम्मट विश्वनाथ पण्डितराज जगन्नाथ आदि सभी आचार्यो ने निष्पत्ति की प्राय वही परिभाषा स्वीकार की।

इस प्रकार भारतीय वाडगमय मे रस की परिभाषा द्विविध हो सकती है। जो आचार्य रस को विषयगत या वस्तुगत मानते है— उनके अनुसार नाट्य सौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य ही रस है। उनकी अनुभूति सामाजिक या पाठक को हर्षादि अनुभूतियो के रूप मे होती है। नाट्याचार्य भरत, अलङ्कारवादी भामह रीतिवादी वामन एव दण्डी, वक्रोक्तिवादी कुन्तक के अनुसार रस का यही स्वरूप हो सकता है। इन सभी आचार्यो के अनुसार रस आस्वाद्य है। जो आचार्य रस को विषयिगत भाव है वे रस को वस्तु मे नही अपितु व्यक्ति को चेतना मे स्थापित करते हुए नाट्य सौन्दर्य का काव्य सौन्दर्य जनित आनन्दानुभूति को ही रस की सज्ञा देते है। आनन्दवर्धन अभिनवगुप्त मम्मट विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यो ने रस का यही स्वरूप मानते है। इस प्रकार आनन्दवर्धन से लेकर अद्यतन यही परिभाषा रस की विश्वजनीन सी हो गयी है। इनके अनुसार रस का स्थायीभाव का आनन्दमय आस्वाद रूप है।

रस के अग

रस के प्रमुख तीन अग है। विभाव अनुभाव व्यभिचारिभाव इन सब के सामान्य गुण योग से ही इस निष्पत्ति सम्भव बताई गयी है।[1]

विभाव

लोक मे प्रचलित हेतु कारण अथवा निमित्त शब्दो के लिये रसशास्त्र मे पृथक रूप से विभाव शब्द को ग्राह्य किया है। शास्त्र मे वाचिक आङ्गिक एव सात्विक अभिनय के सहारे चितवृत्तियो का विशेष रूप से विभावना ज्ञापन कराने हेतु कारण अथवा निमित्त को विभाव कहते है। विभावन का अर्थ केवल ज्ञापन नही अपितु उसका अर्थ आस्वाद योग्यता तक पहुँचाना भी है। अतएव हम कह सकते है कि विभाव वासना रूप मे अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित रति आदि स्थायी भावो को आस्वाद योग्य बनाते है। ये दो प्रकार के होते है। आलम्बन तथा उद्दीपन। चित्तवृत्ति विषय के विषयभूत विभाव को आवलम्बन कहते है और उस निमित्त रूप सामग्री को जिससे जागरित भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है। उद्दीपन विभाव कहते है।[2] आलम्बन के पुन दो भेद है, विषय तथा आश्रय। इत्यादि भावो के जागरित होने के कारण स्वरूप विभाव ही विषय कहलाते है जिस व्यक्ति मे स्थायी भाव जागृति होते है वह उनका आश्रय होने के आश्रय कहलाता है।[3]

अनुभाव

भाव जागृति के पश्चात् होने वाला और विकारो को अनुभाव कहते

१ नाट्यशास्त्र पृष्ठ ८०
२ यस्या चित्तवृत्ते यो विषय स तस्या आलम्बनम्।
निमित्तानि च उद्दीपकानि इति बोध्यम्। रसगङ्गाधर पृष्ठ ३३
३ आद्योऽपि द्वैधा विषयाश्रयभिदात् । सा कौ पृ २६

है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर अनु पश्चाद् भाव उत्पत्ति येषाम् अथवा अनु पश्याद् भावौ यस्य सोऽनुभाव स्थायी भावो के जागृति होने के पश्चात् इन्हे कार्य रूप ही मानना चाहिए।[१] आचार्य विश्वनाथ ने रसोद्बोध की दृष्टि से विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो तीनो को ही कारण माना है।[२] पण्डित राज जगन्नाथ ने भी रस की अनुभावना कराने वाले कारको को अनुभाव कहते है।

व्यभिचारीभाव

व्यभिचारी शब्द **वि+अभि+चर्'** धातु का योग दिखाई पडता है। अतएव वाक् अड्ग तथा सत्त्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल सञ्चरण करने वाले भावो को व्यभिचारी अथवा सचारी भाव कहते है।[३] व्यभिचारीभाव स्थायीभाव के परिपोषक तथा उन्हे रसावस्था तक पहुँचाने वाले होते है। अस्थिरता उनका विशेष गुण है। स्थायी भाव के साथ इनका सम्बन्ध वारिधि ा के साथ कल्लोल का है। उनका आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है।[४] इसीलिए उन्हे अचिर अन तस्थित जनकवाला तथा सचारी भी कहते है। स्थायित्व के सहायक मात्र कहे जा सकते है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने स्पष्टत इन्हे स्थायीभाव का सहकारी कहा है।[५]

स्थायीभाव

स्थायीभाव मानव मन की सूक्ष्म कृतियो से सम्बन्धित अथवा वासना रूप से प्रमाता के चित्त मे सदैव रहने वाल भावो को कहते है।

१ उद्बुद्ध कारणै स्वै स्वैर्वहिभाव प्रकाशयन्।
लोके य काव्यरूप सोऽनुभाव काव्यनाटययो।। सा द ३/१३२

२ कारण–कार्य सचारिरूपा अपि हि लोकत।
रसोद्बोधे विभावात्या कारणान्येव ते मता। सा द ३/१४

३ नाट्यशास्त्र पृष्ठ ८४ चौखम्भा

४ विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचरिण। दशरूपक ४/६

५ काव्यप्रकाश ४/२६६

कारण के अनुपस्थित रहने पर भी स्थायीभाव की सत्ता रहती है। जबकि शेष भाग कारण के अभाव मे नि श्शेष हो जाते है। काव्य मे स्थायीभाव ही अनुकूल विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भावो के सयोग से ही रस रूप प्राप्त करने मे समर्थ होता है। स्थायीभाव अपने विरोधी अविरोधी किसी भी भाव से नही होते।[1] वे स्वय दूसरे मतो को अपने मे अन्तर्निहित कर लेते है। इसमे चिर स्थायित्वकाल आप्रबन्धस्थायित्व तथा अविच्छिन्न प्रवाहमयता होती है। स्थायीभाव चर्वणीय एव आनन्ददायी होते है। स्थायीभाव की वासना रूपता के सम्बन्ध मे अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम विचार किया जिसका अनुशरण परवर्ती आचार्यो ने किया। इनकी सख्या आठ मानी है।[2] कालान्तर मे इनकी सख्या नौ दस तक पहुँच गयी। इनके नाम है। रति शोक हास उत्साह क्रोध, विस्मय जुगुप्सा भय तथ निर्वेद। निर्वेद यद्यपि एक व्यभिचारी भाव भी है किन्तु सात्विक निर्वेद (ज्ञातजन्य) शान्त रस का स्थायी भाव माना गया है।

रस के भेद

मानव के अन्त मे जितने स्थायी भावो की कल्पना की जाती है उतने ही काव्य मे रसो की गणना की गयी है। जैसा कि कहा गया है कि आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र मे 'आठ रस[3] तथा आठ स्थायी[4] भावो की गणना की गयी है। महाकवि कालिदास भी विक्रमोर्वशीयम् मे अष्ट रस[5] की ओर सङकेत करते है। भरत द्वारा आठ रस तथा आठ स्थायी भाव के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले काव्याचार्य यह कहते है कि भरत शान्त

---

१ दशरूपक ४/३४ सा द १७४ रसगङगाधर पृष्ठ २६
२ नाटयशास्त्र/ ६/१५–१६
३ श्रृङ्गार– हास्य करूण । भरत नाटयशास्त्र ६/१५–१६
४ रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्सा जुगुप्सा
विस्मयश्चेति स्थायीभावा प्रकीर्तिता । नाट्यशास्त्र ६/१७
५ मुनिना भरतेन या प्रयोगो भवतीष्टवण्टरसाश्रयो नियुक्त । कालिदास विक्रमो ११/१८

को रस के रूप मे मान्यता नही देते और न शम अथवा निर्वेद को स्थायी भाव के रूप मे मान्यता नही देते और न शम अथवा निर्वेद को स्थायी भाव के रूप मे उल्लेख करते है। इस प्रकार भरत से लेकर आचार्य भामह तथा दण्डी तक (शान्त रस को छोडकर) आठ रस का सिद्धान्त काव्यशास्त्र मे मान्य रहा।

शान्तरस का सर्वाधिक विरोध करने वालो मे नाटयाचार्य धनञ्जय तथा धनिक प्रमुख है।

रघुवश

रघुवश महाकवि कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस काव्य मे महाकवि ने सूर्यवश मे उत्पन्न महाराज रघु का तथा उनसे चलने वाले राजवश का काव्यात्मक वर्णन किया है। एक–एक वश के अनेक नायक महाकाव्य के नायको के रूप मे इसी काव्य मे देखे जाते है। सम्भवत इसी को देखकर अनेक नायक महाकाव्यो के नायको के रूप मे इसी काव्य मे देखे जाते है। सम्भवत इसी को देखकर बाद के साहित्याचार्यो ने महाकाव्य का यह लक्षण दिया।

'एकवश भवाभूपा कुलजा वह्वोऽपि वा।' साहित्यदर्पण ६/३१६

अनेक नायको के चरित्र से आपूर्ण होते हुए भी इस महाकाव्य का अथ् से इति तक प्रधान रस वीर है, और उसी के विविधि रूप चित्रित हुए है। कोई दानवीर है तो कोई युद्धवीर, कोई धर्मवीर है तो कोई दयावीर, और कोई दान और धर्म दोनो मे वीर है। इस प्रकार प्रत्येक नायक अपूर्व साहस, निर्भीकता शौर्य एव शक्तिमत्ता से युक्त है उनके चरित्र मे दान धर्म, दया करूणा, अनुग्रह इत्यादि उदात्त गुणो का सग्रह दिखाई पडता है।

रघुवश के प्रथम उन्नायक महाराज दिलीप धर्मप्रवण नायक है। इस महाकाव्य मे दिलीप का वर्णन केवल रघुवश के प्रवर्तक महाराज रघु के हेतुभूत नरेश के रूप मे किया गया है। साथ ही उनके दिव्य गुणो की प्रशसा की गयी है कि जिससे रघु के गुणो का महनीय स्रोत स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

इस प्रकार महाराज दिलीप के सत्त्वगुणो को रघु के दिव्य गुणो के बताने के लिये भूमिका रूप मे हुआ है।

वशधर कोई पुत्र न होने से महाराज अत्यन्त दु खी रहा करते है अतएव पुत्र प्राप्ति के कुछ उपाय करने के लिए अपने प्रिय पत्नी साम्राज्ञी सुदक्षिणा सहित गुरू वशिष्ट के पास जाते है और उनसे अपने आगमन का प्रयोजन बताते है।[1] मुनि वशिष्ठ अपने दिव्य चक्षु द्वारा सभी कारणो को ज्ञातकर, दिलीप को नन्दिनी की सेवा मे तत्पर हो जाने का उपदेश देते है।[2] महाराज उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर बडी ही निष्ठापूर्वक मनसा वाचा, कमर्णा मुनि की होम धेनु नन्दिनी की सेवा मे पत्नी सहित तत्पर हो जाते है।[3] पुत्र के लिये वह कठिन शारीरिक यातना को प्रसन्नतापूर्वक सहते है और गुरू की धार्मिक क्रियाओ को सम्पन्न करने वाली गौ के पीछे–पीछे उनकी परछाई के समान लगते रहते है।[4] किन्तु परम् अभीष्ट पुत्र प्राप्ति का लाभ होने से पूर्व ही उनकी एक ऐसी परीक्षा होती है जिससे महाराज दिलीप अतिमानव के रूप मे दिखाई पडते है। मायासिह गौ को किसी भी तर्क पर छोडना स्वीकार नही करता है। तब उनका क्षत्रिय धर्म जाग्रत हो उठता हे और वे पुत्र प्राप्ति के भी मूलभूत अपने

---

१ किन्तु बध्वा तवैतस्यामदृष्ट सदृशप्रजम्। न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदनी।। रघु १/६५

२ सुता तदीया सुरभे कृत्वा प्रतिनिधि शुचि।
आराधय सपत्नीक प्रीता कामदुधा हि सा।। रघु १/८१

३ अथेप्सित भर्तुरूपस्थितोदय सखीजनोद्वीक्षण कौमुदीमुखम्।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्तते सुदक्षिणा दौर्हदलक्षण दधौ।। ३/१

४ छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत्। २/६)

शरीर की गौ के बदले मे अर्पित कर देते है।[1] धेनु की प्राण रक्षा के लिये अब उन्हे न वश मानना चाहिए न स्वर्ग न पितृलोक। धर्म की रक्षा के लिए महाराज अपने त्रिवर्ग को भी त्यागने के लिये तैयार हो जाते है।[2] राजा की एकनिष्ठ भक्ति भावना को देखकर नन्दिनी अति प्रसन्न हो उन्हे पुत्र लाभ का अमोध वरदान देती है।[3]

इस प्रकार यहॉ आश्रय दिलीप एव आलम्बन सिह है उसके द्वारा गौ की अपनी हिसा का शिकार बनना उद्दीपन विभाव है। सिह का वध करने के लिये राजा द्वारा वाण चलाने के लिये तत्पर होना गौ छोडने के लिये करूण याचना करना तथा देह त्याग करना इत्यादि अनुभाव है तथा दैन्य मोह जडता, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

इस प्रकार नन्दिनी के रस प्रसङ्ग मे दिलीप के धर्मवीर का उच्चतम रूप व्यञ्जित होता है। वे ऐसे अनुपम वीर है जिन्होने लोक मे वीर शब्द को स्वय बाहुवल से प्राप्त किया है। दिलीप के दयावीर की भी सुन्दर व्यञ्जना की गयी है। कवि ने उनके दयाभाव का आलम्बन दबोची गयी कातर आखे बतायी है जिसे देखकर करूणावरूणालय उमड पडता है।[4] दिलीप के पश्चात् ऐसा वीर महापुरूष अब इक्ष्वाकु वश के सिहासन का स्वामी बनता है, जो अपने नैसर्गिक गुणो से वश का कर्ता कहलाता है क्योकि महाराज दिलीप ने नन्दिनी से अनन्त कीर्ति से सम्पन्न वश का कर्ता ही, पुत्र रूप मे मागा था।[5] रघु के वीरोचित गुणो के कारण इक्ष्वाकु वश अब रघुवश के नाम से चल पडता है।

---

१ तथेति गामुक्तवते दिलीप सद्य प्रतिष्टम्भविमुक्तवाहु।
सन्यस्त हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डभिवामिषस्य।। २/५९

२ सन्यस्त । रघु २/२६

३ किमप्यहिस्यस्तव चेन्मतोऽह यश शरीरे भव मे दयालु।।
एकान्तविध्वसिषु मद्विधाना पिण्डष्वनास्था खलु भौतिकेषु।। २/५६

४ धेन्वा तदध्यासित कातराक्ष्या निरीक्ष्यमाण सुतरा दयालु। २/५२

५ वशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणाया तनय यायाचे। रघु २/६४

यौवन का प्रारम्भ होने के पूर्व ही कवि ने रघु के वीर चरित की व्यञ्जना हेतु इनको परास्त करने वाला युद्धवीर का स्वरूप समक्ष उपस्थित किया है। इन्द्र द्वारा अपने पूज्य पिताजी के अश्वमेघ यज्ञ का अश्व अपहरण कर लिये जाने पर कुमार रघु क्रोधारक्त हो उठते है तथा उच्च गम्भीर स्वर से इन्द्र को ललकारते हुए कहते है।[१] हे देवेन्द्र ! विद्वानो का कथन है कि यज्ञ का भाग सर्वप्रथम आपको ही मिलता है और मेरे पिता जी आप के लिये ही यज्ञ कर रहे है फिर भी आप उनकी यज्ञ क्रिया मे विघात क्यो डाल रहे है ?[२] हे त्रैलोक्य स्वामी ! यज्ञ कार्यो मे विघ्नकर्ता को दण्डित करना ही आपको शोभा देता है किन्तु यज्ञ मे आप ही बाधा डालेगे तो ससार से धर्म ही विलुप्त हो जायेगा।[३] इसलिए हे इन्द्रदेव आप मेरे पिता के यज्ञ का अश्व छोड दीजिये क्योकि वेद का मार्ग दिखाने वाले महात्माओ को ऐसा कलङ्कित कार्य करना शोभा नही देता। रघु के इन गर्वपूर्ण वचनो को सुनकर इन्द्र आश्चर्य चकित रह जाते है और रथ घुमाकर कहते है– हे ! राजकुमार ! तुम्हारा सत्य है किन्तु यशस्वियो का शत्रुओ से अपने यश की रक्षा करना परमकर्तव्य है ! मैने सौ यज्ञ करने का जो विश्व प्रसिद्ध यश अर्जित किया है उसे तुम्हारे पिता तिरस्कृत करना चाहते है। हम देवगण जिन नामो से विश्वविख्यात है, उस सज्ञा को कोई अन्य धारण नही कर सकता।[४] इसलिए हे कुमार ! तुम इस अश्व को छुडाने का प्रयत्न मत करो। अन्यथा कपिल मुनि के क्रोध से सगर के साठ सहस्त्र पुत्रो के समान तुम भी मेरी क्रोधाग्नि से जल कर भस्म हो जाओगे।

---

१ अवोचदन गगनस्पृशा रघु स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव। रघु ३/४३

२ मरवाशभाजा प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे।
अजसदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरो क्रिया विधाताय कथ प्रवतसे। रघु ३/४४

३ त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा।
स चेत्स्वय कर्मसु धर्मचारिणा त्वमन्तरायो भवसिच्युतो विधि ।। रघु ३/४५

४ हरिमथैक पुरूषोत्तम स्मृतो महेश्वरस्त्रयम्बक एव नापर ।
तथा विदुया मुनय शतक्रतु द्वितीयगामी नहि शब्द एष न ।। रघु ३/४६

उद्दीपन विभाव रूप इन्द्र के इन वचनो को सुनकर रघु उत्साहित हो उठते है और निर्भय हास्य सहित इन्द्र से कहते है– 'यदि आप का यह दृश्य निश्चय है तो उठाइये शस्त्र और युद्ध कीजिए[1] रघु को परास्त किये बिना आप अश्व नही ले जा सकते। इस प्रकार रघु बडी तत्परता से अपने अचूक वाण से इन्द्र के वक्षस्थल पर प्रहार करते है और फिर मयूर पङ्ख वाले दूसरे वाण से उनकी ध्वजा को काट देते है। ध्वजा भेदन हो जाने के पश्चात इन्द्र ऐसे क्रोधित हो उठते है मानो किसी ने उनकी राजलक्ष्मी का ही शिरच्छेदन कर दिया हो। इस प्रकार अप्रतिहत योद्धा रघु और इन्द्र का घमासान युद्ध होता है, जिसे देखकर देवगण भी विस्मयान्वित हो उठते है।[2] इसी बीच बडी निपुणता पूर्वक इन्द्र की डोरी काट डालते है। धनुष की डोरी कट जाने पर इन्द्र क्रोध से तमतमा उठते है और वह अग्नि के समान दैदीप्यमान वज्र से रघु पर प्रहार करते है। वज्र के आघात से रघु पृथ्वी पर गिर पडते है किन्तु क्षण भर मे ही पुन इन्द्र से युद्ध करने के लिये आ डटते है। कुमार की इस अद्वितीय वीरता को देखकर इन्द्र अति प्रसन्न होते है और कहते है[3] मेरे कठोर वज्र से असह्य चोट को सहने वाले हे राजकुमार ! मै तुम्हारी वीरता से अति प्रसन्न हूँ। इसलिए अश्व के अतिरिक्त तुम्हारा जो भी इच्छित हो मुझसे माग लो।[4]

यहाँ आश्रय रघु आलम्बन इन्द्र है। इन्द्र द्वारा अश्व हरण करना उद्दीपन विभाव। रघु द्वारा वाण सञ्चालन, भुजाच्छेदन ध्वजाच्छेदन धनुषभेदन तथा इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारना इत्यादि अनुभाव है।

---

१ तत प्रहस्यापभय पुरन्दर पुनर्वभाषे तुरगस्य रक्षिता।
गृहाण शस्त्र यदि सर्ग एष ते खल्वनिर्जित्य रघु कृती भवान्।। रघु ३/५१

२ जहार चान्येन मयूरपत्रिण शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृश सुरश्रिय प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव।। रघु ३/५६

३ तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पद हि सर्वत्रगुणैर्निधीयते। रघु ३/६२

४ अवैहि मा प्रीतिमृते तुरङ्गमत्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासव ।। रघु ३/६३

अमर्ष मद चपलता इत्यादि व्यभिचारी भाव है। इसी प्रकार धर्मवीर[1] दानवीर[2] तथा दानवीर[3] की अभिव्यक्ति सुन्दर वाक्यो मे की गयी है।

रघुवश के अनेक सर्ग श्रृङ्गार रस से आप्लावित है। महाकवि तथा विप्रलम्भ दोनो प्रकार के श्रृङगार के वर्णन मे सिद्ध हस्त है।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाक शालीनतया न वक्तुम्।।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टि भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्या ।।

रघु ६/८१

प्रस्तुत श्लोक मे इन्दुमती के अनुभावो का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। शालीनता के कारण इन्दुमती अपने प्रेम की वार्ता को वाणी न दे सकी किन्तु रोमञ्च ने सम्पूर्ण हृदय के भावो को अभिव्यक्त कर दिया। यहॉ इन्दुमती आश्रय है तथा अज आलम्बन।

रोमाञ्चित होना तथा लज्जित होना अनुभाव है हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। इन सभी भावो से श्रृङ्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। रघुवश का उन्नीसवा सर्ग श्रृङ्गार रस से परिपूर्ण है। रघुवश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण श्रृङ्गार के समुद्र मे मज्जित रहने के कारण अपने वश सहित स्वय को नष्ट करके विश्व को यह शिक्षा देता है कि असयमित काम का भोग आयु एव यश का यमराज है।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एव मनोज्ञ वर्णन राम परित्यक्ता सीता की भाव विह्वलता मे प्राप्त होता है। दुखातिभार के कारण सज्ञा शून्य सीता को दुख का भार इतनी दुखदायी न हुआ, जितना होश मे मे आने पर प्रबोध।

---

१ गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृप । श्रिय महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्।। रघु ४/४३

२ तमध्वरे विश्वजिति क्षितीश निशेषाविश्राणितकोशजातम्।
उपात्तविद्यो गुरूदक्षिणाऽर्थी कौत्स प्रपेदे वरतन्तुशिष्य ।। रघु ५/१

३ स त्व मदीयेन शरीरवृति देहेन निवर्त्तयितु प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यता धेनुरिम महर्षे ।। रघु २/४५

सा लुप्तसज्ञा न विवेद दु ख प्रत्यागतासु समतप्यतान्त ।
तस्या सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतर प्रबोध।।

रघु १४१/५६

महाकवि कालिदास का करूणरस अत्यन्त हृदय द्रावक है। इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात अज की करूणा किसको करूणा के समुद्र मे मज्जित नही कर देती है।

गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करूणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद कि न मे हृतम्।।
मदिराक्षि मदाननार्पित मधु पीत्वा रसवत्कथ नु मे।
अनुपास्यसि वाष्पदूषित परलोकोपनत जलाञ्जलिम्।।

रघु ८/६७–६८

इस सर्ग मे कवि ने अज के नेत्रो से इतनी करूणा की धारा बहवायी है कि समस्त वनस्थली के रोम–रोम से करूणा की धारा बहने लगी वृक्षो ने अपनी अश्रुधारा मे अचेतन को भी आवर्जित कर दिया। यद्यपि हास्यरस रघुवश का विषय नही है तथापि कवि ने कहीं–कही इसकी भी अभिव्यक्ति करायी है।

तथागताया परिहासपूर्व सख्या सखी वेत्रभृदाबभाषे।
आर्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैना वधूरसूयाकुटिल ददर्श।। रघु ६/८२

सखियो के हास परिहासात्मक अनुभावो से **हास्य रस** की अभिव्यक्ति हो रही है। रघुवश महाकाव्य मे **रौद्र रस** की स्थान–स्थान पर सुन्दर अभिव्यञ्जना मिलती है। ताडकावध परशुराम और राम–सवाद तथा पचवटी मे शूपर्णखा की उपस्थित के समय रौद्र रस का मूर्तिमान रूप दिखाई पडता है। एक उदाहरण देखिये।

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलीत सागरेऽपि य ।

रघु ११/७५

प्रस्तुत वाक्य से परशुराम का क्रोध अभिव्यक्त हो रहा है इस प्रकार कवि के वाक्यो से वीभत्स[१] भयानक[२] अद्‌भुत[३] तथा शान्तरसो[४] की अभिव्यक्ति हुई है। यह कवि की कुशलता है कि अपने वाक्यो से किस प्रकार पाठक को रसमयता की पराकाष्ठा को प्राप्त करा सके।

इस प्रकार रघुवश वीररस प्रधान महाकाव्य है। इस महाकाव्य मे रूढियो का प्रयोग महाकवि ने किया है कि रघुवशी राजा वर्णश्रम नियमो के पालन मे सदैव जागरूक रहते थे। उनके राज्य मे सभी आश्वस्त थे। परित्याग के बाद सीता को यह विश्वास है कि मनु के द्वारा बताये गये नियमो का पालन करना राम का धर्म है। मनु ने कहा है राजाओ का धर्म वर्णो तथा आश्रमो की रक्षा करना है। इसलिए घर से निकाल देने पर भी आप यह समझकर मेरी देखभाल करना कि सीता भी एक साधारण तपस्विनी है" राम की प्राणवल्लभा की यह मन स्थित कि अब वह प्रियतम राम के साथ राजा प्रजा के सामान्य सम्बन्धो पर निर्भर हो रही है।[५]

कुमारसम्भव

'कुमारसम्भव कालिदास का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इस

---

१ उपान्तयोर्निष्कुषित विहङ्गैराक्षिप्य तेभ्य पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार।। रघु ७/५०

२ स छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्य भग्नाक्षपर्यस्तरथ क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोध सेनानिवेश तुमुल चकार।। रघु ५/४६

३ वामेतरस्तस्य कर प्रहर्त्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङगुलि सायकपुड्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे। रघु २/३१

४ वनान्तरादुपावृत्तै समित्कुशफलाहरै ।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्यूद्या– तैस्तपस्विभि ।। रघु १/४६

५ रघु १४/६७

महाकाव्य मे कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का मुख्य कथनक शङकर—पार्वती के प्रेमाख्यान तथा विवाह के माध्यम से विकसित हुआ है। काव्य के प्रारम्भ से ही कवि का मुख्य उद्देश्य शिव पार्वती का सयोग कराना रहा है इसलिए सम्पूर्ण काव्य कलेवर मे श्रृङ्गार रस की धारा प्रवाहित हुई है। यह श्रृङ्गार पूर्वराग से प्रारम्भ होकर प्रेम की समस्त अवस्थाओ को पार करता हुआ अन्त मे (शङ्कर पार्वती के) सयोग (विवाह) मे पर्यवसित हो जाता है। इसलिए प्राप्त अश कुमारसम्भव मे प्रधान रस या अङ्गीरस श्रृङगार को ही स्वीकार करना चाहिए।

साहित्यशास्त्र के आचार्यो ने श्रृङगार रस को श्रेष्ठ तथा अधिक व्यापक स्वरूप मे स्वीकार किया है।[1] आनन्दवर्धन ने भी उसे मधुर रस माना है (श्रृङ्गार एव मधुर पर प्रह्लादनोरस) श्रृङ्गार रस दो प्रकार का होता है— सभोग[2] तथा विप्रलम्भ[3] किन्तु दोनो ही अवस्थाओ मे इसका स्थायीभाव रति ही है, जो विभावानुभाव तथा व्यभिचारी भाव से पुष्ट होकर श्रृङ्गार—रस रूप मे प्रतिफलित होती है। नायक—नायिका इसके आश्रय एव आलम्बन होते है। उनके परस्पर दर्शन कटाक्ष प्रस्वेद रोमाञ्च अश्रू भ्रूविक्षेपादि आङ्गिक व्यापार अनुभाव कहे जाते है इसमे तैतीस व्यभिचारी भाव होते है। कुमारसम्भव मे नायक शङकर एव नायिका पार्वती है। काव्य मे एक बात अवधेय है कि प्रारम्भ के पचम सर्ग तक पार्वती आश्रय है तथा शिव अवलम्बन क्योकि यहॉ तक के कथानक मे शिव को प्राप्त करने के लिये पार्वती की ओर से प्रयत्न होता है, किन्तु पचम सर्ग के

---

१ यत्किचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्जवत दर्शनीय वा तृच्घृगोरणोपमीयते। नाट्यशास्त्र ६/४५
सर्वरसेभ्य श्रृङ्गारस्य प्राधान्य अनुसरति रस्यामस्य नान्य सकलभिदमनेन व्याप्तमावालवृद्धम्
तदिति विरचनीय सम्यगेव प्रयत्नादूभवति विरसमेवानेन हीन हि काव्यम्।। श्रृ प्र

२ दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवते विलासिनी।
यत्रानुरक्तावन्योय सम्भोगोऽयमुदाहृत ।। सा द ३/२९० पृष्ठ १४८

३ यत्र तु रति प्रकृष्टानामीष्टमुपेति विप्रलम्भोऽसौ। सा द ३१/८७ पृष्ठ २३३

उपरान्त (पार्वती तपस्या सिद्धि के पश्चात) आश्रय शिव हो जाते है तथा आलम्बन पार्वती क्योकि अब शिव को पार्वती प्राप्ति के लिये त्वरा होती है। इस प्रकार उभयनिष्ठ होकर रति पूर्व श्रृङ्गार योग्य बनती है।

श्रृडगार प्रधान होने के कारण कुमारसम्भव प्रेम प्रधान काव्य है। सस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यान प्रधान काव्यो का अनुशीलन करने के बाद उसमे मुख्यत चार प्रकार के प्रेम का स्वरूप समक्ष आता है।

प्रथम प्रकार के प्रेम की झॉकी हमे राम सीता के जीवन मे लक्षित होती है। यह प्रेम विवाहोपरान्त स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ होता है तथा जीवन की विकट परिस्थितियो मे अधिक निखर उठता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम गान्धर्व विवाहो के प्रसङ्गो मे देखा जाता है। नायिका तथा नायक का अकस्मात मिलन होता है और उसमे परस्पर अनुराग हो जाता है फिर प्राप्ति के लिये व्याकुलता होती है। इस प्रकार की प्रेम कथा विवाह तक चलती है और विवाहोपरान्त उसका प्रसङ्ग हो जाता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम रत्नावली—प्रियदर्शिका इत्यादि नाटको मे दृष्टिगोचर होता है। वस्तुत प्रेम नही वरन् के राजाओ के अन्त पुर मे भोग विलास का चित्रण मात्र है। इसमे प्रयत्न कही नहीं केवल फल योग है। उदयन सम्बन्धी प्रेमाख्यान मे प्राय इसी प्रकार का प्रेम मिलता है और चौथे प्रकार का प्रेम वह है जो चित्रदर्शन स्वप्नदर्शनादि से उत्पन्न होता है और फिर प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न होता है तदन्तर विवाह चित्रण के साथ समाप्त हो जाता है, जैसा ऊषा अनिरूद्ध का प्रेम, नल दमयन्ती का प्रेम।

कुमारसम्भव मे वर्णित प्रेम चौथे प्रकार का है इस काव्य के प्रथम सर्ग मे विभावरूप पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण, श्रृङ्गार रस का उत्कृष्ट पोषक है। क्योकि कवि ने प्राय उन्हीं अङ्गो का वर्णन किया है जो यौवन

के आने पर अङगना मे विशेष आकर्षक हो उठते है जैसे मुख स्मित कटि जङघा गति इत्यादि।

कुमारसम्भव का सप्तम् का उत्तरार्द्ध और अष्टम् सर्ग तो श्रृङगार रस का मानस सरोवर है जहॅा सहृदय हस ही विहार कर सकते है। शिव पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अभिभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिये समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिये भागीरथी। यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी।

त यथात्मसदृश वर वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।

सागरादनपगा हि जान्हवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्ति भाक।।

कु स ८/१६

सभोग श्रृङगार के एक सुन्दर प्रसङ्ग मे कवि ने पार्वती के अधर क्षत की औषधि शिव शिर स्थित चन्द्रकला बतायी है।

दष्टमुक्तमधरोष्ठभम्बिका वेदनाविधुतहस्त पल्लवा।

शीतलेन निरवापयत् क्षण मौलिचन्द्रशकलेन शूलिन ।। कु स ८/१८

एक अन्य उदाहरण–

क्लिष्टकेशमबलुप्तचन्दन व्यत्ययार्पितनख समत्सरम्।

तस्य तच्छिदुरमेखला गुण पार्वतीरतम भून्न तृप्तये।। कु स ८/८३

चन्दन का लुप्त होना, नख–क्षत की प्रतीति करधनी का टूटना कुन्तलो का शिथिल होना आदि अनुभावो के द्वारा सभोग श्रृङ्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। यहॅा शिव की चेष्टाए अनुभाव रूप है तथा पार्वती की चेष्टाये उद्दीपन रूप सम्भ्रम चपलता, ब्रीडा, व्यभिचारीभाव है।

धीरे–धीरे पार्वती का मुग्धात्व मिटने लगता है और अव ईषत् प्रगल्भा मध्या नायिका[१] का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अब उनकी सारी सकोच और झिझक समाप्त होने लगती है। इस प्रकार उनकी गति विधियो से यह पता चलने लगता है कि वे आपस मे घुलमिल गये है तथा उनका प्रेम अब 'गूठमितरेतराश्रयम् हो जाता है।[२]

श्रृङ्गार के इन स्थलो पर अनभावो व्यभिचारियो की ही छटा सर्वत्र व्यञ्जित होती है। बीच–बीच मे प्रकृति का रम्य चित्रण नायक नायिका के प्रेम मे अधिक तीव्रता लाने के लिए उद्दीपन विभाव रूप मे किया गया है।[३] इस सर्ग के सभी श्लोक श्रृडगारिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'वात्स्यायन कामसूत्र का गहन अध्ययन किया था। सर्गान्त मे पार्वती का वह रूप समक्ष आता है जो उसे स्मरान्धा प्रगल्भा की कोटि मे रख छोडता है और इधर शङ्कर भी दक्षिण नायक के समान उन्हे सब प्रकार से प्रसन्न करते रहते है।

यही वह स्थल है जिसके कारण साहित्य के आचार्यो ने कवि द्वारा वर्णित शङ्कर पार्वती के अनौचित्य प्रवाह पर अङ्गुली उठाई है।[४]

चुम्बनेष्वधरदानवर्जित सन्नहस्तसदयोपगूहनम्।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रिय प्रभोर्दुलभ प्रतिकृत वधूरतम्।। कु स ८/८

शिव जब पार्वती का अधर चुम्बन करना चाहते थे तब पार्वती ओष्ठ दान नही करती थी जब शिव गाढालिङ्गन करना चाहते थे तब पार्वती अपने हाथो को उठाती भी नही थी फिर भी शिव ने वधू के साथ रति क्रीडा की।

---

१ यौवनान्धा स्मरान्मत्ता प्रगल्भा दापिताङगते। दशरूपक ३/१८
२ कु स ८/१५
३ कु स ८/३०
४ महाकवि कालिदास– प देवीदत्त शर्मा

उपर्युक्त श्लोक मे शिव की चेष्टाए अनुभाव रूप है तथा पार्वती की चेष्टाये उद्दीपन विभाव है। व्रीडा आदि व्यभिचारी भाव है। इस श्लोक मे श्रृड्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। कुमारसम्भव का प्रेम आदर्श का प्रतिरूप है। यह प्रेम किसी विशेष परिस्थिति का प्रतिफलन नही है वरन् जन्म जन्मान्तर के प्रेम का शाश्वत रूप है। कालिदास ने पूर्वराग की प्राय सभी अवस्थाओ को अतिशय मनोरम रूप दिया है। शिव के प्रति पार्वती की स्पृहा रूप अभिलाषा[१] अवस्थाओ को अतिशय मनोरम रूप दिया है। शिव के प्रति पार्वती की स्पृहा रूप अभिलाषा चिन्ता[२] का आश्रय लेकर प्रिय की स्मृति[३] मे, प्रिय के गुण कथन[४] से सन्तुष्ट न होकर उद्वेगावस्था[५] को प्राप्त हो जाती है पार्वती का अनुराग जब सप्रलाप[६] रूप को धारण कर उन्मादावस्था[७] को व्यक्त करता है तब यही प्रतीत होता है कि पार्वती की व्याधि[८] कही उसे जडतावस्था[९] को न प्राप्त करा दे।

कालिदास की कविता के प्रत्येक वाक्य एक मनमोहक चित्र उपस्थित करते है। पूर्व राग की सम्पूर्ण अवस्थाओ का शब्द–चित्र रचना शाश्वत् नवीन तथा नूतन सौन्दर्यबोधकता की चेतना प्रतीत होती है।

---

१ असह्यहुकारनिवर्तित पुरा पुरारिमप्राप्तमुख शिलीमुख।
इमा हृदि व्यायतपात मक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वन। कु स ५/५४
२ इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपता समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन।। कु स ५/२
३ अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वय तथाविध प्रेम पतिश्च तादृश।। कु स ५/२
४ यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्य न विधि विचिन्वती। कु स ५/५६
५ अकिचन सन्प्रभव स सपदा त्रिलोकनाथ पितृसद्यगोचर।
स भीमरूप शिव इत्युदीर्यते, न सन्ति याथार्थ्यविद पिनाकिन। कु स ५/७७
६ तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु वाला लभते स्म निर्वृति तुषार सघात शिलातलेष्वपि।। कु स ५/५५
७ उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन सवाष्पकण्ठस्खलितै पदैरियम्।
अनेकश किनरराजकन्यका वनान्तसगीतसखीररोदयत्। कु स ५/५६
८ त्रिभागशेषासु निशासु च क्षण निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ ! व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना।। कु स ५/५७
९ यदा बुधै सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिम कथ जनम्।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखर।। कु स ५/५८

कवि ने प्रकरण के अनुसार सुन्दर वाक्यो का चयन किया है इनके वाक्यो मे रसो का बहुत सुन्दर परिपाक देखने को मिलता है। करूण रस की भी अभिव्यक्ति श्रृगार से किसी भी अर्थ मे न्यून नही है। कामदेव के विनाश पर शोकविधुरा रति मरने के लिये उद्यत है। उसका कथन है– चन्द्रमा के साथ चॉदनी और मेघ के साथ बिजली चली जाती है। पत्नी पति के साथ जाती है। यह अचेतनो मे भी दृष्टिगोचर होता है। शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते। प्रमदा पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्न हि विचतनैरपि।। कु स ४/३३

इस प्रकार हम कह सकते है कि कुमारसम्भव मे दाम्पत्य प्रेम की विशद व्यञ्जना हुई है किन्तु श्रृङ्गार साधना से शुद्ध एव विलासमय चित्रो की भी कमी नही है। विलास के ही ये चित्र, जो कही कही पूज्यत्व भावना मिश्रित है विश्वात्मा शिव के प्रति भक्ति भावना के लिये विधात सिद्ध होते है। फिर भी कुमारसम्भव मे श्रृङ्गार का साडगोपाङ्ग चित्रण (रूढियो)परम्परा निर्वाह के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। श्रृङ्गार का कोई मनोरम पक्ष कवि की बहश्रुत लेखनी से छूटने नही पाया है। इस काव्य मे कालिदास ने श्रृङ्गार–चित्रण मे जो स्वाभाविक सफलता पायी है वह उनकी अन्य कृति न बन पायी। इसका एक यह भी कारण है कि कुमारसम्भव उनके आराध्य का चरित्र चित्रण था, अत उनका मन ही नहीं आत्मा भी रम उठी थी और उनकी प्रतिभा अतिशय मुखरित हो उठी थी। जिसके प्रत्येक वर्णन अपनी चरम सीमा पर पहुॅच गया। न ऐसी नायिका का सौन्दर्य ही उन्हे मिला और न ही ऐसा नायक मिला जो मदन का शासिता होकर भी मदन शासित हो। इसी झोक मे वे सयोग श्रृङ्गार वर्णन करने मे समय मे भी कही–कही अतिशय कर गये और मर्यादा की सीमा भी पार कर गये किन्तु इसमे कवि की भावुकता–अतिशय की कारण है और कुछ नही। महाकाव्य प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसो का भी अङ्गरूप मे यदा–कदा निष्पन्न किये जाते है।

अड्गानिसर्वेऽपि रसा । सा द ७/३१७

कुमारसम्भव मे अङगीरस श्रृड्गार के अतिरिक्त करूण रौद्र वीर भयानक इत्यादि रसो का निरूपण हुआ है।

भयानक रस

किसी भयानक व्यक्ति या वस्तु को देखकर जो भय नामक स्थायीभाव का उदय होता है उसी का परिपोष भयानक रस कहलाता है।

श्रृड्गार प्रधान प्रेमाख्यानो मे भयानक रस प्राय नही मिलता। कुमारसम्भव मे भी ऐसा प्रसड्ग केवल एक बार आया है किन्तु कवि की प्रतिभा से यह सस्कृत साहित्य का स्मरणीय प्रसड्ग हो गया है। प्रसड्ग है शड्कर के तपोवन मे मदन के प्रवेश का। यहॉ समाधिस्थ शिव को जो दुर्घषु स्वरूप है वह बडा ही रोमाञ्चकारी है।[१] उन्होने वीरासन लगा रखा है शरीर स्थिर है तथा दोनो कन्धे झुके हुए है।[२] जब कलाप भुजड्गो से बधे है, दाहिने कान मे रूद्राक्ष माला लटक रही है तथा कमर मे मृगछाला कसी हुई है।[३] वस्तुत यह भगवान शड्कर का समाधिस्थ शान्त, सात्विक तथा सौम्यतम रूप है किन्तु जैसी 'रूढि है कि चोर पुलिस को देखकर डर जाता है वैसे ही शिव का शान्त रूप कामचोर के मन मे भय उत्पन्न कर देता है।

यहॉ शड्कर का दुर्धर्ष रूप आलम्बन है। हाथ ढीले हो जाना शक्ति नष्ट होना आदि अनुभाव है। सम्भ्रम त्रास आदि व्यभिचारी भाव है। इस प्रकार भयानक रस का परिपोष होता है।

---

१ कुस ३/५१
२ कुस ३/५२
३ कुस ३/५३

करूण रस

करूण रस का स्थायीभाव शोक है। आचार्य धनजय का कथन है कि शोक या तो इष्टनाश के परिणामस्वरूप होता है या अनिष्ट की प्राप्ति से होता है।

यद्यपि करूण रस श्रृङ्गार का परम शत्रु है और उसके साथ यह स्थिति सम्भव नही हो सकती है किन्तु आश्रय भेद अङ्गाङ्गि रूप मे रखने पर उसका विरोध नही रह जाता ऐसा आचार्यो का मत है।

शिव की वहनिज्वाला मे मदन के भस्मावशेष हो जाने पर उसकी प्रिय पत्नी रति का विलाप करूण रस का मार्मिक दृश्य उपस्थित करता है। पति के भस्मीभूत हो जाने के पश्चात मूर्च्छित रति अपने नव वैधव्य की असह्य वेदना सी आख फाड–फाड कर देखने लगती है। किन्तु अर्द्ध मूर्च्छावस्था मे– हे प्राणनाथ तुम जीवित हो– यह कहती हुई वह ज्योहि खडी होती है– त्यो ही स्तम्भित रह जाती है– वहॉ तो पुरूष आकृतिकार हरकोपानल से भस्म एक राख का ढेर ही पृथ्वी पर पडा है। उसे देखकर अत्यन्त कातर हो उठती है और मिट्टी मे लोट पोट कर बाल बिखेर कर विलख–विलखकर रोने लगती है और करूण स्वर मे कहती है– हे प्रिय। तुम्हारे अतुलनीय सुन्दर शरीर को इस दशा मे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यो न हो गया सत्य है कि स्त्रियो का हृदय बडा कठोर होता है। इस प्रकार रति कभी अपने भाग्य को और कभी अपने कृत्यो का स्मरण करके बडा करूणा विलाप करती है। क्योकि आम्र मजरियो गुनगुनाते भौरे मधुर कूक करती हुई कोयल को देखकर वह और भी विह्वल हो उठती है। इस प्रकार रति विलख रही है। तब उसी समय कामदेव का मित्र वसन्त वहॉ उपस्थित होता है। वसन्त को देखकर रति और फूट–फूट कर रोने लगती है क्योकि दु ख मे स्वजनो को देखकर दु खी प्राणी का दु ख

द्विगुणित हो जाता है। यह रूढि है क्योकि यह प्राचीन काल मे तथा आधुनिक समय मे देखा जाता है। इस प्रकार कुमारसम्भव का चतुर्थ सर्ग रति विलाप के माध्यम से करूण रस का मार्मिक चित्रण उपस्थित करता हूॅ। यहॉ काम से अत्यधिक वियोग ही रति के शोक का आलम्बन है। भूमि पतन क्रन्दन धूल मे लौटना, पूर्वघटित घटनाओ का स्मरण उलाहना देना इत्यादि सर्वत्र अनुभावो का ही मुख्यतया कथन हुआ है। दु ख चिन्ता मोह विषादइत्यादि सर्वत्र अनुभावो का ही मुख्यतया कथन हुआ है। दु ख चिन्ता मोह विषाद इत्यादि व्यभिचारी भावो की अभिव्यक्ति हुई है।

कालिदास के इस कारण प्रसङ्ग पर सस्कृत साहित्य के आचार्यो ने यदा कदा आडे, तिरछे कुछ खरी खोटी सुनाई है।

इस प्रकार सम्यक रूप से विचार किया जाय तो इस योजना की दृष्टि से यह निर्दोष प्रसङ्ग का पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य ज्ञात हो जाता है कि पहले केवल पति के भस्मीभूत शरीर को देखकर अनाथ रति का शोक उमडता है अत उसके सारे विलाप उन दोनो के व्यक्ति जीवन से सम्बद्ध है किन्तु जैसा कि महाकवि की प्रतिभा ने विवरण दिया है कि दु ख मे स्वजनो को देखकर शोक सतप्त प्राणी का दु ख अनेक द्वारा से फूट पडता है अत मित्र वसन्त के आने पर रति का दु ख पुन उमड पडता है ऐसी रूढिया प्राचीन काल से चली आ रही है।

शान्तरस

वास्तविक ज्ञान के उदय होने के परिणामस्वरूप प्राणी को जगत से निर्वेद या वैराग्य होता है।

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग के अन्त मे कवि ने शिव का जो आशिक परिचय दिया है उसमे शान्तरस की सुष्ठु अभिव्यक्त हुई है। पिता

द्वारा अपमानित होने पर सती ने उनकी यज्ञाग्नि मे जबसे प्राणोत्सर्ग कर दिया था तभी से विमुक्तसङ्ग भगवान शिव ने दूसरा विवाह नही किया।[1] इतना ही नही जितेन्द्रिय तथा गज चर्म ओढने वाले शिव हिमालय की एक चोटी पर जाकर तपस्या करने लगते है जहॉ गगा जी अपनी जल प्रवाह से देवदारू को निरन्तर सीचती थी तथा गन्धर्व गण दिन रात गाया करते थे।[2] उनके पास ही सर पर नमेरू की कोमल पुष्पमाला बाधे शरीर पर भोजपत्र धारण किए प्रथमगण चट्टानो पर बैठे पहरा दिया करते थे।[3] उनके समीप उनका गर्वीला नान्दी वृष भी रहता था। इस प्रकार तपस्याओ के स्वय फलदाता भगवान शिव अपनी दूसरी मूर्ति अग्नि को समाधि से जगाकर पता नही किस फलेच्छा से घोर तपस्या करते है।[4] यहॉ शिव आश्रय है, सती के प्राणत्याग के कारण उत्पन्न दु ख ही उनके तप का उद्दीपन है। सब प्रकार के भोग विलास का त्याग कर देना दूसरा विवाह न करना तथा तप करना इत्यादि अनुभाव है। धृति व्यभिचारीभाव है।

वीररस

वीररस का स्थायीभाव उत्साह होता है। यह उत्साह शक्ति सम्भूत होता है। आलम्बन विभाव कोई समक्ष स्थित शत्रु साहसपूर्ण कार्य तथा यशादि होता है। शत्रु की ललकार युद्धभेरी इत्यादि उद्दीपन विभाव है। आखो का लाल हो जाना शस्त्र प्रहार होठ चलाना सैन्य सचालन चढाई करना तथा आवेश रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव है। मति, धृति गर्व उग्रता इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

---

१ यदैव पूर्वे जनने शरीर सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।
तदाप्रभृत्येव विमुक्तसङ्ग पति पशूनामपरिग्रहोऽभूत।। कु स १/५३

२ स कृत्तिवासास्तप्से यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारू।
प्रस्थ हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्कषात्किन्नरमध्युवास।। कु स १/५४

३ गणा नमेरूप्रसवावतसा भूर्जत्वच स्पर्शवतीर्दधाना।
मन शिलाविच्छुरिता निवेदु शैलेयनद्वेषु शिलातलेषु।। कु स १/५५

४ तत्राग्निमाधाय समित्समिद्ध स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्ति।
स्वय विधाता तपस फलाना केनापि कामेन तपश्चचार।। कु स ११/५७

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग मे इन्द्र–कामदेव सवाद मे कामदेव की गर्वोक्तियो का वर्णन हुआ है उन गर्वोक्तियो के माध्यम से उत्साह स्थायी भाव की किचित झॉकी दिखाई पडती है। इन्द्र की आज्ञा से काम उनके दरबार मे उपस्थित होता है तथा आते ही अपनी शक्ति का परिचय सा देता हुआ कहता है– हे स्वामी ! आप आज्ञा दीजिये ! तीनो लोक मे ऐसा कौन सा कार्य है जो आप मुझसे करवाना चाहते है।[१] कहिए तो ऐसा कौन पुरूष उत्पन्न हो गया है जिसने बहुत बडी बडी तपस्याये करके आपके मन मे ईष्या जगा दी है। आप उसका नाम मात्र बता दीजिये तो मै जाकर उसे अपने धनुष वाण से क्षण भर मे जीते लेता हूँ।[२]

मेघदूत मे रस

महाकवि कालिदास का विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत विप्रलम्भ श्रृङ्गार की अद्वितीय सर्जना है। काव्य का नायक प्रवासित यक्ष है जो राज्य कार्य मे प्रमाद दिखाने के कारण अलकापति कुवेर द्वारा प्रिया से दूर जाने के लिये अभिसप्त होता है। अब प्रेमी यक्ष अपनी नवोढा पत्नी से वियुक्त ही नही होता, अपितु उसे सर्वाधिक कठोर दण्ड यह मिलता है कि शाप की अवधि मे अपनी पत्नी से कदापि नहीं मिल सकता। अत वह घर से प्रवासी हो जाता है और दूर दक्षिण की विन्ध्यश्रेणियो के मध्य कही रामगिरि आश्रम पर जा बसता है।

काव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ श्रृङ्गार है। **काव्यानुशासन** के अनुसार विप्रलम्भ श्रृङ्गार की निरूक्ति इस प्रकार है– **सभोगसुखास्वादलोभेन विशेषेण प्रलभ्यते आत्माऽत्रेति विप्रलम्भ** तात्पर्य यह है कि नायक नायिका के परस्परानुराग मे मिलन नैराश्य ही विप्रलम्भ है। इसीलिये नाट्यदर्पणकार कहते है 'परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो पारतन्त्रया वा विप्रलम्भ ।

१ आज्ञापत्र ज्ञातिविशेष पुसालोकेषु यत्ते करणीयमस्ति। ३/३

२ केनाम्यसूया पदकाडक्षिणा ते नितान्तदीर्घजनिता तपोभि ।
यावद्मवत्याहितसायकस्य मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवती/ ३/४

आचार्य विश्वनाथ विप्रलम्भ के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते है– इसमे नायक नायिका का परस्परानुराग हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नही होने पाता ।[1] कालिदास की कला ने विशेष रस परिपाक ने इस कृति को विश्व की अन्यतम गीतिकाव्यता प्रदान की है। महाशय **किन्केड** का कथन है कि मेघदूत किसी भी भाषा के प्रेम काव्य की अद्‌भुत कृति है। इसने अनेक शताव्दियो से अपनी भावना से रस के चमत्कार से एव शैली से मानव मस्तिष्क को चमत्कृत कर रखा है।[2] वियोग मे रति का भाव लगा रहता है और यही रतिभाव विप्रलम्भ श्रृङ्गार करूण से भिन्न बनाता है। पुनर्मिलन की आशा वियोग मे सयोग का सुख स्वप्न उत्पन्न करती है। जो आनन्द प्रियजन के मिलन से होता है वह वियोग मे प्रियजन के चिन्तन तथा गुण कथनादि के माध्यम से होता है। इसमे प्रतिक्षण नायक का स्मरण होता रहता है। इस स्मरण जन्य सयोग मे जो सुख है वह उसे प्रत्यय सयोग से भी अधिक श्रेष्ठता देती है। इसमे गुरूजनो की लज्जा का भय न वियोग को उत्साह शून्य करने वाली शङ्का। इसीलिए लोग वियोग को ही सुखद माना करते है।[3] यदि वियोग मे यह सुख न होता तो दु ख सहकर भी प्राणी वियोग मे मग्न क्यो रहते है।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार के चार भेद है– पूर्वराग, मान प्रवास करूण विप्रलम्भ। पूर्वराग के अनेक कारण निवद्ध किये गये है जिसमे श्रवण प्रत्यक्षदर्शन, स्वप्नदर्शन दैवपारतन्त्र, मानवपारतन्त्र इत्यादि है। इसमे दस प्रकार की कामदशाये सम्भव है– अभिलाष चिन्ता, स्मृति, गुणकथन उद्वेग सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति (मरण)। प्रवास का अभिप्राय है

---

१ यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसो– सा द ३/१८७)

2 Is the most wonderful love poem in any laungage It has fascinated men's mind for outless centuries by its originality of conceltion and its charm of sentiment and style"

३ विरहा विरहा मत कहो विरहा है सुल्तान।
जा घट विरह न सपरे सो घट जान मसान।। कबीर

कि कार्यवश, शापवश अथवा सम्भ्रमवश नायक का देशदेशान्त मे गमन। प्रवास विप्रलम्भम मे नायिका की दो प्रकार की चेष्टाये हुआ करती है— अङगमालिन्य वस्त्रमालिन्य एकवेणीधारण निश्वाश— उच्छवाश रोदन भूमि पतन आदि।[1] और दस प्रकार की कामदशाये दृष्टिगोचर होती है। अङगो का सौष्ठव सन्ताप पाण्डुता दुर्बलता अरूचि अधीरता अनालम्बनता तन्मयता उन्माद तथा मूर्च्छा।[2]

मेघदूत मे शापज प्रवास का ही विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रिया के चतुर कटाक्षो मे ही सदैव निमग्न रहने वाले प्रवासी यक्ष के लिये मिलन की अत्युग्रता रहते हुए भी प्रिया समागम दुर्लभ हो जाता है और उसकी विरहविह्वलता वासना परिपक्व बुद्धि को विफल बना डालती है। वह वलाविप्रयुक्त यक्ष किसी प्रकार शाप के कुछ ही माह व्यतीत कर पाया था कि आषाढ के प्रथम दिन ही पर्वत से मेघ को कष्ठश्लेष करते देखकर उसकी विरहवेदना पुन उद्दीप्त हो उठती है और वह प्रिया के पास अपना शुभ सन्देश भेजने के लिये व्याकुल हो उठता है। विरह की असहायता ने यक्ष को इतना दीन बना दिया है कि वह अपनी सुध—बुध खो बैठता है। और विचार शक्ति इतना निर्वल हो गयी है कि चेतन—अचेतन का भी निर्णय नही कर सकता। अन्य कोई उपाय न देखकर, विवश उत्तर की ओर गगनोन्मुख जलद से ही प्रिया के पास प्रणय सन्देश ले जाने की आशा भरी प्रार्थना करने लगता है।[3] पूर्वमेघ मै अलकापुरी जाने तक के मार्ग का विस्तृत परिचय देने के पश्चात् अपनी प्रिया का विस्तृत परिचय देने के पश्चात अपनी प्रिया का विस्तृत परिचय देता हुआ कहता है, हे मेघ ! दुबली

---

१ द रू ४/२०४

२ अडगेष्सौष्ठव ताप पाण्डुता कृशता रूचि ।। सा द० ३/२०५
अधृति स्यादनालम्बस्तन्यत्रोन्मादमूर्च्छना ।
मृतिश्येति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह।। सा द ३/२०६

३ आषाढस्य । पू मे २

पतली शिखर के समान दॉतो वाली पके हुए विम्वाफल के समान ओष्ठो वाली क्षीण कटिकावाही चकित हरिणी के नयनो के समान नेत्रो वाली गहरी नाभि वाली नितम्ब भार से मन्द गति वाली स्तनो से कुछ झुकी हुई स्त्रियो मे जो ब्रह्मा की (एकमात्र) प्रथम रचना (सर्वसुन्दरी) वहॉ होगी उसे ही मेरी प्रिया समझना।[1] इस प्रकार का वर्णन करना कालिदास का अभ्यास सा बन गया है। विश्व मे ब्रह्मा की जो सर्वश्रेष्ठ रचना और अनिन्द्य सुन्दरी होती है उसे ही कवि अपने काव्य का आलम्बन (नायिका) बनाता है।

मेघदूत वस्तुत यक्ष की प्रेम कहानी है जो विरही है अत कवि ने बडी कुशलता के साथ विप्रलम्भ रति का चित्रण किया है। रामगिरि पर बैठा यक्ष स्वय रति विप्रलम्भ, क्षीणदेह विरह की प्रतिमूर्ति बन बैठा है।[2] वियोग मे व्याकुल अपनी पत्नी की जिस वियोगावस्था की वह कल्पना करता है और जिसका उसने स्वय भूयोभूय अनुभव करता है तथा जिसके स्पष्टीकरण के लिये वह मेघ से भी कहता है कि तुम केवल मेरी बात ही विश्वास न करो वरन् तुम स्वय जाकर देख लेना— इस विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ किया गया है।

विप्रलम्भ के भुक्तभोगी महाकवि ने विरह विधुरा यक्षिणी का शिशिर मथिता पद्मिनी के रूप मे जो हृदय द्रावक चित्र खींचा है— उसमे प्रवास का परिपोषक सचमुच बहत प्रगाढ एव मर्मस्पृक हो उठा है। यक्षिणी का पाले से भारी कमलिनी के समान कहने से उसकी क्षीणता की स्पष्ट व्यञ्जना हो रही है साथ ही शोक विषाद चिन्ता इत्यादि व्यभिचारियो की भी सुन्दर व्यञ्जना हो रही है। मल्लिनाथ का कथन है कि प्रवासावस्था मे विरह वेदना इतनी असीम हो जाती है कि रमणियो की दस कामदशाये

---

१ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्नाभि ।
श्रोणीभारादल सगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या वा

२ तस्मि कतिचिदबलाविप्रयुक्ता स कामी नीत्वा। पू मे २

लक्षित होती है— नयनसङग मनसङग सकल्प जागर कुशता अरति लज्जा त्याग उन्माद मूर्च्छा अन्त या मृत्यु। प्रथम तथा अन्तिमावस्था के अतिरिक्त सभी दशाओ का चित्रण कालिदास अभूतपूर्व रूप से प्रस्तुत किया है।

इसके पश्चात् यक्ष ने अपनी प्रिया की बिरह व्याकुलता का जो विस्तृत परिचय देता है वह सब अनुभाव की कोटि मे ही आता है। यक्ष मेघ से कहता है— हे मेघ ! जब तुम उसके पास पहुँचोगे तब उस मृगनयनी की वॉई ऑख फडक उठेगी जिस पर बाल ढँके हुए होगे जो अजन न लगाने से स्नेह से शून्य हो गयी होगी तथा बहुत दिनो से मदिरा पान न करने के कारण भौहो के विलास को भूल गयी होगी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मेघदूत मै विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ है, अत नायिका का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सन्देह कथन के माध्यम से यक्ष के विरहावस्था का वर्णन प्रारम्भ होता है। यहॉ से अब आश्रय यक्ष है और यक्षिणी आलम्बन और यक्ष की समस्त चेष्टाये अनुभाव रूप है। यक्ष कहता है कि हे मेघ! मेरी प्रिया से कहना कि तुम्हारे प्रिय का मार्ग वैरी ब्रह्मा रोके बैठा है अत वह तुमसे मिलने मे असमर्थ है। किन्तु वह अपने क्षीण शरीर अत्यन्त सन्ताप, अश्रुयुक्त उत्कण्ठित एव दीर्घ उच्छवास लेने वाले अङगो से यह समझ लेता है कि तुम भी उसी प्रकार क्षीण सन्तप्त अश्रुयुक्त निरन्तर उत्कण्ठित, ऊष्णोच्छवासे ले रही होगी।[१] यहॉ नायक नायिका की समदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है, उत्कण्ठित होना उच्छवास लेना अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव है तथा दैन्य विषाद व्यभिचारी भाव है।

---

१ अङगेनाङ्ग प्रतनु तनुना गाठतप्तेन तप्त ।उमे ४४

विरहकाल मे विरहिणियो के चित्त बहलाने के कुछ उपाय होते है जिन्हे मनोविनोद के साधन कहे जाते है जैसे सादृश्य दर्शन चित्रदर्शन स्वप्नदर्शन, पियाङ्गस्पृष्टदर्शन इत्यादि इन सभी मनोविनोदो को कवि बडी ही निपुणता से प्रस्तुत किया है। वास्तव मे वियोगी प्राणी के लिये आशा ही सबसे बडा अवलम्ब होता है।

जीवित करने के लिए वियोग के पश्चात मिलन की आशा ही उन्हे कठिन से कठिन दु खो को सहने की प्रेरणा देती रहती है। यही महाकवि ने रूढियो का प्रयोग मेघदूत मे किया है। यदि वियोगी आशावादी न होगा तो सम्भव है उसकी मृत्यु हो जाए। इसीलिये तो यक्ष प्रिया को आशा बधाता हुआ कहता है— हे शुभे ! विष्णु भगवान के शेषशय्या से उठने के पश्चात मेरे शाप का अन्त हो जायेगा। अत विरह के शेष चार महीने किसी प्रकार आख निमीलित कर व्यतीत कर दो। इसके बाद तो हम शरद ऋतु की पूर्णरूपेण विकसित चॉदनी वाली रात्रियो मे विरह से द्विगुणित हुई अनेक अभिलाषाओ को पूर्ण करेगे।[१]

वस्तुत विरह ही सच्चे प्रेम की कसौटी है वियोग मे प्रेम और अधिक तीब्र और विश्वसनीय बनता है। उपर्युक्त श्लोक के द्वारा कवि ने प्रेम की सुन्दर व्यञ्जना की है। प्रेम अवस्थाभेद से स्नेह से बडा माना गया है। रसाकर मे स्नेह की उस चरमकोटि को प्रेम कहा गया है, जिसमे क्षणभर का भी वियोग असह्य हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम वियोग के कारण दु खी अपनी प्रिया को भलीप्रकार धैर्यालम्बन कराकर[२] कार्य करने हेतु निश्चय कर लिया। वास्तव मे विरह मे इतना उन्मत्त हो गया है कि मेघ स्वीकारोक्ति समझ लेता है।[३] और उसके सुखमय भविष्य की कल्पना करने लगता है।[४]

१ उ मे ५३
२ आश्वास्येव प्रथम विरहा । उ मे
३ कच्चित्सौम्य व्यवसितमिद बन्धुकृत्य उ मे
४ मा भूदैव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयागै । उ मे

इस प्रकार मेघदूत विप्रलब्ध यक्ष एव यक्षिणी की विरह व्याकुलता का अभिराम चित्र प्रस्तुत करता है। काव्य मे एक दूसरे के वियोग से दु खी परस्पर आलम्बन और आश्रय बने नायक नायिका के अनुभावो का ही अधिकाशत वर्णन हुआ है। आषाढ के प्रथम दिन मेघोत्थान का दर्शन करना उद्दीपन विभाव है। नायिका द्वारा निश्वाशोच्छवास लेना शय्या पर करवटे बदलना गीतगायन सारिका से सम्भाषण करना आभूषणो को त्याग कर देना, भूमि पतनादि अनुभाव है तथा पश्चात मे आश्रय बने हुए यक्ष द्वारा प्रिया आलिगन करने के लिये हाथ उठाना चित्र बनाकर चरण मे गिरना प्रार्थना करना अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव है। विषाद दैन्य औत्सुक्य, मोह, चिन्ता वितर्क इत्यादि व्यभिचारी भावो की यथात्थान सुन्दर व्यञ्जना हुई है। महाकवि ने प्रसिद्ध गीतिकाव्य मेघदूत मे रूढियो का प्रयोग किया है जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

अलङ्कार

कवि के वाक्य अलङ्कृत अनलङ्कृत दोनो प्रकार के होते है। जब अलङ्कारता रहती है तब सुन्दर वस्तु व्यञ्जित होकर सह्रदय को आनन्द प्रदान करती है। कवि का वाक्यार्थ जब गौण हो जाता है तब सौन्दर्या भी आनन्द का हेतु बनता है। कवि अलङ्कृत वाक्य के माध्यम से इतने सुन्दर वाक्यार्थ को है जिसे देखकर पाठक आनन्द विभोर हो उठता है। अलङकार का काव्य मे महत्वपूर्ण स्थान है।

"अलङ्क्रियतेऽनेनेति अलङ्कार ।"

अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु की शोभा बढाई जाये वह अलङ्कार है। अलङकार शब्दार्थ रूप कविता—कामिनी के शरीर के प्रति सौन्दर्य को बढाने वाले है। वस्तुत उक्ति वैचित्र्य ही अलङ्कार है, जो काव्य शरीर की शोभा को बढाता है। उक्ति वैचित्र्य से काव्य मे चमत्कार आ जाता है जो उसके रसास्वादन मे सहायक होता है।

चन्द्रालोककार जयदेव का तो स्पष्ट मत है कि जो आचार्य अलङकार रहित शब्दार्थ को काव्य मानता है वह यह क्यो नही मानता कि अग्नि उष्णता रहित होती है ।

महाकवि कालिदास ने यद्यपि शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनो का प्रयोग किया है किन्तु अधिकता अर्थालङ्कारो की ही है। अलङकारो के प्रयोग मे महाकवि ने बडी सूझ—बूझ का परिचय दिया है। शब्दालङ्कारो का मोह कभी—कभी कवियो को इतना जकड लेता है कि मूल भाव तत्व एकदम गौण हो जाता है। कालिदास ने उनका प्रयोग बहुत स्वाभाविक ढग से किया है। इस सम्बन्ध मे **स्व श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय** का कथन कितना सटीक है कि अलङ्कारो के प्रयोग मे कवि ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनकी कविता अत्यधिक तथा आवश्यक अलङ्कारो के भार से आक्रान्त कामिनी की भाति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयो के चित्र को आकृष्ट करने वाली है।

काव्य मे अलङ्कार प्रयोग के विषय मे ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है।

रसाक्षिप्तया यस्य बन्ध शब्दक्रियो भवेत्।
अपृथग्—यत्ननिर्वत्य सोऽलङ्कारो ध्वनौ मत ।।

रस के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि मे किसी प्रकार के पृथक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, वही सच्चा अलङ्कार है— ध्वनिवादियो का यही मत है। प्रथम रस की अनुभूति उसकी अलङ्कृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति और शब्दाभिव्यक्ति— दोनो एक ही प्रयास के परिणत फल है। कोई कलाकार जिस चित्त प्रयास द्वारा अलङ्कारादि के उपक्रम से रस प्रस्फुटन करता है उसके लिये उसे किसी प्रकार के पृथक प्रयास करने की जरूरत ही नहीं होती।

अभिनवगुप्त ने बडे मार्मिक शब्दो मे कहा है कि ररानुभूति ह्वदय वाले कवि के द्वारा अभिव्यक्त अलङ्कार भाषा का समस्त सौन्दर्य कटककुण्डलादिवत् कही बाहर से जोडा हुआ नही रहता प्रत्युत वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक धर्म होता है। अभिनवगुप्त ने यह भी स्पष्ट कहा है कि **"न तेषा वहिरङ्गत्व रसाभिव्यक्तौ"**। के विषय मे महाकवि कालिदास अद्वयवादी थे।

वाग्र्थाविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। रघु १/१

महाकवि ने अलङ्कार के प्रयोग मे रूढियो (परम्परा) का निर्वाह किया है। जिसका विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

अलङ्कार विधान मे भी कालिदास ने बडी ही सावधानी दिखाई है। प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा–सम्पन्न कवि की अलडकृति योजना उनकी वशवर्तिनी होती है। उनकी रचनाओ की योजना अपने आप स्वभावतया होती जाती है। कालिदास की रचनाओ मे अलङ्कारो का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है। अलङ्कारो की भरमार इनकी कविता मे नही मिलेगी।

अनुप्रास

अनुप्रास के लिये कही से अलग प्रयास नही करना पडा अपितु कवि की भावाभिव्यक्ति मे इनका समावेश स्वत हो गया है।

जीवन्पुन शश्वदुपप्लवेभ्य प्रजा प्रजानाथ पितेव पासि। रघु २/४८

इस उदाहरण मे पकार की अनुवृत्ति पाठको के चित्त को आकर्षित करती है।

यमक

यमक के प्रयोग काव्य के दुरूह होने के कारण ध्वनिकार ने विप्रलम्भ श्रृङ्गार के वर्णन मे यमक के प्रयोग को मना किया है।[1] इसीलिए कालिदास ने यमक का प्रयोग बहुत कम किया है। यमक का प्रयोग रघुवश के नवम् सर्ग मे दशरथ की राज्य व्यवस्था वसन्त ग्रीष्म ऋतु– वर्णन तथा आखेट वर्णन मे देखे जा सकते है। कालिदास के यमक के प्रयोग के सम्बन्ध मे डा भोलाशङ्कर व्यास का कथन द्रष्टव्य है कालिदास ने यमक के प्रति रूचि दिखाई है पर ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने यह इसलिये प्रयोग किया कि वे चित्र काव्यो के शौकीनो के सामने यह सिद्ध कर सके कि वे उस प्रकार के प्रयोग भी कर सकते है किन्तु कालिदास भाव को प्रधानता देते है तथा अलङकारो के मोह मे फॅसकर उसका हनन करना नहीं चाहते।

यमक का यह कितना सुन्दर उदाहरण है। मान छोडो, वीती हुई अवस्था फिर लौट कर नही आती है इस प्रकार कोयल के कामोद्दीपक वचनो को सुनकर नायिका नायक से मिलने को आतुर हो उठती है।

त्यजत मानमल वत विग्रहैर्न पुनरेति गत चतुर वय ।
परभृताभिरितीव निवेदिते रमते स्म बधूजन ।।

श्लेष

यमक के समान कालिदास ने श्लेष के प्रयोग मे विशेष कौशल का परिचय दिया है जिससे वह केवल कोरी बुद्धि का व्यायाम न होकर विविक्षितार्थ को सुन्दर ढग से व्यक्त करने मे सहायक होता है कालिदास के श्लेष आसानी से समझ मे आ जाते है।

१ ध्वन्यात्मभूते श्रृङ्गारे यमकादिनिबन्धनम्।
शक्तावापि प्रमादित्व विप्रलम्भे विशेषत ।। ध्वन्यालोक २/१५)

समासोक्ति

समासोक्ति मे श्लिष्ट विशेषणो के द्वारा अप्रस्तुत के व्यवहार का कथन किया जाता है।

बालेन्दुवक्राष्यविकासभावाद् बभु पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागताना नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्।।

कु०स० ३/२६

वसन्त के समागम–काल मे ही द्वितीया के चन्द्र के तुल्य वक्र अरू अरूणिम अर्द्ध–विकसित वनभूमि मे विकीर्ण पलाश पुष्प ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वसन्त ने वनस्थलियो के साथ रमण करके उनके (शरीर के) ऊपर नख–क्षत के चिह्न बना दिए हो।

इस श्लोक मे उत्प्रेक्षा वाच्य है और समासोक्ति व्यङ्ग्य है। वसन्त और वनस्थलियो पर नायक–नायिका के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। इस अलङ्कारयुक्त वाक्य ने ही प्रस्तुत अर्थ वसन्त और वनस्थलियो को एक रसमय चित्र प्रदान किया है। समासोक्ति अलङ्कार ने अचेतन वनस्थलियो को चेतना ही नहीं प्रदान की वरन् उनमे नवयौवना का सम्पूर्ण मादकता भर दी है। और वसन्त को ऐसा रसिक नायक बना दिया है जो अनेक नायिकाओ का उपभोग करने मे पूर्णत समर्थ है।

अङ्गुलीभिरिव केशसचय सन्निगृह्य तिमिर मरीचिभ ।
कुड्मलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीव रजनीमुख शशी।। कु स ८/८३

कुमारसभव के आठवे सर्ग मे शिव शिवा से कह रहे है कि अगुलियो द्वारा केश–समूह की भाति किरणो द्वारा अन्धकार को भलीभाति लाधकर चन्द्र (नायक) बन्द किए हुए नेत्र रूप कमलो वाले (नायिका) के मुख को मानो चुम्बन कर रहा है।

यहॉ भी उत्प्रेक्षा वाच्य और समासोक्ति व्यड्ग्य है। रजनी नायिका है और चन्द्रमा नायक है। प्रस्तुत रजनी और चन्द्र पर समासोक्तिमूलक आरोप ने जडतत्व को चेतन बना दिया है। समासोक्ति अलड्कार के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा चन्द्र नही है वह तो ऐसा कामकला—मर्मज्ञ नायक है जो अपनी सुनहरी उगलियो से नायिका के मुख पर विकीर्ण कुन्तलो को समेटकर बन्द कमल के समान नेत्रो वाली रजनी नायिका का चुम्बन ले रहा हो। समासोक्ति अलड्कार ने ही सम्पूर्ण वाक्यार्थ को रसमय रग से रगीन बना दिया है। रघुवश का एक उदाहरण—

शशुभिरे स्मितचारूतराननना स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखला ।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोद कलोलविहड्गमा ।।

रघु ६/३७

लोगो के घरो के भीतर बनी हुई बावलियो मे जो कमल खिले हुए थे और वहा मधुर शब्द करते हुए जो जलपक्षी तैर रहे थे उनमे वावलिया ऐसी सुन्दर प्रतीत हो रही थी, मानो उनमे मुस्कुराती हुई सुन्दर मुखवाली और शिथिल होने से बजती करधनी वाली स्त्रिया विहार कर रही हो।

बावलियो पर स्त्रियो का आरोप किया है इसलिए वहा समासोक्ति अलड्कार है। गृह की दीर्घिकाए भी सरस राग तथा हाव भाव वाली प्रमदाओ के समान मन को मोह रही है।

इन उदाहरणो से यह स्मिद्ध हो जाता है कि समासोक्ति अलड्कार वह मायाजाल है जो अचेतन को भी चेतनता की मदिरा पिलाकर उसे कामदेव का रूप प्रदान कर देता है।

मेघदूत का एक उदाहरण—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धु
पाण्डुच्छाया तटरूहतरू भ्रशिभिजीर्णपणे ।

सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्व येन त्वजति विधिना स त्वयैवोपपाद्या।। पू मे २६

इस श्लोक मे निर्विन्ध्या नदी पर नायिका और मेघ पर नायक के व्यवहार की व्यञ्जना हो रही है। अत इस समासोक्ति अलङकार के कारण निर्विन्ध्या नदी उस वियोगिनी नायिका की भॉति प्रतीत हो रही है जिसके केश प्रिय–वियोग मे एकवेणी का रूप धारण कर लिए है उसके नेत्रो से निरन्तर अश्रु की धारा बहने से वह पीले वर्णवाली हो गयी है।

मेघ नायक की भाति उपस्थित है जो उसकी सम्पूर्ण व्यथा को दूर कर सकता है।

दीपक

दीपक अलङ्कार मे एक प्रस्तुत वाक्यार्थ रहता है दूसरा अप्रस्तुत।[1] एक ही क्रिया का अनेक कारको तथा अनेक क्रियाओ से एक कारक का सम्बन्ध होने पर दीपक की स्थिति आती है।

अच्छिन्नामलसताना समुद्रोर्म्यनिवारित ।
पुनन्ति लोकान्पुण्यत्वात्कीर्तय सरितश्च ते।। कु स ६/६६

हिमालय की प्रशसा मे अङ्गिरा कह रहे है कि निरन्तर प्रवाह वाली समुद्र की लहरो से टकराने वाली नदिया और आम की कीर्तिया लोको को पवित्र करती है।

इस श्लोक मे उपमा की व्यङ्गता दीपक मूलक है। दीपक के द्वारा एक ही क्रिया के प्रयोग से अमूर्त कीर्तिया भी मूर्तिमती हो गयी है और सम्पूर्ण लोको को पवित्र कर रही है।

---

१ द्रष्टव्य काव्य प्रकाश १०/१०३

आलोके ते निपतति पुरा सा वलिव्याकुला वा
मत्सादृस्य विरहतनु वा भावगम्य लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पजरस्था
अरिचद्भतु स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति।। उमे २२

इस श्लोक मे क्रिया दीपक है। इसके माध्यम से यक्ष–प्रिया की विरहावस्था की उद्दामता की व्यञ्जना करायी गयी है। यक्ष प्रिया निरन्तर अपने प्रिय के ध्यान मे डूबी है। उसे किसी एक क्रिया से ध्यान की प्राप्ति नही होती है। प्रिय–ध्यान विषयक–क्रियाओ मे अपने विरह को अर्न्तभूत करने वाली यक्ष प्रिया साक्षात् विरह की प्रतिमूर्ति हो रही है।

पर्यायोक्त

पर्यायोक्त वह अलडकार है जहा वाच्य वाचक सम्बन्ध के बिना ही व्यञ्जना नामक व्यापार के द्वारा प्रकारान्तर से वाच्यार्थ का बोध होता है।

उदाहरण यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच । तथाहि ते शीलमुदारदर्शने। तपस्विनामप्युपदेशता गतम्।।

कुस ५/३६

ब्रह्मचारी पार्वती से कह रहा है कि हे पार्वती ! जो यह कहा जाता है कि सुन्दर रूप पापाचरण के लिए नही होता है, यह आपके विषय मे एकदम सार्थक है एव आपका आचरण तपस्वियो के लिए उपदेश का विषय बन गया है।

पर्यायोक्ति से यह अर्थ प्रतीत हो रहा है कि आप की तपस्या किसी एक नही अपितु अनेक तपस्वियो से श्रेष्ठ है। कालिदास की मान्यता है कि अखण्ड पुण्य से ही सुन्दर रूप को प्राप्ति होती है ब्रह्मचारी यह कहना चाहता है कि तुम अद्वितीय तपस्विनी हो तभी तुम्हारा इतना सुन्दर

रूप है। इसलिए सुन्दर रूप की प्राप्ति के लिए तपस्वियो को तपस्या विधि मे तुमसे शिक्षा लेनी चाहिए। कहने का आशय है कि तुम तपस्या की साक्षात् मूर्ति हो अन्य तपस्वी गण तुम्हारी भाति कठोर तप नही करते है अत उन्हे तुमसे शिक्षा लेनी चाहिए।

अनेन चेदिच्छसि गृहयमाण पाणि वरेण्येन कुरू प्रवेशे।
प्रसादवातायनसश्रिताना नेत्रोत्सव पुष्पपुराङ्गनानाम्।। रघु ६/२४

सुनन्दा इन्दुमती से कहती है कि यदि तुम इनके साथ विवाह करना चाहती हो तो अवश्य विवाह करो जब इनके साथ राजधानी मे प्रवेश करोगी तो तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर वहा की स्त्रियो के नेत्रो को अपरमित सुख मिलेगा।

यहा पर्यायोक्ति से व्यक्त हो रहा है कि इस राजा के नगर की स्त्रियो से तुम अधिक सुन्दर हो। इसलिए वे तुम्हारा स्वागत करेगी।

इस प्रकार के अलङ्कारो के प्रयोग से जो नवीन अर्थ अभिव्यक्त होता है वह वाच्य अर्थ को और सुन्दरबना देता है।

सङ्कर

अङ्गाङ्गिभाव रूप मे रहने वाले अलङ्कारो को सङकर कहते है। इस प्रकार के अलङ्कारो मे निरपेक्षता का अभाव रहता है।

उदाहरण मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपद्मशोभिना।
तुषार वृष्टिक्षत् पद्मसंपदा सरोजसधान मिवाकरोदपाम्।। कु स ५/२७

जाडे की रातो मे जल के ऊपर पार्वती जी का मुँह भर दिखायी पडता था, जाडे से उनके ओठ कम्पित होते थे और उनकी सासो से कमल की जो सुगन्ध निकल रही थी उसकी गन्ध चारो ओर फैल रही थी।

इस श्लोक मे उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक के अङगाङिगभाव होने से सङकर अलङ्कार है। तुषारवृष्टि के कारण सरोवर के सभी कमल श्रीविहीन हो गये थे, पार्वती ने ही मानो अपने सुगन्धित पद्म मुख से सरोवर को कमल युक्त बनाया। यहॉ उत्प्रेक्षा है। सरोवर के कमल तुषार से नष्ट हो गए थे लेकिन पार्वती पद्म—मुख नही। इसलिए व्यतिरेक अलङ्कार व्यक्त हो रहा है। दोनो अलङ्कारो की सापेक्षता सङ्कर की सृष्टि करती है।

इस अलङ्कार के माध्यम से कवि ने पार्वती को अलौकिक नारी का रूप प्रदान किया है। पार्वती के मुख से कमल का सौरभ दिशाओ को परिव्याप्त कर देता है। इससे पार्वती को पद्मिनीत्व सिद्ध हो रहा है। सरोवर के पद्म तो तुषार से नष्ट हो रहे है किन्तु पार्वती के मुख पद्म पर तुषार का कोई प्रभाव नहीं है। इस व्यतिरेक से पार्वती की कठोर तपस्या व्यञ्जित हो रही है। कठोर तपस्या ही छन्दो को सहन कर सकती है।

दूसरा उदाहरण — प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षित मायताक्ष्या।

तया गृहीत न भृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीत न मृङाङ्गनाभि । कु स १/४६

विशाल नेत्र वाली पार्वती के नेत्रो के चितवन के प्रभाव से कम्पित नीलोत्पल के समान चचल थे। इन चितवनो को देखकर यह ज्ञात नही हो पाता था कि इस कला को उमा ने हरिणियो से सीखा था या हरिणियो ने उनसे सीखी थी।

उत्प्रेक्षा और सन्देह की सापेक्षता ने सङ्कर अलङ्कार की सृष्टि की है। पार्वती ने नेत्र सचालन की क्रिया हरणियो से सीखी थी या हरिणियो ने पार्वती से। इस वाक्यार्थ मे सन्देह अलङ्कार है और यह सन्देह अलङ्कार उत्प्रेक्षामूलक है। इस अलङ्कार से पार्वती की चितवन को लोकोत्तर सौन्दर्य से अभिषिक्त किया गया है।

सेय मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।

दूरे वसन्त शिशिरानिलैर्मा तरङगहस्तैरूप गूहतीव। रघु १३/६३

राम सरयू नदी का वर्णन करते हुए कह रहे है कि मानवीय राजा दशरथ से वियुक्त मेरी मा के तुल्य यह सरयू नदी अपने शीतल पवन से प्रेरित तरड्गरूप हाथ को उठाकर मानो दूरस्थित मेरा आलिड्गन करना चाहती है।

इस श्लोक मे कौशल्या माता और सरयू की तुल्यता ने उपमा की सृष्टि की है। तरड्गेहस्ते मे रूपक और मानो आलिड्गन कर रही है मे उत्प्रेक्षा है। तीनो अलड्कारो की अड्गाडिगभावता ही सड्कर अलड्कार का कारण है।

इस अलड्कार से सरयू मात्र नदी नही प्रतीत होती है। इस नदी मे माता का प्यार होने से वत्सला बन गयी है। अत सरस तरड्ग रूपी हाथो से राम का आलिड्गन वत्सला करना चाहती है। इस अलड्कार ने ही सरयू को वात्सल्मयी चेतनता प्रदान कर उसे समग्र प्यार दुलार एव हृदय समर्पण करने वाली माता बना दिया है तथा राम के हृदय मे इसके प्रति श्रद्धा भाव को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

मेघदूत

ता चावश्य दिवसगणना तत्परामेकपत्नी
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्
आशावन्ध कुसुमसदृशप्रायशो ह्यड्गनाना
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रूणद्धि।। पूमे ६

यक्ष मेघ से कह रहा है कि हे मेघ। मेरे विरह के अवशिष्ट दिनो की गणना मे सलग्न अत जीवित रहने वाली पतिव्रता अपनी भावी को

माता के सदृश सर्वत्र गमन करने की गति से अवश्य देखेगे। क्योकि प्राय अड्गनाओ का, वियोग मे शीघ्र नष्ट होने वाला प्रेममय ह्रदय पुष्प के सदृश होता है। वही ह्रदय से बना रहता है।

यहॉ उपमा और अर्थान्तरन्यास अलङकारो के सापेक्ष होने से सङकर अलड्कार है। सङकर अलङकार का सुन्दर प्रयोग होने के कारण पति के विरह मे व्याकुल प्रमदाओ का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। स्त्रियो का ह्रदय पुष्प के सदृश कोमल होने से विरहावस्था मे शीघ्र नष्ट हो जाता है लेकिन यदि उन्हे यह ज्ञात हो जाय कि उनका पति इतने दिनो मे आएगा, तो वे किचित धैर्य धारण कर लेती है। इस श्लोक मे सड्कर अलड्कार के द्वारा स्त्रियो मे ह्रदय की कोमलता और धैर्य की क्षमता की व्यञ्जना करायी गयी है।

अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास के प्रयोग से किसी विद्वान प्रशसक ने अर्थान्तरन्यास के प्रयोग मे कालिदास की उपमा से श्रेष्ठ माना है। महाकवि की उपमाओ मे जो भावाभिव्यक्ति और रस सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान धारा भी बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास शुभाषित के रूप मे अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये है।

उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मत मम।
अर्थान्तरन्यासे कालिदासो विशिष्यते।।
अन्तररत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसनिपाते निमज्जातीन्दो किरणेष्विवाड्क ।। कु स १/३

रत्नराशि हिमालय की शोभा को हिम नष्ट नहीं कर सका, जैसे चन्द्रमा की किरणो मे उसका कलड्क छिप जाता है, उसी प्रकार गुण समूह मे एक दोष भी छिप जाता है।

दिव यदि प्रार्थमसे वृथा श्रम पितु प्रदेशास्तव देवभूमय ।
अथोपयान्तारमल समाधिना न रत्नन्विष्यति मृग्यते हि तत्।।

कुस ५/४५

यहाँ अर्थान्तरन्यास द्वारा यह व्यक्त हो रहा है कि पार्वती उस धरा की सर्वोत्तम कन्यारत्न है, जिस प्रकार रत्न पारखी के द्वारा ढूँढा जाता है उसी प्रकार कोई सर्वोत्तम व्यक्ति पार्वती को पत्नी के रूप मे वरण के लिये स्वय ढूँढ लेगा। इसलिये उसे पति को प्राप्त करने के लिये तपस्या नही करनी चाहिए।

इस प्रकार के वाक्य कवि के कौशल को अभिव्यक्त करते है।
त प्राप्य सर्वावयवानवद्य व्यान्वर्तयाऽन्योपगमात्कुमारी।
नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य वृक्षान्तर काडक्षति षटपदालि ।।

रघु ६/६६

इन्दुमती सर्व अवयवो से सुन्दर राजा अज को देखकर किसी अन्य राजा की ओर नही बढी क्योकि भ्रमरावली प्रफुल्लित आम्र वृक्ष को प्राप्त कर अन्य वृक्ष की कामना नही करती है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार वाक्यार्थ को शोभायवृद्धि कर रहा है। भौरो का समूह अच्छी प्रकार से प्रफुल्लित आम्र वृक्षो की कामना करता है आम्रमजरियो मे मादकता और फलोत्पादन की क्षमता रहती है। आम्र वृक्ष मे ही इतनी मजरिया होती है कि भौरो का समुदाय उसका रसास्वादन कर सकता है। राजा अज के सम्पूर्ण अवयव मादक और सौन्दर्य पाकर जहाँ इन्दुमती की सम्पूर्ण इन्द्रियो को तृप्ति मिल सकती थी। इस अर्थान्तरन्यास से अज का सर्वातिशायी सौन्दर्य और इन्दुमती का अनुपम स्वयवर दक्षता की अभिव्यक्ति हो रही है।

मेघदूत

जात वशे भुवनविदितेपुष्करावर्तकाना
जानामि त्वा प्रकृतिपुरूष कामरूप मद्योन ।
तेनार्थित्व त्वयि विधिवशाद् दूरवन्धुर्गतोऽह
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकाम ।। पू मे ६

यक्ष मेघ से कह रहा है कि आपका जन्म लोक प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक नामक मेघकुल मे हुआ है। आप इन्द्र के प्रधान पुरूष है। आप स्वेच्छा से अपने रूप को परिवर्तित करने वाले है। मै भार्या विरही आप से याचना कर रहा हूँ। श्रेष्ठ के प्रति की गयी याचना विफल होने पर भी सफल है और अधम से की गयी प्रार्थना सफल भी निष्फल है। मे उदाहरण लोक सिद्ध अर्थ की अभिव्यञ्जना को प्रतिपादित करते है। यह रूढि है।

कालिदास ने अर्थान्तरन्यास अलडकार का प्रयोग करते हुए शाश्वत सत्यो और जीवन की अनुभूतियो का भी बडे मार्मिक ढग से उद्घाटन किया है। प्रिया के प्राणो की रक्षा के लिये आतुर हुआ यक्ष समर्थ इन्द्रियो द्वारा प्रापणीय सन्देश को जाने के लिये घूम ज्योति सलिल के सन्निपात मेघ से ही याचना कर बैठता है। भला कामी मे जड और चेतन का विवेक कहाँ रहता है। इस प्रकार महाकवि ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार के प्रयोग मे रूढियो का प्रयोग किया है।

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनुष। पू मे ५

महाकवि कालिदास के कई अलङ्कार तो ऐसे सुभाषित हो गये है जो लडखडाते और पथभ्रष्ट होते हुए मानव के लिये सत्पथ पर बढते चले जाने के लिये महान सवल सिद्ध हो सकते है। यक्ष मेघ से कहता है कि "उज्जयिनी मे एक रात बिताकर उसे शेष मार्ग पार करना चाहिए क्योकि जो मित्रो का कोई काम करना स्वीकार कर लेते है, वे कभी अपने प्रयास मे शिथिलता नहीं करते।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाध्येदध्वशेष।
मन्दायते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ।। पू मे ४१

सासारिक द्वन्द्वो का क्रम पहिये की भाति घूमता ही रहता है। विवश और असहाय यक्ष ससार की इस परिवर्तनशीलता की ओर सङकेत करके ही अपनी प्रिया को सान्त्वना दे सकताथा।

कस्यात्यन्त सुखभुपनत दु खमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छति च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। उ मे ४६

कुछ अत्यन्त एव मनोरम अर्थान्तरन्यास निम्नलिखित है। इनमे विषय—वैविध्‍य विविधशास्त्रज्ञता, वैदुष्य कलात्म प्रवीण्य और मनोज्ञता दर्शनीय है।

१ प्रियेषु सौभाग्यफला हिचारूता। (कु स ५/१) २ शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् (कु स ५/४५) ३ न धर्मवृद्धेषु वय समीक्ष्यते कु स (५/१६) ४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु स ५/६४) ५ प्रायेण गृहिणीनेत्रा कन्यार्थेषु कुटुम्बिन (कु स ६/८५) ६ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसादति (रघु ३/२६) ७ तेजसा हि न वय समीक्ष्यते (रघु ११/१) ८ सन्तति शुद्धवश्या हि परत्रेह च शर्मणे (रघु १/६८) ६ मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत (पू मे ३) १० स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु (पू मे २६)

उपमा

अलङ्कार कवि भाषा का ऐसा अद्‌भुत धर्म है जो कथ्‌य अर्थ को मादक रूप प्रदान करता है। कालिदास की शैली की सबसे बडी विशेषता है कि उपमा अलङ्कार के माध्यम से सौन्दर्यात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति। किसी भी कवि के आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उनकी उपमाये जितना सहज रूप मे प्रस्तुत करती है, उतना अन्य नहीं। कालिदास के महाकाव्य रघुवश का श्रीगणेश उपमा की पृष्ठभूमि मे हुई है। इनकी यह उपमा

सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य को समेटे हुए सम्पूर्ण काव्य की गरिमा को अभिव्यक्त करती है।

> वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
> जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।। रघु १/१

इस श्लोक का उपमेय पार्वती और परमेश्वर है और उपमान है शब्दार्थ की नित्य सम्बन्धता। कालिदास की दार्शनिक मान्यताओ का अभिव्यक्तमूलक यह उपमान शक्ति और शिव की अभेदता को अभिव्यक्त करता है। शिवाश्रय भाव मे शक्ति की लीला सम्भव नही है तथा शक्ति के अभाव मे शिवत्व का अस्तित्व प्रश्नचिन्ह का विषय बन जाता है। साहित्यिक वैभव पार्थक्य सृष्टि के लिये नही है अपितु तादात्म्य सर्जना के लिये है। अर्थ वैभव का शिवत्व शब्द स्वरूपिणी शिवा शक्ति के अभाव मे शिव रूप ही है। अर्थ विहीन शब्द की परिकल्पना अज्ञान की सर्जना है। शब्द की अर्थ का ज्ञान किसी एक की सम्पदा नहीं है। अर्थ की अग्नि को छिपाए ही शब्द सुनायी पडता है। काव्य को पाठक के हृदयङगम के लिये महाकवि सादृश्य विधान का प्रयोग करते है। सादृश्य विधान प्रस्तुत करने वाले अलङकारो मे उपमा सर्वप्रमुख है। उपमा के ज्ञान से ही अन्य सादृश्यमूलक अलङ्कारो का ज्ञान भी सहज ही हो जाता है। सादृश्य मूलक अलङ्कारो मे कालिदास उपमा के धनी माने जाते है। विल्कुल सीधे और नये जले शब्दो के द्वारा कालिदास ने अपनी उपमाए ८ दी है। कालिदास के उपमा सौन्दर्य को विशिष्टता प्रदान करते हुए समीक्षको ने **'उपमा कालिदासस्य'** यह उक्ति प्रचलित कर दी है और उपमा का श्रेष्ठ कवि घोषित किया है।

कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनो के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि मे निरत भूतभावन शङ्कर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है, उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है।

अवृष्टिसरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुतङगम् ।

अन्तश्चराणा मरूता निरोधा निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।

कु स ३/४८

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओ को निरूद्ध कर सर्गबन्ध मे स्थिर अचचलभाव से बैठे है जैसे वृष्टि के सरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो। जल को धारण करने वाला अम्बुवाह किसी भी क्षण वरस सकता है। तरङ्ग से समुद्र हो (चचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरङ्गहीन अचचल है) तरङ्ग से समुद्र हो (चचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरङगहीन अचचल है। अपामिवाधार शब्द की यह ध्वनि तथा निवात निष्कम्प प्रतीत हो। यहॉ तीनो प्राकृतिक उपमानो के द्वारा कालिदास योगिराज की अचचल स्थिरता की अभिवृद्धि कर उसके गौरव की एक रेखा खीचते हुए प्रतीत होता है। कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा का उपमा से 'दीपशिखा कालिदास हो गये। इन्दुमती स्वयवर के वर्णन मे इन्दुमती की उपमा सचारिणी दीपशिखा से दी गयी है। वह जिस प्रकार राजा को छोडकर आगे निकल जाती थी वह उसी प्रकार विवर्ण एव विषादाकुल हो जाता है जैसे सचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राजप्रासाद अन्धकारवृत्त हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है।

सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ य व्यतीयाय पविवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाटट इव प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपाल ।। रघु ६/६७

इस श्लोक मे दो उपमान 'सचारिणी दीपशिखा और नरेन्द्र मार्गाट्ट इन्दुमती और भूमिपाल के स्वरूप का मनमोहक चित्र उपस्थित करते है। राजाओ के लिये अधेरी रात है पतिवश इन्दुमती सचरण करने वाली दीपशिखा है।

कामदेव के विनाश से दु खित रति की अवस्था वायु से बुझाए हुए

दीपक की घूमावृत्त बर्लिका के तुल्य अन्धकारवृत्त (विषादमय) थी। यह कवि की सर्वश्रेष्ठ उपमाओ मे से एक है। इसमे शोकाकुल व्यक्ति का क्या ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहत ।

अहमस्य दशेव पश्य माविषह्नव्यसनेन धूमिताम्।। कु स ४/३

मेघदूत मे उपमा का प्रयोग दर्शनीय है। वासना की सूक्ष्मता केवल अनुभाव का विषय बनती है। कवि उसे उपमान के माध्यम से उसे एक रूप देकर उसके रहस्यात्मक पहलुओ पर प्रकाश डालता है। चित्तवृत्तियो की असस्यता के जाल मे मानव की सम्पूर्ण चेतना उलझी हुई है। व्यक्ति की वासना या कल्पना को यदि सर्जना का रूप मिल जाये तो सम्पूर्ण सृष्टि का आचल रत्नो से भर दिया जाए। कवि अमूर्त मानसिक चिन्तन को उपमानो के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। वाह्य जगत का सूक्ष्म निरीक्षण ही आन्तरिक लहरो की गुत्थियो को किचित रूप दे पाता है। कालिदास ने अपने काव्यो मे अमूर्त कल्पनाओ को उपमानो के माध्यम से अभिव्यक्त करने का सुन्दर प्रयास किया है।

मेघदूत का विरही यक्ष मेघ से कह रहा है।

ता चावश्य दिवसगणनातत्परामेक पत्नी

मव्यापन्नामविहतगतिद्रक्ष्यसि भातृजायाम्।

आशावन्ध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यड्गनाना

सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रूणद्धि।। पू मे ६

पिता मेरे लिये एक–एक दिन बिता रही होगी। स्त्रियो का वियोग मे नष्ट होने वाला प्रणयी हृदय पुण्य के समान मृदुल होता है। वही हृदय वियोगावस्था मे आशा रूपी बन्धन से बँधा होने से बचा रहता है।

पुष्प का वृक्ष से टूट जाना उपमान मन की सम्पूर्ण विफलता को स्पष्ट करता है किन्तु मन की स्थिति विचित्र होती है। पुण्य की नियति मन से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है। आशा वन्धन मे बॅधा हुआ शरीर के वृन्द मे लटका हुआ भविष्य की कल्पना मे टूट—टूट कर भी जीता रहता है।

रघुवश महाकाव्य का एक और सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है— दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य राजा दिलीप और इसी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु पुत्री नन्दिनी की स्थिति का वर्णन किया है।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्‌गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपा मध्यगतेव सन्ध्या।। रघु २/२०

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कालिदास की उपमा केवल अलङ्‌कार के लिए नही है वरन् उनकी उपमाए ब्रह्माण्ड की एक कला है। कालिदास की एक—एक उपमा एक—एक नक्षत्र है जिसका रहस्य जानना कठिन है।

उत्प्रेक्षा

इस श्लोक की उत्प्रेक्षा ने बसन्त को नायक बनाकर वनस्थलियो को नायिकाए बना दिया है। फ्लाश के अधखिले पुष्प बालचन्द्र के समान वक्र प्रतीत हो रहे है। ये पुष्प मानो वनस्थलियो के वदन पर किये गये नख—क्षत है। नायक और नायिका के व्यवहार के आरोप से समासोक्ति अलङ्‌कार की भी प्रतीति हो रही है। यहॉ उत्प्रेक्षा और समासोक्ति दोनो अलङ्‌कारो के चयन ने वनस्थलिया को पदमाती नायिका के सौन्दर्य से अलङ्‌कृत कर दिया है।

रघुवश की एक उत्प्रेक्षा—
त कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयीशङ्‌कयेवाह पलितछिदमना जरा। रघु १२/२

मै वृद्धावस्था की सम्भावना की शड्का मे की गयी है। इस उत्प्रेक्षा अलङकार मे वृद्धावस्था को वतन बनाकर उसे भविष्यद्रष्टी के रूप मे चित्रित किया है। इस प्रकार अह्रदय वृद्धावस्था भी उत्प्रेक्षा के कारण अत्यन्त ह्रदया बन गयी है। कान के पास बाल पढना गुप्त वार्ता कथन की ओर सङकेत है। वृद्धावस्था राजा को सचेत करना चाहती है अत कान के पास आकर कहती है ताकि उसकी वार्ता दूसरा कोई सुन न ले।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गा गताना
शैषे पुष्यैर्हृतमिव दिव कान्तिमत्खण्ऽमेकम्।। पू मे ३०

इस श्लोक मे उज्जयिनी नगरी भूतल से अत्यन्त रमणीय बनाने के लिये कवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा उसे स्वर्ग का खण्ड बताया है। इस उत्प्रेक्षा ने उज्जयिनी की अलौकिकता पुष्यशीलता सततसुखशीलता आदि को अभिव्यक्त किया है।

इनके उपवन मे कही रूपक का चातक स्वाती बूद की काना को अपनी ध्वनि से अभिव्यक्त करता है कही तो निदर्शना के मालती–पुष्पो पर ससृष्टि अथवा सकर का भ्रमर मडराता रहता है। उपमा की कोकिला की मधुर ध्वनि तो योगी की भी समाधि को भड्ग कर देती है। व्यतिरेक प्रतीप परिणाम आदि की तितलिया रग–बिरगी परिधान मे दृष्टान्त के मलयानिल मे अठखेलिया करती रहती है।

कालिदास के अलङ्कार चयन मानसिक प्रक्रियाओ को मूर्त रूप मे अधिक बोधगम्य बनाकर पाठको को एक ही अर्थ–समुद्र से चौदह से भी अधिक रत्नो की प्राप्ति के आनन्द की अनुभूति कराते है। कुछ अलङ्कारो के चयन के द्वारा कालिदास को काव्य–भाषा की गम्भीरता समझी जा सकती है।

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्ति चित्र मुखे मधुश्रीस्तिलक प्रकाश्य।
रागेण बालारूणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलचकार।। कु स ३/३०

यहाँ रूपक अलङ्कार ने भ्रमर तिलक के फूल और लाल–लाल कोपले रूपक के माध्यम से नवयौवना की मादकता की वर्षा कर रही है। रूपक ने अचेतन तत्वो को चेतनता ही नही प्रदान की वरन् उन्हे सरसता का मूर्तिमान् रूप प्रदान कर दिया है। एक–एक वस्तु ने रूपक के माध्यम से श्रृङगार के आसव समुद्र की सर्जना कर दी है।

रूपक ने चित्रकूट जडत्व को वृषभ के रूप मे परिणत कर उसे शिव का वृषभ के रूप मे परिणत कर उसे शिव का वृषभ सा बना दिया है जो किसी भी व्यक्ति के चित को आकर्षित कर सकता है।

कालिदास ने अपने निदर्शना अलङ्कार के माध्यम से अवर्ण्य अर्थ को भी कोकिला की वाणी दे दी है।

अभ्युन्नताङ्गुष्ठनख प्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागभिवोद्गिरन्तौ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्या स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्।। कुस १/३३

पार्वती के चरणविन्यास को निदर्शना ने अरूणिमा बना दिया है। उनके चरण–विन्यास ने स्थल पर लाल–कमल की सर्जना कर दी है।

क्व ? सूर्यप्रभवो वश क्व ? चाल्पविषया मति ।
तितीर्षुदुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।। रघु १/२

इस श्लोक की निदर्शना कालिदास की विनयशीलता को हिमालय से भी शीतल और उन्नत बनाकर रघुवश की मर्यादा की अलौकिकता प्रदान की है।

कालिदास की प्रतिवस्तुपमा अत्यन्त रमणीयता की सृष्टि करती है–

मधुश्च ते मन्मथ। साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य।। कुस ३/२१

यहाँ प्रतिवस्तूपमा ने यह व्यजित किया है कि कामदेव और बसन्त

की मित्रता अभिन्न है। बसन्त और काम की सी तथा अग्नि और पवन की सी मित्रता अभिन्न है।

> स्थिता क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता ।
> वलीषु तस्या स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभि प्रथमोदविन्दव ।।
>
> कु स ५/२४

उपर्युक्त श्लोक मे परिकर अलङकार ने प्रत्येक पद चयन को एक–एक रत्न से भी अमूल्य बना दिया है। वर्षा का प्रथम बिन्दु अत्यन्त विरल होता है किन्तु बहुवचन ने उसकी विरलता को थोडी सी सप्तता प्रदान की है। उनका पार्वती के नेत्रलोभ पर क्षण भर रूकना पद्मो की सान्द्रता और स्निग्धता को अभिव्यक्त कर रहा है। विन्दुओ का पार्वती के अधर को ताडित करना अधर की कोमलता तथा मुग्धता को द्योतित करता है। पार्वती के स्तन के अग्र–भाग से बिन्दु का होना यह अभिव्यक्त करता है कि पार्वती के उन्नत पयोधर अत्यन्त कठोर है अत उसमे नव–यौवनात्मक है। बिन्दुओ का विलम्ब से नाभि प्रदेश मे समा जाना नाभि प्रदेश की गम्भीरता को अभिव्यक्त करता है।

सार्थक विशेषणो के प्रयोग से पार्वती के अद्वितीय सौन्दर्य की अभिव्यजना करायी है।

> मनीषता सन्ति गृहेषु देवतास्तप क्व वत्से क्वच तावक वपु ।
> पद सहेत भ्रमरस्य पेलव शिरीषपुष्प न पुन पतत्त्रिण ।। कु स ५/४

यहॉ **दृष्टान्त अलङ्कार** ने जिस कलात्मक ढग से पार्वती की रमणीयता को अभिव्यक्त कर उसे तपस्या से रोकने का प्रयास किया है उसके समक्ष काव्य का कान्तासम्मित कथन भी लज्जित हो जाता है।

> चन्द्र गता पद्मगुणान्न भुङ्गते पद्मश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
> उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला दिसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ।। कु स १/४३

यहाँ **व्यतिरेक अलङ्कार** ने कालिदास की लेखनी को उपमा सौन्दर्य सृष्टि की शक्ति दी है। पार्वती के मुख मे चन्द्रमा की कमनीयता और पद्म की कोमलता एव सौरभ की मादकता है। अतएव पार्वती का सौन्दर्य लोकोत्तर है।

प्रतीप अलङ्कार ने भी कालिदास की वासना के सौन्दर्य को मूर्तिमान रूप देने का प्रयास किया है। पार्वती के अरूणिम अधर के अमूर्त हास का विलास प्रतीप के माध्यम से व्यक्त होकर कालिदास के कल्पना वैभव को अभिव्यक्त करता है—

पुष्पप्रवालोपहित यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुटविद्रुमस्थम्।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरूच स्मितस्य।। कु स १/४४

इस प्रतीप अलङ्कार के माध्यम से पार्वती के अरूणिम अधर के हास के लिए दो दो उपमानो की सृष्टि कर प्रकृति की असम्भवता को सम्भव रूप प्रदान करने का प्रयास है प्रवाल (नव पल्लव) अत्यन्त अरूणिम सरस और मार्दव होता है। उस प्रवाल पर यदि सौरभ बिखेरने वाला धवल पुष्प हो तो पार्वती के अरूणिम अधर का मादक ह्रास समता कर सकता है अथवा विद्रुम पर स्थित मुक्ताफल ही।

इस प्रकार कवि ने अन्यान्य अलङ्कारो के प्रयोग से काव्य को दिव्य रूप प्रदान किया है। कवि ने अलङकारो के प्रयोग मे रूढियो (परम्परा) का पूर्णत पालन किया है।

छन्द

सर्गो का सम्बन्ध छन्दयोजना से भी जोडा गया है। वाल्मीकि ने एक सर्ग मे एक ही छन्द प्रयुक्त किया, किन्तु सर्गान्त मे वृत्त परिवर्तन कर दिया। इसी पद्धति को कालिदास ने रघुवश मे तथा वाद के सभी कवियो ने

अपनाया। कुछ सर्गों मे कालिदास ने अनेक छन्दो का प्रयोग किया है। ऐसा सम्भवत इसलिये किया कि वर्ण्यविषय का उप विविध था। कुमार सम्भव मे भी ऐसा ही छन्द प्रयोग किया है। सर्गान्त मे वाल्मीकि की भाति उन्होने बदले हुए वृत्तो की सख्या एक या दो न रखकर कही–कहीं तो अनेक रखी है। महाकवि ने रघुवश मे वाल्मीकि कृत रामायण की रूढियो (परम्परा) का प्रयोग किया है।

छन्द की मूलधारणा आच्छादन की है। चित् शक्ति का आच्छादन ही जगत की सर्जना है। सृष्टि विलास छन्द प्रक्रिया की क्रमिक विकासात्मिका रमणीयता है। ब्रह्म की इच्छा ही छन्द है। इइसलिए उसकी इच्छा से ही एक शक्ति की अनन्त रमणीयता बिखेर रही है। जहॉ सौन्दर्य है शिवत्व है, वहॉ उस चित्शक्ति की लीला है। लीला आवरण मे आवृत्त होकर मनोरजन करती है। कवि का मूलभाव शक्तिमय है। छन्द स्फुटन मे मूल शक्ति का विकासात्मक सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है। जगत की सम्पूर्ण रचना एक छन्द है जिसमे एक एक स्वर एक–एक लाभ और एक–एक ताल अन्तर्निहित है। जब तक यह लय और ताल है सृष्टि का छन्दात्मक सौन्दर्य है जहॉ यह भड्ग हुआ सृष्टि का सौन्दर्य प्रलय मे विलीन हो जायेगा।

'छदि सवरणे' से निष्पन्न छन्द शब्द का शाब्दिक अर्थ अभिप्राण होता है।[1] छन्द वर्णों का ऐसा गुम्फन है, जिसमे छन्दशास्त्र के नियमो–गुणो, लघु गुरू यति आदि का पालन किया जाता है। सस्कृत भाषा के छन्दो की मात्रा की योजना की है। उनका मेघदूत काव्य 'मन्दकान्ता छन्द मे विरचित है। मन्दाकान्ता छन्द का प्रयोग प्रावृट–वर्षा, प्रवास और व्यसन (कष्ट की स्थिति) के वर्णन मे किया जाता है।[2] महाकवि क्षेमेन्द्र 'सुवृत्ततिलक मे लिखा है कि काव्य मे रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दो का सोच समझकर विनियोजन करना चाहिये।[3]

---

१ अभिप्रायश्चछन्द आशय। अमरकोश ३/२०

२ 'प्रावृटप्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते । सुति ३/२१

३ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च। कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित।। सुति

मन्दाक्रान्ता छन्द मन्द–मन्द गति से प्रारम्भ होकर आक्रान्तता को प्राप्त हो जाती है कि इनकी असह्य विरह वेदना को देखकर वनदेवियो के नेत्रो से मुक्ताफल के समान आसू किसलयो पर गिरने लगते है।[1]

मेघदूत मे मेघ की यात्रा कालिदास के विप्रलम्भ श्रृडगार की करूणोत्पादिनी यात्रा है। इसी छन्द मे कालिदास के कोमल भावो को इतना गौरवान्वित किया कि सभी आचार्यो ने मुक्तकण्ठ से मेघदूत और उसके छन्द की प्रशसा की है।

क्षेमेन्द्र ने कालिदास के मन्दाकान्ता छन्द की बडी प्रशसा की है कि जिस प्रकार कुशल अश्वारोही जिस प्रकार काम्बोज देशीय घोडी को अपने नियत्रण मे रखता है उसी प्रकार कालिदास को नियत्रण मे मन्दाकान्ता शोभित होता है।[2]

इस प्रकार कालिदास ने अपने काव्य मे **उपजाति** का सफल प्रयोग कर अपनी सहज अभिरूचि का परिचय दिया है। उनके काव्य मे उपजाति के बहुल प्रयोग ने ही, सम्भवत परवर्ती काल मे उपजाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया। काव्य मे वैदर्भी रीति को व्यक्त करने मे यह छन्द सर्वाधिक उपयुक्त है– न बहुत बडा न बहुत छोटा। विशेषकर वीर एव श्रृड्गार रस को व्यक्त करने के लिये इससे बढकर उपयोगी दूसरा छन्द नही है।

वसन्तलिका

रघुवश के कई स्थलो पर वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है। पञ्चम सर्ग मे इन्दुमती को प्राप्त करने के लिये अज की चिन्ता एव चारणो द्वारा

१ पश्यन्तीना न खलु वहुशो न स्थल देवताना।
मुक्ता स्थूलास्तरूकिसलयेण्वश्रुलेशा पतन्ति।। उ मे ४३

२ 'सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते।
सदश्वकदमकश्मेव काम्बोजतुरगाडगना।। सु ति ३–३४

अज के वीरचरित्र का प्रशस्ति गान नवम् सर्ग मे महाराज दशरथ की आखेट क्रीडा त्रयोदश सर्ग मे राम लक्ष्मण भरत इत्यादि के वीर आदर्श चरित्र की व्यञ्जना आदि के प्रसङग मे भी[1] वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया। इस प्रकार रघुवश मे राजाओ के वीर चरित्र के कथन मे वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है किन्तु उसमे रौद्र रस का लेश भी नही है केवल उनके उच्च आदर्शो तथा पौरूष का ही कथन हुआ है।

रघुवश के अन्य सर्गो मे जैसे अष्टम सर्ग मे महाराज अज के शोकमय कथा के वर्णन मे[2] एकादश सर्ग मे राम पर प्रसन्न होकर दशरथ द्वारा उन्हे स्नेह करने के प्रसङ्ग मे[3] द्वादश सर्ग मे राम राज्याभिषेक प्रसङ्ग मे षोडश सर्ग मे कुश के विवाह के अवसर पर एकोविश सर्ग मे राजा अग्निवर्ण की मृत्यु के पश्चात् उसकी दु खित रानी के राज्याभिषेक के प्रसङग मे वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

नवम् तथा अष्टादश सर्गो के अन्त मे वसन्ततिलका छन्द का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग विविध विषयो तथा विविध प्रसङगो के अवसर पर हुआ है।

रथोद्वता

महाकवि कालिदास को रथोद्वता छन्द के प्रति अपना स्वराज्य है। जिस कर्म का परिणाम खेद रूप मे परिणत हो जाए— चाहे वह खेद रतिजनक हो दुष्कर्मजनित हो, या पश्चाताप जनित हो— या आखेट जनित हो सबका वर्णन रथोद्वता छन्द मे हुआ है।

---

१ एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छा विमानमधिदेवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयभिरदीक्षित प्रकृतिभिर्भरतानुगाभि ।। रघु १३/६८

२ तस्य प्रसह्य ह्वदय किल शोकशडकु प्लक्षप्ररोह इव सौधतल बिभदे।
प्राणान्तहेतुमपि त भिषजाम साध्य लाभ प्रियानुगमने त्वरया स मेने। रघु ८/९३

३ तस्मिन्गते विजयिन परिरभ्य राम स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम्।
तस्याभवत्क्षण शुच परितोष लाभ कक्षाग्निलङ्पिततरोरिव वृष्टिपात ।। रघु ११/९२

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग मे[1] शिव पार्वती के काम–क्रीडा का वर्णन रथोद्वता छन्द मे हुआ है। शङ्कर जब पार्वती का चुम्बन करना चाहते है तो वे अपना होठ ही नही बढाती और जब वह हृदय से लगाना चाहते है तो वे अपने हाथ तक नही उठाती। इस प्रकार बाधाओ के साथ अधूरे रस के साथ भी, शिव जी ने वधू के साथ जो रति क्रीड की उसमे उन्हे आनन्द ही मिला।

रघुवश मे दु खान्त घटनाओ के वर्णन मे रथोद्वता छन्द का प्रयोग हुआ है। दशरथ के आखेट जन्य परिश्रम के प्रसङग मे[2] मुनि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ राक्षसो के वध के प्रसङ्ग मे[3] राम द्वारा शिव के धनुष भङग के प्रसङ्ग मे, मार्ग मे परशुराम को देखकर दशरथ की चिन्ता के प्रसङ्ग मे अग्निवर्ण की काम क्रीडा एव दु खान्त मृत्यु के प्रसङ्ग मे[4] रथोद्वता छन्द का प्रयोग किया है। इन श्लोको मे वर्णित स्थलो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विषाद एव खेद के वर्णन के प्रसङग के लिये कवि रथोद्वता का अलग से चयन किया है।

प्रद्वर्षिणी

कालिदास ने प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग केवल रघुवश मे किया है। प्रहर्षिणी छन्द कहीं तो सर्ग के अन्त मे और कहीं सर्ग के मध्य मे प्रयुक्त हुआ है। रघुवश के प्रथम सर्ग मे महाराज दिलीप, गुरू वशिष्ठ से पुत्र प्राप्ति का

---

१ पाणिपीडनविधेरनन्तर शैलराज दुहितुर्हरै प्रति।
भावसाध्वसपरिग्रहाद भूत्काम दोहद मनोहर वपु ।। कु स ८/१

२ तस्य कर्कशविहार सम्भव स्वेदमानन विलग्न जालकम्।
आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुरो वनानिल ।। रघु ६/६८

३ कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविधात शान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसा हिन वय समीक्ष्यते।। रघु ११/१

४ पितुरनन्तरमुक्तरकोसलान्समाधिगम्य समाधिजितेन्द्रिय ।
दशरथ प्रशशाम्स महारथो यमवताभवता च धुरि स्थित ।। रघु १६/१

उपाय पूछते है तो वशिष्ठ नन्दिनी की सेवा रूप उपाय बताते है। राजा यह सुनकर बडे ही प्रसन्न होते है और उन्हे यह विश्वास होने लगता है कि उनको पुत्र अवश्य ही प्राप्त होगा।[1] रघु दिग्विजय के पश्चात विश्वामित्र यज्ञ करते है और बिना बाधा के सफलता पूर्वक समाप्त हो जाने का वर्णन प्रहर्षिणी छन्द मे किया है।[2] यज्ञ समाप्त हो जाने पर रघु तथा उनके मन्त्रियो ने हारे हुए राजाओ का बडा सत्कार किया। और इस प्रकार उनके मन मे हार जाने की भी लज्जा थी उसे दूर कर दिया फिर अपनी रानियो से बहुत दिनो से बिछुडे हुए उन राजाओ को स्वदेश जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हर्षमय प्रसङगो का ही वर्णन कवि ने प्रहर्षिणी छन्द मे किया है।

मालिनी

कालिदास ने काव्यो मे किसी किसी सर्ग के अन्त मे मालिनी छन्द का प्रयोग किया और किसी सर्गान्त मे अन्य छन्दो (पुष्पिताग्रा प्रहर्षिणी मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका इत्यादि) का भी प्रयोग किया है।

कुमारसम्भव के प्रथम द्वितीय सप्तम् और अष्टम् सर्गो के अन्त मे मालिनी का प्रयोग किया है। रघुवश मे द्वितीय, सप्तम् दशम एकादशसर्ग के अन्त मे मालिनी छन्द ही प्रयुक्त है। उदाहरणार्थ कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग की समाप्ति का चित्र देखिये—

नया विवाह होने से लजीली महादेव जी के हॉथो द्वारा अचल खीचे जाने पर अपना मुह छिपाने वाली तथा सखियो की चुटकियो का ज्यो—त्यो उत्तर देने वाली पार्वती जी के आगे आकार जब प्रमथादिगण अनेक प्रकार के मुँह बनाने लगे तो पार्वती भी मन ही मन हॅस दी।

---

१ निर्दिष्टा कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रह द्वितीय।
तच्छिष्याध्ययन निवेदितावसाना सविष्ट कुशशयने निशा निनाय।। रघु १/९५

२ सत्रान्ते सचिवसख पुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभि शमितपराजयव्यलीकान्।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान् राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने।। रघु ४/८६

वैतालीय

महाकवि ने करूणरस के वर्णन मे वैतालीय छन्द का प्रयोग किया है। रघुवश मे अज विलाप[1] का वर्णन तथा कुमारसम्भव मे रति विलाप[2] का वर्णन वैतालीय छन्द मे हुआ है। अज तथा रति दोनो करूण रस के आश्रय है। अतएव कवि ने उनकी मार्मिक तथा दु खपूर्ण दशा का चित्रण बैतालीय छन्द मे किया है।

इसी प्रकार रघुवश के नवम् सर्ग मे दशरथ द्वारा—हाथी के भ्रम मे तापस कुमार के मारे जाने जैसी दु खपूर्ण कथा का वर्णन कवि ने वैतालीय छन्द मे किया है।

वशस्थ

महाकवि ने वशस्थ का प्रयोग अपनी सुविधानुसार किया है। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग मे पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन इसी छन्द मे हुआ है।[3] पतली कटि वाली प्रसन्नवदना पार्वती, गर्मी के दिनो मे अपने ओर आग जला कर उसी के बीच मे खडी रहने लगी और चकाचौध करने वाले सूर्य के प्रकाश को भी जीतकर वे सूर्य की ओर एकटक होकर देखती गयी।

रघुवश मे महाराज रघु के वीर चरित्र की व्यञ्जना मे वशस्थ छन्द का प्रयोग मिलता है। रघु तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन इसी छन्द मे किया गया है। रघु ने मोर के पङ्खो वाले बाण से इन्द्र की वज्र जैसी ध्वजा काट

---

१ अथ तस्य विवाहकौ तुक ललित विभ्रत एव पार्थिव।
वसुधामपि हस्तगामिनीम करोदिन्दुमतीमिवा पराम्।। रघु ८/१

२ अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधत्यमसहयवेदनम्।। कु स ४/१

३ नृपते प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङि्क्तरयो विलडधय यत्।
अपथे पदर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता ।। रघु ६/७४

डाली। उससे इन्द्र को ऐसा क्रोध हुआ मानो किसी ने बलपूर्वक देवताओ की राजलक्ष्मी के सिर के बाल काट लिये हो।

पुष्पिताग्रा

कालिदास ने अधिकतर पुण्यिताग्रा छन्द का प्रयोग सर्ग के अन्त मे ही किया है। किसी शुभ कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये प्रस्थान तथा सफलता प्राप्ति का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द मे किया गया है। रघुवश के पचम सर्ग के अन्त मे इन्दुमती स्वयवर के लिये प्रस्थान करते हुए महाराज अज का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द मे किया गया है।[1] कुमारसम्भव मे आकाशवाणी के अनन्तर आश्वस्त हुई रति का वर्णन पुष्पिताग्रा मे हुआ है।[2] षष्ठ सर्ग मे पावर्ती के मिलने के लिये महादेव की आतुरता का वर्णन इसी छन्द मे हुआ है।[3] पार्वती से मिलने के लिये महादेव जी इतने उतावले हो गए कि तीन दिन उन्होने बडी कठिनाई से काटे। जब महादेव जैसो की प्रेम मे यह दशा हो जाती है तब भला दूसरे लोग अपने मन को कैसे वश मे कर सकते है। इस प्रकार भावो की तीव्रता दिखाने के लिये कवि ने इस छन्द को साधन बनाया।

द्रुतविलम्बित

समृद्धि के वर्णन मे कालिदास ने द्रुतविलम्बित छन्द की योजना की है। रघुवश के नवम् सर्ग मे महाराज दशरथ के समृद्धिशाली तथा धन धान्य से पूर्ण राज्य का वर्णन इसी छन्द मे हुआ है। महाराज दशरथ बडे ही

---

१ अथ विधिमवसाय्य शास्तदृष्ट दिवस मुखोचितमञ्जिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेष क्षितिपसमाजमगात्स्वयवरस्थम्।। रघु ५/७६

२ अथ मदनवधूरूपप्लवान्त व्यसनकृशा परिपालयावभूव।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयथसरा प्रदोषम्।। कुस ४/४६

३ पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छादगमयदद्रिसुता समागमोर्तक।
कमपरमवश न विप्रकुर्युर्विभुमपि त पदमी स्पृशन्ति भावा।। कुस ६/९५

प्रजावत्सलशासक थे। उनकी कीर्ति दिगदिगन्त मे फैली थी।[1] कवि उनके राज्य की समुन्नत दशा का वर्णन करता हुआ कहता है। दशरथ जी देवताओ के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था राज्य के सचालन का भार अपने हाथ मे लेते ही उनका देश समृद्धिशाली हो गया। रोग भी उनके राज्य की सीमा मे पैर न रख सके फिर भी शत्रुओ के आक्रमण की तो सम्भावना ही कहॉ।

हरिणि

हरिणि छन्द का प्रयोग केवल रघुवश मे तृतीय सर्ग के अन्त मे हुआ है। महाराज दिलीप वृद्ध हो गये है इसीलिये उन्होने सभी प्रकार से समर्थ रघु को राज्य का भार सौप दिया। उनका यह कार्य सभी दृष्टि से उदारतापूर्वक तथा औचित्यपूर्वक था क्योकि उन्होने यह कार्य रघुकुल की (रूढियो) परम्परा के अनुकूल किया था।[2] उनके द्वारा प्रयुक्त छन्दो का पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि मन्दाक्रान्ता कवि का प्रिय छन्द रहा है और उसमे यश एव सफलता भी प्राप्त हुई है। कवि ने मन्दाक्रान्ता के प्रति रूचि का परिचय मेघदूत के माध्यम से दिया है। मन्दाकान्ता के पश्चात उन्होने अनुष्टुप छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया और लगभग एक हजार श्लोको की रचना इस छन्द मे किया है। इसके पश्चात उपजाति एव क्रमश अन्य छन्दो का प्रयोग हुआ है। महाकवि का छन्द प्रयोग इतना सटीक एव तथ्यपूर्ण है कि वाद मे चलकर वे ही छन्दशास्त्र के नियम बन गये। यद्यपि छन्दो के प्रयोग मे कालिदास ने अपनी वैयक्तिक रूचि को ही प्रधानता दी है किन्तु फिर भी वे विषय एव रस के सर्वथा अनुकूल एव सराहनीय है।

---

१ पितुरनन्तर मुक्तरकोसलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रिय ।
दशरथ प्रशशास महारथो यमवतामवता च धुरि स्थित ।। रघु ९/१

२ मुनिवनतरूच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिद हि कुलव्रतम्।। रघु ३/७०

कालिदास के छन्द मे कही भी इत्तवृत्तता दोष नही है। उनके सफल छन्द प्रयोग को देखकर हम यह कह सकते है कि महाकवि ने अपने काव्य के द्वारा रसो के अनुकूल छन्दो की योजना की शिक्षा सी दी है। उनका छन्द परिधान काव्यात्मा के रस को और भी अलङ्कृत कर देता है।

मेघदूत मे छन्द विवेचन

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते। सु ति ३/२१

(वर्षा एव प्रवास औ‍र विपत्ति के वर्णन मे मन्दाकान्ता छन्द (काव्य मे) उपयुक्त होता है)

कालिदास का खण्डकाव्य मेघदूत आद्योपान्त इसी छन्द मे सर्जित है। मन्दाकान्ता के प्रयोग का काव्य मे विशेष कारण है– रस काव्य का प्रारम्भ वर्षा ऋतु के वर्णन से होता है तथा प्रवासी यक्ष की करूण स्थिति के वर्णन के उपरान्त समाप्त हो जाता है। वर्षाकाल मे मेघ के आगमन से साधारण प्रवासी का पथ भी आर्द्र हो जाता है और उसकी गति मन्थर हो जाती है। इसीलिये **क्षेमेन्द्र** ने वर्षा प्रवास एव विपत्ति के वर्णन मे मन्दाकान्ता के प्रयोग का निर्देश दिया । **वृत्तरत्नाकर** मे 'मन्दाकान्ता को मृदु चरणो मे क्रीडा करती हुई मुग्ध एव स्निग्ध मन्थर गति वाला कहा है ।[1] दौत्य कर्म करने वाला मेघ मन्द–मन्द चरणन्यास से ही अपनी लम्बी यात्रा मे अग्रसर होता है। भौगोलिक दृष्टि से भी दक्षिण से चलकर मानसून उसी पथ का अनुसरण करता है जिसे कालिदास ने अपनी रस स्निग्ध रचना मे निर्दिष्ट किया है और इसी पथ से वर्षा के नायक 'मेघदूत ने मन्दाक्रान्ता के रथ पर चढ कर मनोहारी प्रवास किया।

---

१ नानाश्लेषप्रकरणचरणाचारूवर्णोज्जवलाङ्गा।
नानाभावा कलिताश्सिकैश्रेणि कान्तातरङ्गा। वृ रत्ना

मेघदूत का प्रवासी नायक दुर्भाग्य ग्रस्त नायक है। इसलिये कवि ने उसकी कारूण्य दशा का वर्णन मन्दाकान्ता मे किया है। वियोगी यक्ष अपनी पत्नी के शोकाकुल दशा का परिचय देता हुआ कहता है– विरह के कठोर दिन बडी ही कठिनाई से व्यतीत करते हुए रूप विवर्ण हो गया। उसे देखकर तुम्हे भ्रम हो सकता है कि यह कोई वाला है या पाले से मारी हुई कमालिनी।[1] मेघदूत मे महाकवि का सारा काव्य नैपुण्य पुजीभूत होकर प्रस्फुटित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि कालिदास की समग्र काव्यकला का दर्शन किसी एक स्थान पर देखना है तो मेघदूत का अध्ययन करना चाहिए। कहीं तो उन्होने शब्दो के नाद द्वारा विषम का परिचय किया।

तस्मादगच्छेरनुकनरवल शैलराजावतीर्ण।
जह्नौ भार्या सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।।

तो कही सुभग शब्द मैत्री द्वारा छन्द के माध्यम से रमणीयता का सचार किया।

इस प्रकार मन्दाक्रान्ता की अपनी मन्द–मन्द गति विप्रलम्भ श्रृङ्गार के करूण कोमलभाव की व्यञ्जना करने मे विशेष सहायक सिद्ध हुई है और कालिदास ने उनके प्रयोग मे विशेष निपुणता का परिचय दिया है। काव्य का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहना ही पडता है कि मेघदूत की मन्दाक्रान्ता अपनी समस्त विशेषता लेकर अमर हो गयी। कवि का सम्पूर्ण वाग्वैभव इसमे प्रकट हुआ है। मेघदूत मे उत्कृष्ट कल्पना वैभव कलापूर्ण सृजन सौष्ठव भावो की एकाग्रता अद्‌भुत एव अद्वितीय ढङग से व्यक्त हुआ है। उनकी मन्दाक्रान्ता दक्षिण से उत्तर दिशा तक– प्रवासी पक्ष का सन्देश उसकी प्रिया तक पहुँचाने का सफल दौत्य कार्य किया है और मृदु और मन्थरगति मे काव्य रसिको को जिस आनन्द की अनुभूति हुई है– वह सचमुच आश्चर्यजनक है। कालिदास से पूर्व किसी भी कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द मे काव्यरचना नहीं की थी। यद्यपि हरिषेणकृत प्रयाग शिलास्तम्भ की प्रशस्ति मे एक स्थान पर इस छन्द का प्रयोग हुआ है किन्तु इसे काव्य मे प्रयोग करने तथा लोकप्रिय बनाने का श्रेय कालिदास तथा उनके मेघदूत को है।

प्रकृतिवर्णन

रघुवश

महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषाओ के अनुसार रघुवश सस्कृत साहित्य का सबसे सुन्दर महाकाव्य है। यहॉ पर महाकाव्य सम्बन्धी सभी तथ्यो का प्राय समावेश है। विभिन्न ऋतुओ नदी समुद्र पर्वत वनविहार जलबिहार विवाह, वियोग, सगामादि सबका यथास्थान वर्णन है। पूर्णता के दृष्टिकोण से 'कीथ 'महोदय ने रघुवशकार को भारत का वरजिल माना है यद्यपि रघुवश मे पदार्थो और दृश्यो का मूर्तस्वरूप उतनी कुशलता से प्रस्तुत नही किया गया जितना कि वरजिल रचित स्नीड के छठे भाग मे दीख पडता है।[१] वस्तुत यह कमी कुमारसम्भव मे पूरी कर दी गयी है। रघुवश के कथा–प्रबन्ध मे इतना अवकाश न था कि पूर्णरूप से प्राकृतिक शुषमा के रूप–विधान या विम्ब सरचना मे ध्यान रखा जाता

चतुर्थ सर्ग मे रघु की दिग्विजय का वर्णन करते समय पाण्डयदेश ताम्रपर्णी कावेरी मुरला, मलकचायल, प्राग्ज्योतिषपुर (कामरूप या असम) कम्बोज (कावुल) हिमालय आदि विभिन्न क्षेत्रो का वर्णन इस प्रकार का है कि प्रतीत होता है महाकवि कालिदास को तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था। उन्होने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक पर्यटन किया था। ऐसा इसलिये कहना पडता है कि मध्यभारत और दक्षिणभारत की नदियो और पर्वत श्रेणियो का सदा वहॉ उत्पन्न होने वाली वनस्पतियो का यथार्थ वर्णन यहॉ दीख पडता है। दक्षिण समुद्र तट पर पकी हुई सुपाडियो के वृक्ष मलयाचल की उपत्यकाओ मे काली मिर्च की झाडियो जिनमे हरे–हरे तोते उड रहे थे लौग और चन्दन के वृक्ष–मलय और दुर्दर की

---

१ 'If in perfection of from kalidasa s poem proclaim his the Vergil of India "
History of Sanskrit literature P १००

पहाडियो पर चन्दन के वृक्ष इस प्रकार सुशोभित थे मानो चन्दन लगे हुए दक्षिण दिशा के दो स्तन हो २ सनिर्विश्य यथाकाम तटेष्वालीनचन्दनौ। स्तनाविव दिशस्तस्या शैलौ मलयदर्दुरौ।रघु ४/५१ पाचवे सर्ग मे सूर्य और चन्द्र का प्राभातिक वर्णन चारणो के मुख द्वारा हुआ है। नवम्सर्ग मे वसन्त ऋतु का वर्णन है। त्रयोदश सर्ग मे पुष्पकविमान द्वारा आकाश मार्ग से अयोध्या लौटते समय रामचन्द्र जी सीता से उन स्थलो का वर्णन करते है जहॉ पर उन्होने बनवास के दिन व्यतीत किये थे। चतुर्दशसर्ग मे महाराज कुश अन्त पुर की सुन्दरियो के साथ जलविहार करते है। नवम् सर्ग का वसन्त वर्णन और त्रयोदश सर्ग का सगमवर्णन काव्य—सौन्दर्य के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है।

'रघुवश मे भी कालिदास ने प्रकृति के जड स्वरूप का ग्रहण नही किया है। कवियो के आश्रमो की प्रकृति सुषमा के भीतर सत्वगुण प्रतीत होता है। वहॉ दिव्यशान्ति के दर्शन होते है। अरण्यवासी जीव भी सत्वोदेक के कारण काम क्रोध को भूलकर परस्पर स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार करते है। परमधाम जाते समय श्रीराम ने सरयू को अयोध्यावासियो के लिये स्वर्ग की सीढी बना दिया है।

उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ।
चक्रे त्रिदिवनिश्रेणि सरयूरनुयायिनाम। रघु० १५/१००

ये सब वर्णन काल्पनिक नही है, बल्कि, विस्तृत पर्यटन और सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति के परिणाम है।

परन्तु कामी और व्यसनी अग्निमित्र को सरयू एक कामिनी के समान ही प्रतीत होती है। राजभवन के झरोखे से सरयू के तट पर बैठी हुई राज हसो की पक्ति अग्निमित्र को ऐसी प्रतीत होती है, जैसे सरयू उन सुन्दरियो का अनुकरण कर रही है जितने नितम्ब प्रदेश मे करधनी पडी हो

सैकत च सरयू विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हसमेखलम्।

स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवररैर्त्यलोकयत्।। रघु १६/४०

उपर्युक्त स्थलो से स्पष्ट है कि कालिदास ने प्रकृति का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया है–

कालिदास ने धरती से लेकर आकाश तक विस्तृत प्रकृति के प्रदाय् कोष से उपमान चुने है। रघुवश के श्लोको का सौन्दर्य और आकर्षण बहुत कुछ इन नैसर्गिक उपमानो की देन है। लालरगवाली नन्दिनी के मस्तक पर स्वेत वालो की रेखा ऐसी प्रतीत होती है जैसे सन्ध्या के मस्तक पर द्वितीय का चन्द्र सुशोभित हो। रघु १/८३

दिलीप और सुदक्षिण के बीच स्थित नन्दिनी दिन और रात्रि के बीच स्थित सन्ध्या के समान प्रतीत होता है। अग्निमित्र को स्त्रियो के स्पर्श से वैसा ही आनन्द मिलता था जैसे चन्द्रमा के किरणो के स्पर्श से। अत वह कुमुदो के समान रात भर जागता रहता था और दिन भर सोया करता था।

योषितामुडुपतेरिवर्चिषा स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन्।

आरूरोह कुमुदाकरोपमा रात्रिजागरपरो दिवाशय ।। रघु० १६/३४

महाकवि कालिदास को जीव–जन्तुओ के व्यवहार का अच्छा ज्ञान था। उपमानो मे चित्रमयता भी पर्याप्त है। रक्तवर्णा नन्दिनी के ऊपर वैठा हुआ पीले केसरो वाला सिह ऐसा प्रतीत होता है जैसे गेरू के पहाड की ढाल पर पीले फूलो वाला लोध्रवृक्ष फूल रहा हो। (२–२६) ज्योतिषशास्त्र के नक्षत्रो का भी उपमान के रूप मे ग्रहण दीख पडता है। जनकपुरी मे विचरण करते हुए राम लक्ष्मण की उपमा कवि ने दो पुनर्वसु नक्षत्रो से दी है। कालिदास ने स्त्रियो के सौन्दर्य मे प्राकृतिक सुषमा के दर्शन किये है, तो प्राकृतिक पदार्थो मे भी उन्हे नारी सौन्दर्य के दर्शन होते है। अज विलाप कर रहे है कि –

कल्यमन्यभृतासु भाषित कलहसीषु मदालस गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षित पवनाधूतलतासु विभ्रमा ।। रघु० ८/५६

चतुर्थ सर्ग मे १४ से २४ तक ११ श्लोको मे शरद् ऋतु का वर्णन है। यह वर्णन महाराज रघु के दिग्विजय प्रसग मे है। सरोवरो मे कमल के फूल खिले थे। आकाश मे सूर्य का प्रकाश चारो ओर फैल रहा था। धान के खेतो की रक्षा करने वाली कृषको की स्त्रियॉ ईख की छाया मे बैठकर महाराज रघु का गुणगान गा रही थीं। शरद् ऋतु के व्याज से कवि ने महाराज रघु का यशोगान ही किया है—

पचम सर्ग मे ६५ से ७५ तक ११ श्लोको मे महाराज अज को जगाने के लिये चारणो के द्वारा आकर्षण प्रभातवर्णन हुआ है। मधुर कोमलकान्त पदावलियॉ शब्दो का सगीतात्मक प्रयोग अर्थकोमलता और भावपेशलता इस वर्णन की विशेषता है। अभिव्यजक पदावलियो के प्रभाव से सुरम्य सुशीतल प्रभातकालीन वर्षच्छटा अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ नेत्रो के सामने नाचने लगती है। उन्होने व्यजना के द्वारा शान्त और सुखद प्रभातकालीन सुषमा का विम्वग्रहण कराने का स्तुत्य प्रयास किया है।

निद्रावशेन भवताऽप्यनवेक्ष्यभाणा पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति मेन दिगन्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरूचि विजहाति चन्द ।।
रघु० ५/६७

प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते समय कालिदास मे तीन विशेषताए साधारणतया पायी जाती है। शब्दो के दृष्टिकोण से पदावलियो मे मधुरिमा रहती है। अर्थ मे चित्रमयता रहती है। पूर्णता लाने के लिये उस दृश्य से सम्बद्ध सामान्य तथ्यो का समावेश रहता है। प्रभातवर्णन मे भी सेधानमक खाकर पागुर करने वाले अश्वो पिजरो मे गीता गाने वाले शुको, सुगन्धित पवन का बहना, कमलो का खिलना भ्रमरो का गुँजार, राजहसो की क्रीडा आदि व्यापारो का समावेश है।

नवम् सर्ग मे २५ से ४७ तक श्लोको मे वसन्त ऋतु का मनोरम वर्णन है। कालिदास की प्रतिभा का वसन्त वर्णन मे जितना अधिक उन्मेष हुआ है उतना अन्य ऋतुओ के वर्णन मे नही। सस्कृत साहित्य मे कालिदास जैसे वसन्त वर्णन करने वाला नही है। अन्य कवियो ने तो कालिदास के भावो का ही वर्णन करने का प्रयास किया है परन्तु कालिदास मे मौलिकता है। पचम वर्णो के प्रयोग के द्वारा अनुप्रास की सृष्टि कोमल शब्द सगीत को जन्म देती है। उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने चित्रमयता की सृष्टि की है। परन्तु दशरथ के पक्ष मे वसन्त वर्णन सम्भोग श्रृगार का उद्दीपन है, परन्तु यह चीज केवल कथा प्रबन्ध के दृष्टिकोण से है। कालिदास ने वसन्त ऋतु का ग्रहण आलम्बन विभाव के रूप मे ही किया है। पदलालित्य और अर्थ सौदर्य वसन्त वर्णन से सम्बद्ध सभी श्लोको मे है—

वसन्त का आगमन धीरे—धीरे होता है। कालिदास सूक्ष्मदर्शी रससिद्ध कवि थे। वसन्त के आविर्भाव और विकास के क्रम का जितनी सूक्ष्मता से उन्होने वर्णन किया है उसी सूक्ष्मता अन्यत्र नहीं दीख पडती। फाल्गुन और चैत्र के महीने मे वन प्रदेशो मे जितना सौन्दर्य किशुक के फूलो का रहता है उतना अन्य जाति के फूलो का नहीं। सम्पूर्ण पलाशवृक्ष इन फूलो से लाल पड जाता है। किशुक की कलियो की उपमा कालिदास ने प्रियतम के शरीर पर लगे हुए कामिनी के नखक्षत्रो से दी है।

> उपहित शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालनशोभत किशुके।
> प्रणयिनीव नखक्षतमण्डन प्रमदया मदयापितलज्जया।।

रघु० ६/३१

आम्रमजरी को कामदेव के पचबाणो मे से एक बाण माना है। कवियो ने आम्रमजरी को सबसे अधिक कामोद्दीपक माना है। कालिदास ने मधुमास की शोभा का चित्रण करते समय आम्रमजरी का विशेष ध्यान रखा है। इसका सौन्दर्य किसी अभिसारिका से कम नही है—

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारूतकम्पितपल्लवा।
अमदयत्सहकारलता मन सकलिका कलिकामजितामपि।।

रघु ६/३५

वसन्त मे नारी–सौन्दर्य और उनके कामोद्दीपक विलासो की ही प्रधानता रहती है। कालिदास ने मधुमास की प्रकृति–सुषमा पर नारीत्व का अरोप किया है। वन की लताएँ भौरो के गुँजार के वहाने गीत गा रही थी। विकसित कुसुमो की कान्ति ही उनके दॉतो की शुभ्र चमक थी। वायु के कारण उनकी शाखाये हिल रही थी अत प्रतीत होता था जैसे वे विविध हाव–भाव दिखा रही है।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतय कुसुमकोमलदन्तरूचो बभु।
उपवनान्तलता पवनाहतै किसयै सलयैरिव पाणिभि।।

रघु० ६/३५

वृक्षो की सुन्दरी नायिका नव मल्लिका लता भी वनस्थली मे अपना सौन्दर्य विखेर रही थी। वह अपने मकरन्द रूपी मदिरा के गन्ध से भरे लाल–लाल किसलयरूपी अधरो पर फूलो की मुस्कान लेकर सभी को विह्वल कर रही थी।

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसङ्गतया मन।
कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरूचा तरूचारूविलासिनी।।

रघु ६/४२

रघुवश का वसन्त वर्णन काव्य सौन्दर्य का दृष्टिकोण जितने उच्च स्तर का है, उतने ही उच्च स्तर का भाव सौन्दर्य और कोमल रूप योजना के दृष्टिकोण से भी है। वसन्त का वर्णन करते समय कालिदास की काव्य प्रतिभा अपने उत्कर्ष के चरमविन्दु का स्पर्श करने लगती है–

त्रयोदश सर्ग मे पुष्पक–विमान से देखे गये मार्ग के दृश्यो का वर्णन है। आकाश से दूर चढकर अगर धरती के दृश्य देखे जाय तो उसकी पूर्ण स्वरूप अपनी सभी विशेषताओ के साथ दीख पडेगा। राम ने इन स्थलो मे वनवास के दिन विताएँ थे। अत इन परिचित स्थलो के साथ उनकी सुखद और दु खद स्मृतियाँ जुडी है।

षोडश सर्ग मे ४३ से ५३ तक ११ श्लोको मे ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है। यह वर्णन कुश की सुन्दरिया के जल बिहार की भूमिका मात्र है। तीव्र आकर्षण, भाव सौष्ठव और सहानुभूति की यहाँ भी कमी नहीं है। कालिदास के मानसिक जगत का निर्माण ही इन्ही तत्वो से हुआ है–

कालिदास के समय मे ग्रीष्म के प्रारम्भ मे तीन चीजे विशेष प्रिय मानी जाती थी। मनोहर गध वाली आम की बौर और उनके फल चुराती मदिरा और नये पाटल के फल।

> मनोज्ञगन्ध सहकारभङ्गम् पुराणशीधु नवपाटल च।
> सम्बध्नता कामिजनेषु दोषा सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टा ।।
>
> रघु० १६/५२

जलविहार का भी सुन्दर वर्णन है। जल क्रीडा करने वाली रानियो के कानो से शिरीष के कर्णफूल निकलकर जल मे तैर रह थे। मछलिया उन्हे सेवार समझकर मुँह मारने दौड रही थी–

कालिदास के उपमान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी खेर प्रतीत होते है। पात्र के मानसिक भावो की अभिव्यक्ति प्राकृतिक उपमानो के द्वारा जिस सुगमता से कर देते है, उतना अन्य किसी तरीके से नहीं कर पाते–

> शशिन पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचर पतत्त्रिणम्।
> इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मा दहे ।।
>
> रघु ८/५६

पुष्पक विमान पर आरूढ राम भी सीता से वियोगजन्य दु ख की अभिव्यक्ति किया है। कालिदास ने विरह वेदना की ही केवल अभिव्यक्ति नही की सीता मिलन से उत्पन्न सुख और दाम्पत्य जीवन की स्वाभाविक मधुरिमा की भी अभिव्यजना करते समय उन्होने प्राकृतिक उपादानो का ही आश्रय लिया है।

अत्रावियुक्तानि रथाङनाम्नामन्योन्यदत्तोपत्वल केसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये ! सस्पृहमीक्षितानि।।

रघु १३/३१

कालिदास केवल भावुक ही न थे उन्हे प्राकृतिक उपादानो का वैज्ञानिक ज्ञान भी था। मानवीय परिस्थितियो की आश्रय लेकर वे ऐसा उपामान चुनते है जो वरावर तौल का होता है ओर उसमे औचित्य और अनुकूलता रहती है।

कालिदास ने प्रकृति–चित्रण करते समय रूढिवादिता स्वीकार नहीं की। उन्होने मुग्ध दृष्टि से भारत के विभिन्न स्थलो की नैसर्गिक शोभा देखी थी। इसका अनिर्वचनीय प्रभाव उनके हृदय पर पडा था। चित्रकूट सगम कावेरी और सरयू आदि के वर्णन उसी के फल है। प्रथम सर्ग मे ४६ से ५३ तक ५ श्लोको मे वरिष्ठ जी के आश्रम का वर्णन है। ऋषियो की कन्याए वृक्षो की जडो मे पानी देकर हट गयी थीं। कालिदास ने निश्चय ही ऋषियो के आश्रमो मे घूम–घूम कर वहॉ के रहन–सहन जीव जन्तुओ के व्यवहार तथा प्राकृतिक शोभा का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। तभी इतनी कुशलता से 'रघुवश' मे वाल्मीकि, अत्रि सुतीक्ष्ण और शरभग आदि कवियो के आश्रमो का भी वर्णन है–

सक्षेप मे 'रघुवश' का प्रकृति–चित्रण प्राय मनोवैज्ञानिक, भावाभिव्यजक और आलम्बन विभाव के रूप मे है। वर्णन–शैली मे स्वाभाविकता, सरलता ओर मधुरिमा है। रघुवश म शिष्ठाश्रम और शाकुन्तलम् म कण्वाश्रम का वर्णन कर सके हैं।

कुमारसम्भव

प्रकृति–चित्रण के दृष्टिकोण से कालिदास का कुमारसम्भव सस्कृत साहित्य का नि सन्देह सबसे सुन्दर महाकाव्य है। कालिदास ने कथा प्रवन्ध ही ऐसा चुना है, जिसका वर्णन पूर्णरूप से हिमालय की अधित्यकाओ तथा उपत्यकाओ मे ही केन्द्रित है। यह प्रकृति–नटी के लास्य की ऐसी रगभूमि है जहॉ कोई ऐसा सर्ग न मिलेगा जो किसी न किसी आकर्षक सौन्दर्य का शब्द चित्र न प्रस्तुत कर रहा हो। रघुवश मे प्रकृति मूक है परन्तु कुमारसम्भव मे चेतन प्रकृति का वर्णन है। पर्वत राज हिमालय ऋतुराज वसन्त काम रति मन्दाकिनी अग्नि सूर्य चन्द्र सप्तर्षि कृतिकाये और नन्दी–सभी इस महाकाव्य के पात्र है। पात्र दिव्य है, कथा दिव्य है अत प्रकृति का दिव्य होना अनिवार्य है। इस दिव्यता के होने पर श्री कालिदास ने सम्पूर्ण वर्णन मानवीय व्यवहार की छाया मे ही प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि 'कुमारसम्भव' का अध्ययन करने के पश्चात 'पूजा की भावना जाग्रत नहीं होती बल्कि काव्यमृतमहासिन्धु मे निज्जन करता वेसुध हो जाता है। आचार्य मम्मट ने रस की इसी भावना को 'अन्यत्सर्वमिव तिरोदघत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन इत्यादि विशेषताओ के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

कालिदास एक ओर जहॉ प्रकृति के स्वाभाविक शब्द–चित्र निर्माण मे अत्यन्त कुशल है, वहॉ वे दूसरी ओर अपनी नवनवोन्मेष शालिनी कल्पनामयी–प्रतिभा के सहारे अलौकिक एव दिव्य विभूतियो का निपुणता पूर्वक वर्णन करने मे समर्थ है। कालिदास रूढिवादी या परम्परावादी ■ थे। उनकी उक्तियॉ उत्प्रेक्षाए तथा सौन्दर्य विधान कुछ ऐसा कि उनके जैसा वर्णन नहीं कर सकता है, जो मुग्धदृष्टि से प्रकृति का अद्भुत सौन्दर्य निहारता हुआ सब कुछ भूल जाता है–

निसर्ग कन्या शकुन्तला और पर्वत राज हिमालय की पुत्री उमा—सस्कृत साहित्य के लिये दो कालिदास की महान देन है। ये प्रकृति देवी के श्रृगाररससारहृदयसिन्धुसम्भूत दो पूर्ण निष्कलक चन्द्र है। इसकी तुलना विश्व साहित्य मे कही भी नही है। वर्डवर्थ ने ल्यूसी (Lucy) नामक प्रकृति कन्या की तुलना की है परन्तु सौन्दर्य का इन्द्रजाल त्याग तपस्या वात्सल्य और स्वाभिमान जो शकुन्ता ओर पार्वती मे है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मिल्टन के पैराडाइसलास्ट (Paradice Lost) मे (Eve) का सौन्दर्य और चरित्र उतना विकसित और हृदयस्पर्शी नहीं है कि उसे शकुन्तला और पार्वती के समकक्ष रखा जा सके। चरित्र की उज्वलता ओर पातिव्रत के दृष्टिकोण से इव (बुक ४ लाइन्स ६३५—५६) के लिये शकुन्तला और पार्वती उपमान रूप हो सकती है उपमेयरूप नही। प्रकृति और मानवलोक के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली मे दो स्वर्णिम श्रृखलाए है।

कुमारसम्भव का प्रकृतिचित्रण आलम्बन—विभाव के रूप मे है। अष्ट्म सर्ग का सन्ध्या और चन्द्रोदयादि का वर्णन भी केवल पात्र के पक्ष मे ही सम्भोग श्रृगार का उद्दीपन हो सकता है, श्रोता या पाठक के लिए यह भी आलम्बन रूप है। हिमालय वसन्त, सन्ध्या, अन्धकार और चन्द्रोदय की भावनाओ के रग से अभिरजित करके मधुर चित्र खींचने वाले कालिदसही पहले कवि है। वसन्त ऋतु का चित्रण करते समय कालिदास की बराबरी बाल्मीकि ओर अश्वघोष भी नहीं कर पाते—

कुमारसम्भव का प्रत्येक श्लोक सरस, मधुर और आकर्षक है। आचार्य आनन्द वर्धन और अभिनवगुप्त ने जिस रसध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है। उसी की अजसधारा यहॉ प्रवाहित है। कालिदास, काव्यशास्त्र सगीतशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। इन्हीं विशेषताओ के कारण उनके कतिपय श्लोक, शब्दसौष्ठव शब्दसगीत अभिव्यजना और भावो की

कोमलता के दृष्टिकोण से सस्कृत साहित्य मे अतुलनीय है। यहॉ पर स्थान–स्थान पर नवीन सौन्दर्य के दर्शन होते है। उनका काव्य रसानुभूति काल मे सदृश्य को अलौकिक जगत् मे खीच ले जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे कवि ने इसी रहस्य की ओर सकेत किया है।

अहोराग
तवास्मि गीतरागेण हरिणा प्रसभ दृत ।
यथा राजेव दुष्यन्त सारङमेणातिरहसा।

इसी आत्मविस्मरणकारिणी स्थिति को अभिनवगुप्त के व्यतिरेक– तुरीयातीत स्थिति माना है।

जहॉ कुमारसम्भव की रसानुभूति सहृदय को खींच ले जाती है। **'डा० कान्ती चन्द्र पाण्डेय'** के शब्दो मे यह वह स्थिति है जहॉ चैतन्य की आत्मा मे समाहित हो जाती है। दीपक की निश्चय लौ के समान केवल आत्मा ही प्रकाशित रहती है आत्मा अपने आनन्दस्वरूप मे स्थित रहती है। इसी वैशिष्ट्य के कारण आचार्य आनन्दवर्धन ने कालिदास की गणना वाल्मीकि के साथ करके उन्हे महाकवि माना है–

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ के १७ श्लोको मे हिमालय का विम्ब ग्राही वर्णन है। पर्वतराज हिमालय के पार्थिवस्वरूप का चित्रण करते समय कालिदास ने केवल कल्पना का ही आश्रय नहीं लिया। हिमालय के वनो मे गरजते हुए सिहो मदमस्त गजराजो और लम्बी पूँछ वाले चामरमृगो ने भी उनके मन को अपनी ओर खीचा होगा। कालिदास को वाल्मीकि के बाद भारत का दूसरा महाकवि कहा जा सकता है जिन्होने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति का यहॉ की ऋतुओ तथा विविध नैसर्गिक व्यापारो का वैज्ञानिक की तरह सूक्ष्म निरीक्षण ओर विश्लेषण किया है। तदूपरान्त महाकवि की तरह उनके सौन्दर्य का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किया है। पढते

ही या श्रवण करते हो हिमालय की भव्यमूर्ति मन मे आ जाती है अत हिमालय वर्णन श्रोता या पाठक के भावो के आलम्बन रूप मे है।

हिमालय की भावना कवि ने धरती के स्वर्ग के रूप मे की है। इसी से यहाँ यक्ष अप्सराये और गन्धर्व निवास करते है।

अस्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ।।

कु० स० १/४

कालिदास के समय मे हिमालय से प्राप्त भोजपत्र का लिखने के कार्य मे विशेष उपयोग होता था। उन्होने स्वय कहा है कि भोजपत्र मे बने हुए अक्षर ऐसे प्रतीत होते है जैसे हाथी की सूड पर लाल मन्दकिया रखी हो

पद तुषारस्रुतिधौतरक्त यस्मिन्नदृष्टवापि हतद्विपानाम्।
विन्दन्ति मार्ग नखरध्रमुक्ताफलै केसरिणा किराता ।। कु० स० १/६

हिमालय मे बॉसो के सघन वन है। उनके छिद्रो मे जब वायु भर जाती है तो अनायास वेणु की सुरीली ध्वनि निकलने लगती है जैसे ये बॉस किन्नरो के गीतो के साथ सगत कर रहे है।[1]

हिमालय की उपत्यकाओ मे देवदारू के सघन वन पाए जाते है। हिमालय के मदमस्त हाथी जब देवदारू के वृक्षो मे कनपटी खुलजाने लगते हैं तो उनकी रगड से ऐसा सुगन्धित दूध निकलता है कि हिमालय की सभी चोटियॉ महक से गमक उठती है। कालिदास ने हर श्लोक मे कई–कई व्यापारो का एक साथ समावेश करके वर्णन किया है। हिमालय की चोटी पर सिद्ध लोक धूप का आनन्द ले रहे है और उनके ठीक नीचे बादल जलवृष्टि कर रहे है– इस प्रकार का दृश्य अनोखा ही है। जिन्होने यह दृश्य देखा होगा, वे प्रकृति की लीला देखकर अवश्य गद्‌गद् हो गए होगे– हिमालय की

---

१ कु०स० १/८

घाटियो मे सजीवनी आदि स्वप्रकाशित औषधिया पायी जाती है। कालिदास ने किरातो के जीवन के साथ इनका आकर्षण मेल बैठा दिया है।

वनेचराणा वनितासखाना दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभास ।।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूरा सुरतप्रदीपा ।। कु०स० १/१०

स्वकाशित औषधियॉ हिमालय की गुफाओ मे पायी जाती है। अत किरात लोग अपनी प्रियाओ के साथ जब इन गुफाओ मे रात के समय विहार करते है, तो ये जडी वूटियॉ उनकी काम क्रीडा के समय बिना तेल के दीपक का कार्य करती है। हिमालय पर निवास करने वाले प्राणियो तथा वहॉ की वनस्पतियो का वर्णन करने के बाद कालिदास् ने भागीरथी की निर्मल धारा का भी वर्णन किया है। यहॉ पर भी एक साथ कई व्यापार आपस मे सम्बद्ध है। हिमालय के पवन के साथ भागीरथी के जल–कणो का फैलना देवदारू के वृक्षो का कॉपना, मोर की पूँछो का छितराना किरातो का मृगो की खोज मे निकलना तथा वायु सेवन करना–इतने व्यापार परस्पर जुडे हुए है–

भागीरथीनिर्झरसीकाराणा बोढा मुहु कपितदेवदारू ।
यद्वायुरन्विष्टमृगै किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्ह ।। कु स १/१५

हिमालय के भौतिक स्वरूप के अलावा दिव्य स्वरूप है। वह 'अचल ही नही चल भी है। कालिदास के ग्रन्थ के पहले श्लोक मे ही देवतात्मा पद के द्वारा हिमालय के इस स्वरूप की अभिव्यजना कर दी है। कुमारसम्भव की नाटयमुनि मे हिमालय का यही स्वरूप दीख पडता है। विश्व के किसी भी देश के साहित्य मे सम्भवत पर्वत के स्वरूप का इतना भव्य चित्रण न हुआ होगा जितना कि 'कुमारसम्भव मे कालिदास ने पहली बार हिमालय के मानवीय स्वरूप का वर्णन छठे सर्ग के ५१ वे श्लोक मे किया है। हिमालय का यह स्वरूप उसकी भौतिक सरचना के अनुरूप ही है–

इस नगर मे जरा–मृत्यु आदि सासारिक व्याधिया नही है। नगर के बाहर गन्धमादन नामक सुगन्धित पर्वत स्थित है। गन्धमादन के कल्पवृक्षो की शीतल छाया मे विद्यार्थी पढकर विश्राम करते है। हिमालय की इस दिव्य राजधानी का दर्शन एक वार सप्तर्षियो ने किया तो वे मन्त्रमुग्ध होकर सोचने लगे कि स्वर्ग के लिये इतनी तपस्या करके हम व्यर्थ ही ठगे गये–

अथ ते मुनयो दिव्या प्रेक्ष्य हैमवत पुरम्।
स्वर्गाभिसधिसुकृत वन्चनामिव मेनिरे।। कु०स० ६/४७

हिमालय के मानवीय स्वरूप और उसकी राजधानी औषधियप्रस्थपुरी के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास आकाश मे चित्र कर्म प्रस्तुत करने के पक्षपाती न थे। उनकी कल्पनाए भी पुराणो की मान्यताओ से अनुप्राणित है। कालिका पुराण के ४१ वे अध्याय के अनुसार औषधिप्रस्थपुरी के पास ही एक चोटी पर गगाजी पहले पहल ब्रह्मपुर से आकर गिरी थी।

पर्वतराज हिमालय के राजभवन मे भी वही सम्बन्ध वही भाव आकाक्षाए मानसिक द्वन्द्व दीख पडते है जो मानवीय व्यवहार मे प्राय दीख पडते है। पिता हिमालय के हृदय मे भी पार्वती को देखकर वात्सल्य की दुग्ध ाधार वहने लगती है।

महीभृत पुत्रअवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा।।
कु० स० १/२७

इस प्रकार कालिदास ने हिमालय के विविध स्वरूप का चित्रण किया है। अपने अचल स्वरूप मे हिमालय भारत के ऊपर मे पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र का स्पर्श करता हुआ पर्वतराज है, अपने मानवीय रूप से वे पार्वती के पिता है। हिमालय के दोनो स्वरूप आपस मे मिलते जुलते है। दोनो के वर्णन मे कालिदास को पूर्ण सफलता मिली है–

कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग मे तारकासुर के आसुरी वैभव का वर्णन है। सूर्य चन्द्र वायु समुद्रादि सभी उनके आतक से कॉपते है। वेचारी ऋतुओ की भी विचित्र दशा है। वे अपने समय का विचार छोडकर एक साथ फुलवारी की मालिनो की भॉति दूसरी ऋतु के फूलो को विना तोडे हुए अपने समय के फूल उपजाकर तारकासुर की सेवा करती है।

पर्यायसेवामुत्सृज्यपुष्पसभारतत्परा ।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते।। कु०स० २/३६

कालिदास ने हिमालय की ही तरह ऋतुओ अधिष्ठाता देवता की कल्पना की है। यहॉ उन्ही से तात्पर्य है।

तृतीय सर्ग मे भगवान शकर की समाधि भग करने के लिये कामदेव अपने मित्र वसन्त को लेकर हिमालय की रगभूमि पर उतरता है। काम की पत्नी रति भी साथ ही है। इस सर्ग का वर्ण्य विषय प्राय एलीगारिकल (Allegarical) है। रति श्रृङ्गार रस का स्थायी भाव है। बसन्त का नैसर्गिक सौन्दर्य उसके उद्बोधन मे सहायक होता है। रति जब तरलता को प्राप्त हो जाती है तभी कामजन्य विलास सम्भव होते है। इसीलिये रति काम की पत्नी है और रति को उद्वुद्ध करने वाला औषधि वसन्त काम का अत्यन्त विश्वसनीय मित्र है। कालिदास का भी ऐसा ही मत है।।

मधुश्च ते मन्मथ ! साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदमिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य।।कु०स० ३/२१

कोई कहे या न कहे काम का साथी तो वसन्त ही है। पवन से कहने कोई नही जाता कि तुम अग्नि की सहायता करो। अग्नि को उद्दीप्त करना तो उसका स्वभाव ही है।

कालिदास ने व्यवहारिक कम ही अपनाया है। सबसे पहले वसन्त हिमालय की पावन भूमि मे प्रवेश करके अपने सौन्दर्य का इन्द्रजाल विखेर देता है। इसके बाद रति को साथ लेकर कामदेव इस नाट्यभूमि पर उतरता है—

त देशमारोपितपुष्पचाये रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने।

काष्ठागतस्नेहरसानुविद्ध द्वन्द्वानि भाव क्रियया विवबु।। कु०स० ३/३५

इस सर्ग के वसन्त वर्णन मे भी हिमालय वर्णन जैसे विविध वैशिष्टय का समावेश है। एक तरफ वसन्त ऋतु की भौतिक पुष्प समृद्धि और नैसर्गिक सुषमा का मनमोहक चित्रण है और दूसरी तरफ बसन्त स्वय अपने मानवीय स्वरूप मे वहॉ उपस्थित है। वसन्त अपने सौन्दर्य का जाल जब विखेरने लगता है तो सूर्यदेव असमय मे दक्षिणायन से उत्तरायन हो गये। कालिदास ने अपनी भावनाओ के रगो से अभिरजित करके इन सवका वर्णन किया है। कामदेव के पचवाणो मे आम्रमजरी सबसे प्रसिद्ध है। वसन्त अपने मित्र के लिये वाण तैयार कर रहा था। वन प्रदेश मे वसन्त लक्ष्मी का अद्‌भुत श्रृगार दीख पडता है।

लग्नद्विरेफान्जनमाभाक्तचित्र मुखे मधुश्रीस्तिल प्रकाश्य।

रागेण वालारूणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलङ्‌चकार।। कु०स० ३/३०

कामदेव अपनी ही पत्नी रति को लेकर जब इस नाटय भूमि मे उतरा तो चराचर विश्व काम की उद्‌दाम लहरो मे बहने लगा। भौरा अपनी प्यारी भौरी के साथ एक ही फूल की कटोरी मे रस पीने लगा। काला हिरण अपनी प्यारी हिरणी को सींगो से खुजलाने लगा और हिरणी उसके खुजलाने का आनन्द लेती हुई ऑखे मूँदकर चुपचाप बैठ गयी। गजराज अपनी सूँड से कमलो के पराग से सुरभित जल निकाल कर अपनी प्रियायो को पिलाने लगे। जिन वृक्षो को हम अचेतन समझते है वहॉ भी काम की छाया पडने पर स्पन्दन होने लगा।

पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्य स्फुरत्प्रावालोष्ठमनोहराभ्य ।

लतावधूभ्यस्तखोऽप्यवापुर्विनमशाखाभुजबन्धनानि। कु०स० ३/३६

वृक्ष अपनी शाखा रूपी भुजाओ को फैलाकर उन प्यारी लताओ का

आलिगन करने लगे जिनके बडे–बडे फूलो के गुच्छो के रूप मे स्तन लटक रहे थे कोमल और अरूण किसलयो के रूप मे जिनके ओष्ठ खिल रहे थे। साहित्यशास्त्र के आचार्यो के अनुसार यहॉ पर श्रृगार रस का आभास मात्र होता है। अत यह रसाभास हुआ परन्तु कालिदास का उद्देश्य रसाभास का चित्रण करना नही है। उनका उद्देश्य यहॉ यह स्पष्ट करता है कि अनुकूल वातावरण प्राप्त करके कामवासना जड चेतना सभी को अपने पाश मे आश्रय कर लेती है। भगवान शकर की समाधि की दूसरी स्थिति है। वे दीपक की लौ के समान समाधिस्थ है। नन्दी अपनी सुवर्ण दण्ड लेकर सभी गुणो को शान्त कर रहे है। उनके आदेश पर वृक्षो ने हिलना बन्द कर दिया। सभी जीव जन्तु शान्त होकर बैठ गए। पशु भी जहॉ खडे हो गये पक्षियो ने कलरव बन्द कर दिया। यहॉ तक कि सारा वन प्रदेश एक ही सकेत मे ऐसा लगने लगा मानो चित्र मे खिचा हो।

निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे।। कु० स० ३/४२

समाधिस्थ शकर पर वसन्त के पार्थिक सौन्दर्य का प्रभाव नही पडता। कामदेव की भी शक्ति प्रतिहत हो जाती है। परन्तु मालिनी ओर विजया नामक वनदेवियो को आता देखकर उसकी खोयी हुई शक्ति पुन लौट आती है। अशोक के किसलयो स्वर्णिम कान्ति वाले कर्णिकार के पुष्पो तथा मोती जैसे उजले सिधुवार के फूलो से विभूषित पार्वती स्तनो के भार से झुकते हुए शरीर पर प्रात कालीन सूर्य के अरूण प्रकाश के समान कान्ति वाले वस्त्र धारण किए हुए इस प्रकार चली आ रही है, जैसे फूलो के गुच्छो के भार से झुकी हुई लाल–लाल किसलयो वाले चलती फिरती लता हो।

आवर्जिता किचिदिव स्तनाभ्या वासो वसाना तरूणार्करागम्।
पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सचारिणी पल्लविनी लतेव।। कु०स० ३/५४

उसी समय परमात्मा की परम ज्योति का दर्शन करके समाधिस्थ शिव ने नेत्र खोले। पार्वती ने मन्दाकिनी के कमलो की माला शिव के कण्ठ मे डाल दी। कामदेव के वाण प्रहार के कारण उन्हे मन मे पार्वती के प्रति कुछ आसक्ति सी प्रतीत हुई। वसन्त का वैभव पार्वती की अत्यधिक सौन्दर्य कामदेव का सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। परमयोगी शिव के तृतीय नेत्र से प्रादुर्भूत क्रोधाग्नि की लपटो से काम जल जाता है।

कालिदास ने पचम सर्ग मे ४ श्लोको मे (१४–१७) उस आश्रम का चित्रण किया है, जहॉ रहकर पार्वती तपस्या किया करती थी। वहॉ के गुफाओ लताओ और पशु–पक्षियो के एक ही साथ रखने के कारण उनका बडा स्नेह था।– कु०स० ५/१४

अष्टम्सर्ग मे सन्ध्या सूर्यास्त अन्धकार चन्द्रोदय का आलकारिक वर्णन है। इन व्यापारो का एक पूरे सर्ग मे वर्णन करने वाले कालिदास प्रथम कवि है। उत्तरकालीन कवियो ने अपने महाकाव्यो मे इस क्रम का अनुसरण करके अनिवार्य रूप से सन्ध्या, सूर्यास्त अन्धकार और चन्द्रोदय का वर्णन किया है। अन्तर केवल इतना है कि अन्य कवियो ने इन तथ्यो का वर्णन सम्भोग श्रृडगार की उद्दीपन सामग्री के रूप मे किया है। सूर्योदय और चन्द्रोदय के बीच अन्धकार कृष्ण पक्ष मे ही दीख पडता है। कालिदास के पक्ष मे यह मौलिक उद्भावना है परन्तु अन्य कवियो ने कालिदास का अनुसरण करके चन्द्रोदय के पूर्व अन्धकार वर्णन की परम्परा ही बना ली थी। कुछ कवि तो ऐसे है जो चित्रण तो पूर्णिमा के चन्द्र का करते है परन्तु परम्परा निभाने के लिये उसके पहले अन्धकार का वर्णन करते है–

गन्धमादन पर्वत पर भगवान शिव उमा के साथ विहार कर रहे थे। इसी पृष्ठभूमि मे सम्पूर्ण वर्णन हुआ है। इस दृष्टिकोण से यह वर्णन शिव और पार्वती के पक्ष सम्भोग का उद्दीपन हो सकता है, परन्तु रूप योजना, बिम्ब

ग्राहिकता, सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति और भाव कोमल के दृष्टिकोण से ये वर्णन श्रोता या पाठक के पक्ष मे आलम्बन रूप ही है। सम्भवत कालिदास ने हिमालय की उपत्यकाओ मे सन्ध्या सूर्यास्त और चन्द्रोदय के जिन मनोरम दृश्यो का सौन्दर्य देखा था उसी का सरस और मधुर पदावलियो मे सश्लिष्ट वर्णन किया है। उपमा एव उत्प्रेक्षा की सिद्धि के लिये उन्होने जिन उपमानो को प्रयोग किया है वे काल्पनिक न होकर उन सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति पर आधारित है। सन्ध्या सूर्यास्त और चन्द्रोदय का चित्रण करते समय कालिदास ने प्रकृति के चेहरे पर होने वाले एक–एक क्षण के परिवर्तन को ध्यान से देखकर उन चित्रो की झॉकी सजा दी है।

सन्ध्या के भौतिक सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ ही साथ कालिदास ने सबके आध्यात्मिक महत्व पर भी प्रकाश डाला है। भगवान शकर का कहना है–

निर्मितेषु पितृषु स्वयभुवा या तनु सुतनु पूर्वमुज्झिता।
सेयमस्तमुदय च सेवते तेन मानिनि ममात्र गौरवम्।।

कु० स० ८/५२

कालिदास के सभी उपमान एक विशेष प्रकार का कोमल और रगीन चित्र खींच देते है। यह चित्रमयता काल्पनिक नहीं है। वल्कि सन्ध्याकालीन दृश्यो का ध्यान से देखने पर जो अनुभव प्राप्त होता है यह उसी का प्रतिफल है। लाल–लाल सूर्य की हल्की सी झलक पश्चिम दिशा मे दीख पडती है। कवि ने पश्चिम दिशा की भावना उस कन्या के रूप मे की है जिसके मार्ग पर केशर से भरे हुए वन्धुजीव के फूल का तिलक लगा हो।

लाल–पीले और भूरे रग के बादलो को देखकर ऐसा लगता है जैसे सन्ध्या देवी ने बादलो के हाथ मे तूलिका लेकर रग दिया हो।

रक्तपीतकपिशा पयोमुचा कोटय कुटिलकेशि । भान्त्यम् ।
द्रक्ष्यसि त्वमिति साध्येवेलया वर्तिकाभिरिव साधुवर्तिता ।। कु०स० ८/४५

सन्ध्या के समय अन्य प्राणी भी विश्राम के लिये अपनी निवास भूमि की ओर प्रस्थान करने लगते है। सल्लकी के वृक्षो से सुवासित वन–भूमि को छोडकर राजराज कमल सरोवरो की ओर जा रहे है जैसे जगली सुअर दिन भर तालाब के कीचड को मथकर अपने शरीर की गर्मी मिटाते है परन्तु अव वे भी वाहर निकल आए है। उनके सफेद दॉत ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे खाए हुए मृणाल की डठल अटकी हो। वेचारे चक्रवाक पक्षी भी आसन्न वियोग से विह्वल होकर अपने प्रियाओ के गले मिल रहे है। इस प्रकार कालिदास ने सन्ध्या का पूर्ण चित्र अकित किया है भारतीय सन्ध्या का यही स्वरूप है। अन्धकार का वर्णन कालिदास ने दो ही श्लोको मे किया है, परन्तु जितना पूर्ण और आकर्षण चित्र उन्होने खींच दिया है। उतना अन्धकार के स्वरूप का चित्रण अन्य कोई कवि नही कर सका अँधेरा फैल जाने से न तो इस समय ऊपर कुछ दिखाई दे रहा है न नीचे न आस–पास और न आगे–पीछे। रात्रि के समय सारा ससार इस प्रकार अँधेरे मे घिर गया है जैसे गर्भ की झिल्ली से लिपटा हुआ बालक पडा हो।

नोर्ध्वभीक्षणगतिन चाव्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठत ।
लोक एष तिमिरोल्ववेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ।।

कु० स० ८/५६

इस अँधेरे मे उजले और मैले स्थिर और गतिशील, सीधे और टेढे–सभी एक से हो गये है भाड मे जाय ऐसे दुष्टो का राज्य जहॉ भले–वुरे एक ही घाट उतारे जाते हैं।

शुद्धमाविलमवस्थित चल वक्रमार्जवगुणान्वित च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृत धिङ्महत्वमसता हृतान्तरम्।। कु० स० ८/५७

चन्द्रोदय का वर्णन कालिदास ने उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलकारो के द्वारा किया है। कहीं पर पूर्व दिशा रात्रि ओर ताराओ को नासिका के रूप मे तय चन्द्रमा को नासिका के रूप मे तथा चन्द्रमा को नायक के रूप मे मानकर भावमय श्रृडगारिक चित्र खीचा है। चन्द्रोदय वर्णन शिव पार्वती के पक्ष मे सम्भोग श्रृगार का उददीपन है परन्तु चित्रमयता ओर भावेगलता के दृष्टिकोण से यह वर्णन भी श्रोता या पाठक के पक्ष मे आलम्बन रुप ही है। कालिदास ने एक–एक क्षण के परिवर्तन का दर्शन करके उसका विम्बग्रहण कराने का प्रयास किया है। उनके समुचित उपमान इस कार्य मे विशेष योगदान देते है।

अन्धकार हट जाने के पश्चात चमकता हुआ नीला आकाश ऐसा प्रतीत होता है। मानो हाथियो की जल क्रीडा से मटमैला मानसरोवर का जल निर्मल हो गया हो। धीरे धीरे चन्द्रमा का बिम्ब लालिमा त्यागकर उजाला होने लगा। ठीक भी है निर्मल स्वभाव वाले लोगो के हृदय मे यदि कोई दोष आ भी जाय तो अधिक समय तक नही ठहरता। चन्द्रमा का प्रकाश फैलने पर भारतीय दृश्य विषमही रहता है। कवि ने इस दृश्य का भी वर्णन अर्थान्तर न्यास के प्रयोग के द्वारा किया है। यहॉ पर उन्होने मूर्त प्रदायो के लिये अमूर्त उपमान चुने है। कु०स० ८/६६

कालिदास ने महाकाव्य के दृष्टिकोण से चन्द्रोदय का ग्रहण उद्दीपन विभाव के रूप मे किया। परन्तु प्राकृतिक दृश्यो से उनकी इतनी सहानुभूति रहती है कि साधारणतया श्रोता या पाठक के भावो के आलम्बन वन जाते है। उनकी दृष्टि यहॉ पर भी चन्द्रमा और तारो तक ही सीमित नहीं रहती। पर्वत की घाटियो और वृक्षो के दृश्यो का भी समावेश है। कालिदास ने इस प्रकार का चन्द्रोदय वर्णन अपनी मौलिक उद्भावना के आधार पर किया है। परन्तु परवर्ती कवियो ने उद्दीपन विभाव के रूप मे चन्द्रोदय का वर्णन करते समय कालिदास की शैली का अनुकरण किया है।

नवम् सर्ग मे कतिपय श्लोको मे कैलासपर्वत का वर्णन हैं। कालिदास की कल्पनाए यहॉ भी बडी मधुर है। कैलास पर्वत की धवलता की सर्वत्र अभिव्यजना की गयी है। स्फटिक मणि से निर्मित कैलास के भवनो मे जब नक्षत्रो की परछाही पडती है तो सिद्धो की स्त्रियो को यह भ्रम हो जाता है कि कही सम्भोग के समय टूट कर गिरे हुए मोतियो के दाने तो नही है।

निशासु यत्र प्रतिबिम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु।
दृष्ट्वा रतान्तच्युततारहारयुक्ताभ्रम विभ्रति सिद्धवध्व ।। कु स ६/४३

'कुमारसम्भव मे अधिकतर उपमान कालिदास ने प्रकृति के अक्षय कोष से चुने है। मणियो मोतियो और सोने के आभूषण धारण करने पर पार्वती जी का सौन्दर्य और अधिक बढ जाता है जैसे पुष्प निकल आने पर लताएँ और सुन्दर लगने लगती है, तारे निकल आने पर रात जगमगाने लगती है, तथा रग–विरगे पक्षियो के आ जाने से नदी और सुहावनी होने लगती है।[1]

सफेद रग की नयी रेशमी साडी धारण किए हुए पार्वती जी ऐसी प्रतीत होती है, मानो क्षीर समुद की उतारते हुए फेन वाली लहर हो। ७/२६ विवाह के समय पार्वती जी पुरोहित की बॉते बडे चाव से सुन रही थीं। जैसे गर्मी से सतप्त पृथ्वी वर्षा की पहली बूँदे ग्रहण करती है। ७/८४ शकर जी की गोद मे वैठी हुई सोने की लता के समान सुन्दर पार्वती ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो शरत्कालीन बादल के भीतर विजली चमक रही हो (१२/१८) माता पार्वती को कार्तिकेय के छहो मुख ऐसे प्रतीत होते है मानो कमल के एक डण्ठल मे पॉच सुन्दर कमल के फूल खिले हो और उन कमलो की शोभा छठॉ कमल बनकर बीच मे स्थित हो (११/८५) शकर और पार्वती का अपने सहस्त्र नेत्रो से दर्शन कारने वाले देवराज इन्द्र मजरियो से लदे हुए

---

१ कु०स० ६/२१

आम्र के वृक्ष के समान प्रतीत होते है मन की भावनाओ की अभिव्यजना करने के लिये भी उन्होने प्राकृतिक उपादानो की सहायता ली है। जिसे जो वस्तु प्रिय होती है, मरने के बाद भी उस वस्तु की आकाक्षा बनी रहती है। रति शोकाकुल होकर कहती है, वसन्त तुम जब अपने मित्र का श्राद्ध करना चाहते हो तो उन्हे पत्तो वाली आम्र की मजरी अवश्य देना, क्योकि उन्हे आम की मजरी बहुत प्यारी थी।

परलोकविधौ च माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवा।
निवपे सहकारमन्जरी प्रियचूतप्रसवो हिते सखा। कु स ४/३८

प्रेम मे विभोर पार्वती शिव जी से स्वय कुछ न कहकर सखी के द्वारा कहलाती है कि इस विषय मे कन्या के पिता की अनुमति आवश्यक है। इस स्थिति की अभिव्यन्जना भी कालिदास ने प्राकृतिक उपमानो के द्वारा ही की है। ऐसा लगता था, जैसे डाली कोमल की मधुर बोली के द्वारा बसन्त के पास सन्देश भेज रही हो।

तया व्याहृतसदेशा सा बभौ निभृता प्रिये।
चूतयष्टिरिवाभ्यासे मधौ परभृतोन्मुखी।। कु स ६/२

कुमारसम्भव मे उपलब्ध प्रकृति चित्रण की कुछ अशो मे तुलना मिल्टन के महाकाव्य पैराडाइसलास्ट (Paradisclost) से की जा सकती है। कुमारसभव के प्रथम सर्ग के हिमालय वर्णन की ही तरह मिल्टन ने भी अपने महाकाव्य के चतुर्थ अध्याय मे पर्वतीय दृश्य का शब्द–चित्र अकित किया है। चीड देवदार और शाखाओ मे विभक्त ताड के वृक्ष अनोखा जगली दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। जैसे–जैसे ऊपर की ओर इनकी छायाएँ घनीभूत होती जाती थी लगता था, जैसे (प्रकृति की गोद मे) वनो की शानदार रगशाला स्थिति हो।[1]

---

1 Paradise Lost Book IV Lines 130-42

कुमारसम्भव मे शिव और पार्वती के मधुर दाम्पत्य जीवन की तुलना (Paradise lost) मे वर्णित ओर इव के मधुर दाम्पत्य जीवन से की जा सकती है इस स्थान पर मिल्टन का भी प्रकृति चित्रण आकर्षण है। प्रात कालीन सुषमा फैली है। शस्यश्यामला भूमि मानो इव को जगाने के लिए आह्वान सा कर रही है। रूर्य के अरूण प्रकाश से सबधित रगीन छटा सर्वत्र बिखरी है। भौरे पुरूषो से मकरन्द सचित करने मे सलग्न है। स्वर्ग और प्रकृति मे वस एक ही आकाक्षा है, वह है इव के सौन्दर्य का दर्शन करना।

कालिदास की औषधिप्रस्थपुरी के समान मिल्टन के उद्यान का स्वर्गीय सुषमा का काल्पनिक वर्णन किया है । प्रकृति युवती नारी के समान अपने उद्दाम सौन्दर्य भाव का एडेन के उद्यान मे विखेर रही थी। लगता था उसे प्रकृति रूपी नायिका की कौमारावस्था की मधुर कल्पनाए यहॉ स्वेच्छापूर्वक विहार कर रही है।

इसी प्रकार अन्य महाकाव्यो से भी असगत तुलना सम्भव हो सकती है परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि कालिदास अपने स्थान पर अतुलनीय है। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन जिस सहानुभूति और तन्मयता के साथ बाल्मीकि और कालिदास ने किया है वैसा भारत का अन्य कोई कवि नहीं कर सका। कुमारसम्भव और शाकुन्तल मे भारत की प्रकृति लक्ष्मी मुखर हो उठी है। पार्वती और शकुन्तला के रूप मे लगता है हम उसके साकार स्वरूप का दर्शन कर रहे हैं। वस्तुत कालिदास के काव्य सौन्दर्य और नाटकीय प्रतिभा को देखकर मुग्ध हुआ जा सकता है परन्तु ऐसा कोई मापदण्ड नहीं दीख पडता जिससे उन्हे मापा जा सके।

मेघदूत

कालिदास प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी सूक्ष्मदृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यो को सावधानता से हृदयगम किया था। मेघदूत मे

कालिदास ने वाह्य प्रकृति एव अन्त प्रकृति दोनो का ही सूक्ष्य मार्मिक चित्रण किया है। वाह्य प्रकृति के प्रति कवि का अनन्य अनुराग है। कालिदास प्रकृति के सूक्ष्म दृष्टा है प्रकृति के प्रवीण चितेरे। उन्होने अपने ग्रन्थो मे तन एव पुण्यो का अद्वितीय वर्णन किया है। कालिदास की प्रकृति भी जीवन के रपन्दन के साथ–साथ सजीव प्रतीत होती है और नित्य मनुष्य को नवीन शक्ति प्रदान करती है। सम्भवत ससार मे कोई ही ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने सजीव प्रकृति का इतना पूर्ण एव सूक्ष्म अध्ययन किया हो जितना कि कालिदास ने किया हे उनमे मानव **'हृदय का कवि'** और **'प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि'** ये दोनो गुण एक साथ विद्यमान है।

कालिदास ने प्रकृति को आलम्बन उद्दीपन, मानवीकरण एव अलकारिक आदि रूपो मे चित्रित किया है। प्रतिभा के विकास के साथ–साथ कालिदास ने प्रकृति वर्णन मे विकास हुआ है। पूर्वमेघ वाह्य प्रकृति का ही मनोहर रूपभोजनात्मक चित्रण है।

वर्षा ऋतु और उसमे होने वाली प्राणियो की विविध उत्कण्ठाओ का जैसा चित्रण मेघदूत है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मेघ के आगमन से विरही यक्ष उत्कठित होकर प्रिया के प्राण धारण के लिये सदेश भेजने के लिये आतुर हो उठता है। पर्वत उसके आगमन से पुष्पित कदम्बो के रूप मे पुलकित हो उठता है। भोली ग्राम बधुये उसे उत्सुकता से देखती है और चतुर पौर वधुये उसे अपने चञ्चल कटाक्षो का विषय बनाती है। वर्षा ऋतु मे मानस के लिए उत्सुक हस उसके सहपात्री बन जाते है और गर्भाधान के लिये उत्सुक वलाका उसका सेवन करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि मेघोदय पर होने वाला कोई ऐसा प्राकृतिक परिवर्तन नही है, जिसकी ओर कवि का ध्यान न गया हो। मेघदूत मे प्रकृतिवर्णन मे कई स्थल है जिन पर उत्कृष्ट कोटि के चित्र बनाये जा सकते है। उदाहरण के लिये मानस की ओर जाने वाले हसो का कैसा विशद चित्र दिया गया है।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्या।
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगगर्जित मानसोत्का।
आकैलाशाद् विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्त
सपत्स्यन्ते नभसि भक्तो राजहसा सहाया।। पूमे ११

कालिदास ने प्रकृति को मानव के साथ स्निग्ध सम्बन्ध स्थापित करते हुए चित्रित किया है। प्रकृति की मानक के सुख दुख मे सहानुभूति प्रकट करती हुई मानव हृदय एव प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया गया है इस विचार कोण के प्रकृति चित्रण मे कालिदास की भावुकता सूक्ष्मदर्शिता एव सहृदयता प्रकट होती है। परिणाम स्वरूप कालिदास का प्रकृति चित्रण इतना सजीव एव मर्म स्पर्शी है कि जनमत हठात् भाव विभोर हो जाता है द्रवित हो जाता है।

प्रकृति मे मानवीय भावनाओ का आरोप करते हुए कवि मेघ से कहता है कि तुम रामगिरि से विदाई लो। यह तुम्हारे वियोग मे गर्म ऑसू बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है। मेघ और पर्वत का सौहार्द कितना मनोरम है।

आपृच्छस्व प्रियसखममु तुङ्गमालिङ्ग्य शैल
बन्द्यै पुसा रघुपति पदैरङ्कित मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य सयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहज मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।। पूमे १२

मित्र का सदा ध्यान रखने वाला यक्ष मेघ के मार्ग मे विश्राम करते हुए नदियो का जल ग्रहण करते हुए यात्रा करने का परामर्श देता है।

खिन्न खिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीण क्षीण परिलघु पय स्रोतसा चोपभुज्य।। पूमे १३

स्थान—स्थान पर मेघ को प्रेमी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। उसे प्रेमिका (नदी) को सान्वित करने का आदेश भी दिया है।

छन्नोपन्त परिणतफलद्योतिभि काननाम्रै
स्त्वय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धवेणीसवर्णे।
नून यास्यत्मरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्था
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तारपाण्डु।। पूमे १८

तरडगो के चलने से शब्द करते हुए की पक्षियो की पक्ति रूपी करधनी ताली स्खलन के कारण सुन्द रूप मे कहने वाली तथा भॅवर रूपी नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी के मार्ग मे पहुचार जल से पूर्ण मध्य भाग वाले हो जाना, क्योकि स्त्रियो की प्रेमियो के प्रति श्रृडगार चेष्टा (हाव—भाव) ही प्रथम पुण्य वाक्य होता है।

निर्विन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तर सन्निपत्य।
स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु।। पूमे /२६

पवन को भी प्रार्थनाचाटुकार प्रणयी के रूप मे वर्णित किया गया है।

यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमडगानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ।। पूमे ६/३२

उज्जयिनी मे प्रात काल मे सारसो के तीव्र मद से अत्यन्त मधुर कूजन को अधिक बढाता हुआ खिले हुए कमलो की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित। अडगो को सुख देने वाला शिप्रा नदी का पठन, याचना के मीठे वचन बोलने वाले प्रियतम के समान स्त्रियो की सम्भोग की थकान को दूर सकता है।

मेघ मे मानव दुर्बलताओ, अभिलाषाओ का आरोप कितना चमत्कारी बन गया है।

तस्या किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाख।
हत्वा नील सलिलवसन मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थान ते कथमपि सखे। लम्बमानस्य भावि।
ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ ।। पू मे ४५

प्रकृति–सुन्दरी के सौन्दर्यात्मक कालिदास अमूर्त को मूर्त रूप देने मे पटु है। उन्होने नदियो को स्वाधनिर्यातका तथा मेघ एव पर्वतो को दक्षिण अनुकूल नायक के रूप मे बडे चमत्कारपूर्ण ढग से उपस्थित किया है। प्रकृति के साधारण उपादानो नदी पहाड आदि के हाथो मे महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिये है। प्रकृति मे भी होड है। अलका के भवन मेघ के कम सुन्दर नही है। मेघ मे बिजली है इन्द्रधनुष की रम्यता है मनोहर गर्जन है जल है और उच्चता है तो अलका के भवनो मे सुन्दरिया है मनोहर चित्र है। कवि की कल्पना का मनोज्ञ दृष्टान्त है।

विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा ।
सङ्गीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गमृमभ्रिलहाग्रा
प्रसादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेष ।। उ मे १

उत्तरमेघ का आरम्भ कवि के अलकापुरी के वर्णन से करता है। इसके वर्णन से करता है। इसके वर्णन प्रसग मे कवि ने एक ही छन्द मे छहो ऋतुओ के ऐसे छह चित्र उपस्थित किये है, जो देखते ही बनते है।

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्ध
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री ।
चूडापाशे नवकुरवक चारू कर्णे शिरीष
सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम्।। उ मे २

अलका की सुन्दरियो के हाथो मे लीलाकमल (घ्राणमूलक चित्र)

(शरद् ऋतु) है खुली चोटी के अत मे कुन्द कली गूँथी हुई (हेमन्त) मुह की शोभा लोध्रपुष्प के पराग से पीली सी हो गयी है (शीत) केशपाश मे कुरवक कुसुम गुम्फित है (बसन्त) कानो मे मनोहर शिरीष के फूल झूल रहे है (ग्रीष्म) और केशवीथि (माग) मे मॅगटीका की तरह) कदम्ब के फूल है (वर्षा)।

इस प्रकार अलका मे षडऋतुओ की निरन्तर अवस्थित की विलक्षण कल्पना को बडी निपुणता से साकारता दी गयी है।

मेघदूत मे प्रकृति मे सहानुभूति की भावना का भी मनोरम आरोप किया गया है। यहा की करूण दशा को देखकर प्रकृति भी उसके प्रति सम्वेदना प्रकट करती है। जब यक्ष स्वप्न मे अपनी प्रियतमा का आलिगन के लिये शून्य आकाश मे भुजाए फैलाता है तो वनस्थली देवताओ के नेत्रो से मोटे मोटे आसू ढलक पडते हैं।

मामाकाशप्रणिहितभुज निर्दयाश्लेषहेतो—
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसदर्शनेषु।
पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवताना
मुक्तास्थूलास्तरूकिसलयेष्वश्रुलेशा पतन्ति।। उ मे ४६

इसके अतिरिक्त अलका के सदैव खिलने वाले फूलो एव भौरो के गुञ्जन से युक्त वृक्षो हसो की कतारो से घिरी कमलिनिओ चकमने वाले पखो से युक्त तथा कलरव करने वाले मयूरो एवम् अन्धकार से रहित धवल चन्द्रिकामयी रजनियो का सुन्दर वर्णन किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण मेघदूत प्रकृति के भव्य चित्रो से भरा हुआ है। मेघदूत मे कवि ने प्रकृति एव मनुष्य को एक नवीन एव मौलिक ढग से परस्पर जोड दिया है। मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन के सग्रथन को एक आवश्यकता और एक आनन्द के रूप मे चित्रित किया गया है।

आर ई रोबिन्सन का कथन कितना सटीक है उनकी आखे पारदर्शी प्रिज्म के समान जीवन के सभी गहरे चमकीले रगो को पहचान लेती थी और उसका मस्तिष्क कलाकार की रग मिलाने वाली पटरी के समान उन्हे ग्रहण कर रत्नोपम सौन्दर्य के चित्रणो मे अनूदित कर देता था।

"His eyes singled out like a prism all the rich, glowing tints of life's colours and his recieving them, as if had been palette translated them into description of Jewel like beauty "

कालिदास ने प्रकृति को अनेक रूपो मे चित्रित किया है। उनके अनुसार प्रकृति मानव की चिरन्तन सहचरी तथा उसके स्वस्थ सरस एव मौलिक जीवन के लिये अपरिहार्य है। यद्यपि कालिदास को प्रकृति कोमल रूप ही अधिक प्रिय रहा है फिर भी उनको इस क्षेत्र तक ही सीमित रखना उनके साथ अन्याय होगा। यदि उन्हे प्रकृति का कवि कहा जाये तो असगत न होगा।

इस प्रकार मेघदूत सस्कृत साहित्य का जाज्वल्यमान हरिक है जिसकी प्रभा समय के प्रवाह से और अधिक बढती जाती है। वह बडी ही मागलमय घडी थी जब महाकवि कालिदास ने इस अमर काव्य की रचना की थी। वाहृय प्रकृति का मनोरम झॉकी प्रस्तुत करने मे तथा अन्तस्थल मे सन्तत उदय होने वाले भावो के चित्रण मे यह काव्य अपनी तुलना नहीं रखता है।

इस प्रकार लघुत्रयी के ग्रन्थो के प्रकृति वर्णन मे कालिदास ने रूढियो (परम्परा) का निर्वहन करते हुए अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

महाकवि कालिदास ने लघुत्रयी के ग्रन्थो मे लोकोक्तियो के प्रयोग मे रूढियो (परम्परा) का निर्वहन किया जिसका निम्नलिखित उद्धरणो से पुष्ट हो रहा है।

लोकोक्तियो का प्रयोग

कवि अपने काव्य मे जीवन की प्रत्येक परिस्थिति की सौन्दर्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करता है। हमारे जीवन की घटनाओ से सम्बन्धित लोकोक्तिया अपने सहज रूप मे वस्तु या घटनाओ की स्वाभाविकता को अभिव्यक्त करती है। कवि विभिन्न माध्यमो से अपने कथ्य को सहजता प्रदान करता है। जब वह प्रचलित लोकोक्तियो का आश्रय लेकर किसी भी वस्तु की मीमासा प्रस्तुत करता है तब वस्तु की गम्भीरता इतने सहज रूप मे उपस्थित हो जाती है कि साधारण पाठक भी वस्तु के आन्तरिक सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है। कालिदास ने लोकोक्तियो के माध्यम से विषय को इतना सहज और आकर्षक बना दिया है कि विषय अपनी अमिट छाप छोड जाता है।

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान्मतो मे।
छाया हि भूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभि ।।

रघु १४/४०

राम की दृष्टि मे सीता पवित्र है। राम मन मे सीता का निर्वसन नही चाहते है। यदि सीता का निर्वासन करते है तो पवित्रता को पायानल मे झोकते है यदि सीता का निर्वासन नहीं करते है तो उन्हे लोक निन्दा के दावानल मे जलना पडेगा। ऐसी विषम परिस्थिति मे लोक प्रचलित सिद्धान्त लोकापवाद बलवान् होता है। उन्हे अवलम्बन देता है और उन्हे चन्द्रमा की निष्कलङ्कता और लोक मान्य कलङ्कता की प्रवलता के पृष्ठो को उलटना पडता है।

विललाप स वाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु ।। रघु ८/४३

अज इन्दुमती की मृत्यु से विचलित होकर विलाप करने लगते है। कवि ने लोकोक्ति 'तपने पर तो लोहा भी पिघल जाता है– के द्वारा उनके रूदन के औचित्य को हृदय द्रावक बना दिया है। लौह कठोर एव जड होता है। मनुष्य का हृदय लौह एव पुष्प दोनो होता है। असह्य कष्ट के अनल मे लौह हृदय भी पिघल जाता है।

रोग की दवा होती है मृत्यु की नही।[1] इस लोकोक्ति ने अज को किचित धैर्य प्रदान किया है वही पर उन्हे सत्यता का भान भी कराया है। 'सोने की परख आग मे होती है।[2] इस लोकोक्ति ने कालिदास के काव्य को वह श्रेष्ठता प्रदान की जिसका आकलन साधारण व्यक्ति नही कर सकता।

सॉप के बिल मे कौन हाथ डाल सकता है ? इस लोकोक्ति को कालिदास ने अत्यन्त उचित अर्थ की सिद्धि के लिये प्रयोग किया है।

अलभ्यशोकाभिभवेय माकृतिर्विमानना सुभ्रु। कुत पितुर्गृहे।
पराभिमर्शो न तवास्ति क कर प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये।।
कु स ५/४३

मणि के लोभ मे कौन है, जो सर्प के ऊपर हाथ डाल सकता है। इस अप्रस्तुत विधान को लोकोक्ति के रूप मे उपस्थित होकर पार्वती के अद्वितीय सौन्दर्य की अपरमित शक्ति को अभिव्यक्त करता है। एक अन्य लोकोक्ति 'कुआ प्यासे के पास नही जाता है– 'कालिदास के सुन्दर शब्दो मे उपस्थित होकर–रत्न किसी को नहीं ढूँढता है वरन् वहॉ ढूँढा

---
१ प्रतिकारविधानमायुष सति शेषे हि फलाय कल्पते। रघु ८/४०
२ हेम्न सलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि श्यामिकाऽपि वा।। रघु १/१०

जाता है।[1] पार्वती को कन्या रत्नत्व को प्रमाणित कर उसके अलौकिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है।

छूछा को कौन पूछा अथवा अधजल गगरी छलकत जाय भरी गगरिया चुपके जाय लोकोक्ति को कालिदास ने अत्यन्त सुन्दर अभिव्यञ्जना प्रदान करते हुए बताया कि रिक्तता लघु होती है पूर्णता गौरवान्वित करती है।[2] जादू सिर पर चढकर बोलता है लोकोक्ति को कालिदास ने सुन्दर रूप मे— अग्नि वही है जो तृण की भाति पानी मे प्रज्वलित हो प्रयुक्त होकर परशुराम के अद्वितीय शौर्य को अभिव्यक्त करती है।[3] कालिदास ने अपने काव्यो मे इस प्रकार के अनेक प्रयोगो से रचना को अत्यन्त सहज और आकर्षक बनाया है।

---

१ 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् कु स ५/४५

२ 'रिक्त सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गौरवाय पू मे १०

३ पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्जवलति सागरेऽपि य। रघु ११/६५
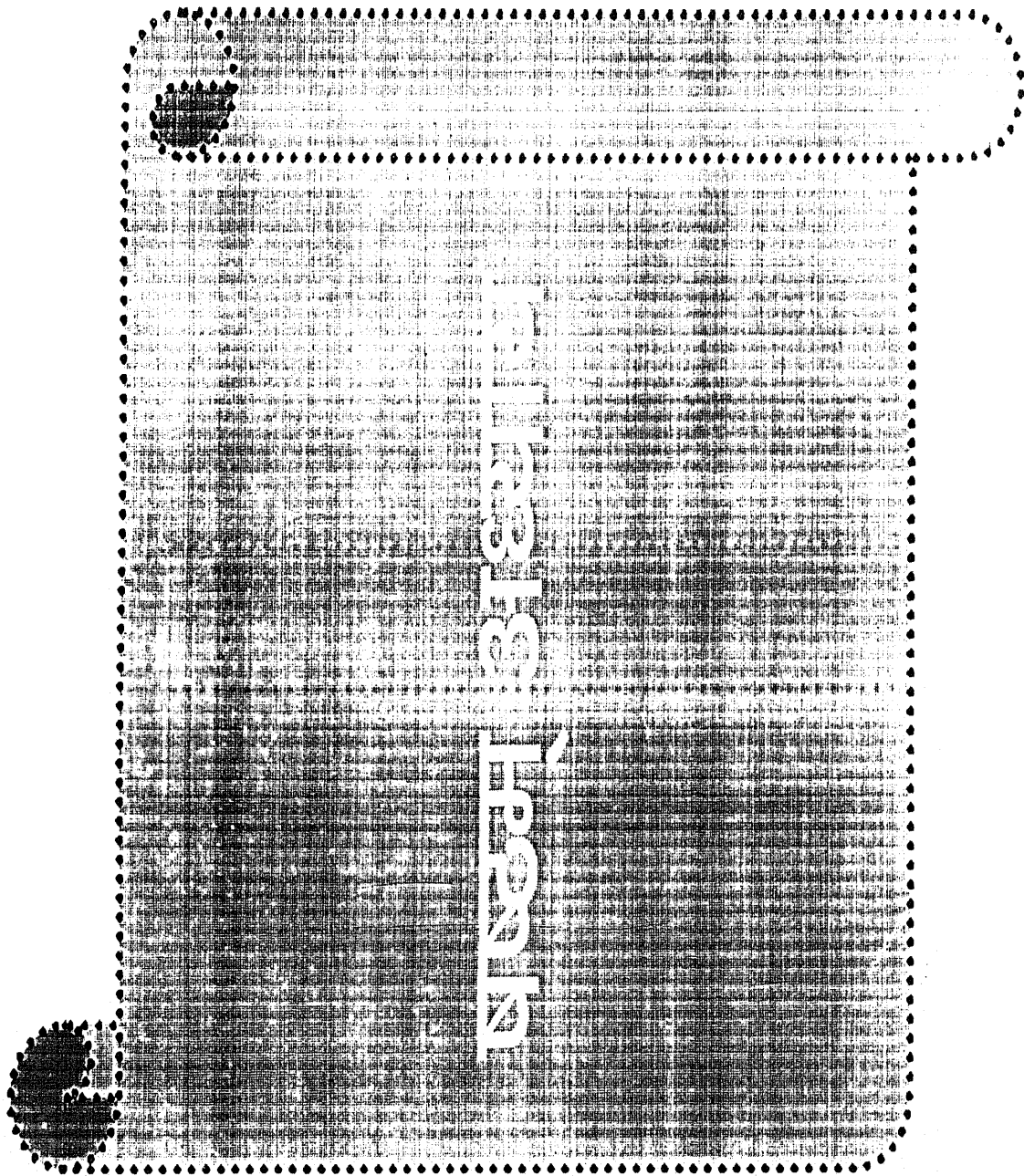
षष्ठम् अध्याय

कालिदास के काव्यसौन्दर्य की विशेषता

सौन्दर्य सर्जना की केन्द्र–बिन्दु है जिसके अस्तित्व ने ही चित् और अचित् तत्व को एकरूपता प्रदान की है। प्रकृति और चेतन की एकरूपता सौन्दर्य की अनुभूति का प्रतिफलन है। भारतीय चिन्तन की परिणति चित् तत्व के सौन्दर्य का साक्षात्कार या परमभोग है। बालक की सम्पूर्ण नग्नता से भी सौन्दर्य का रस छलकता रहता है। उसका या रमणी का यौवन आवरण से आवृत्त होकर जिस सौन्दर्य की अनुभूति कराता है, वह सर्जना की दिव्यता को मूर्त रूप देती है। सर्जनात्मक क्षमता के सकेत बन जाने पर सौन्दर्य की वासन्ती सुषमा ग्रीष्म की लौ मे झुलस कर राख बन जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति गतिशील इसलिए है कि वह सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिए व्याकुल है। व्यक्ति की अभिरूचि से सौन्दर्य का विषय भिन्न–भिन्न हो सकता है किन्तु सौन्दर्य की अनुभूति पर प्रश्न–चिन्ह नही लगाया जा सकता है। सौन्दर्य की अनुभूति को वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करना सरल काम नही है। सौन्दर्य वासनात्मक रूप को अपने मे समाविष्ट कर व्यक्ति को उस आनन्द के रस मे मज्जित करता है जिसका केवल अनुभव मात्र किया जा सकता है। सौन्दर्य क्या है ? व्यक्ति क्यो इसे चाहता है ? प्रश्न सरल होते हुए भी जटिल है। साधारण अर्थ मे सौन्दर्य रूप के रूप मे उपस्थित होकर दृष्टि का विषय बनता है। व्यक्ति की अभिरूचिया प्रकृति के भिन्न–भिन्न अर्थो को सौन्दर्यात्मक चेतना प्रदान करती है। किसी को हिमालय की शोभा आह्लादित करती है तो किसी को नदी की चचल तरगे तो किसी को वासन्ती साडी मे लिपटी हुई प्रकृति के विभिन्न रूप और चेष्टाए।[1] लेकिन

---

१ नाऽसौ न काम्य न च वेद सम्यग्द्रष्टु न स भिन्नरूचिर्हिलोक। रघु ६/३०
अनन्त पुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसड्गा। कुस १/२७

सम्पूर्ण सौन्दर्य बोध मे वस्तु की समग्रता ही समाहित रहती है। पुष्प का रग सुन्दर लगता है, न उसकी पखुडिया न केवल वृत्त न उसका सौरभ ही। उसकी समग्रता ही सौन्दर्य की सृष्टि करती है। किसी रमणी का मुख इसलिए नही सुन्दर है कि उसकी आखे नाक अधर का दन्तपक्ति अलक मात्र ही सुन्दर है वरन् उनके समग्र अवयवो का सन्तुलन विकासात्मक परिपूर्णता पारदर्शिता आकार आदि की समरूपता आदि का समग्र रूप ही सौन्दर्यात्मक रूप प्रदान करता है। शिशु के सौन्दर्य, रमणी के सौन्दर्य प्रकृति के सौन्दर्य आदि मे सौन्दर्यात्मक अनुभूति तो रहती है लेकिन सभी के अनुभाव के अन्तर को नकारा नही जा सकता है। वस्तु की समग्रता जब सौन्दर्य की अनुभूति कराती है, उस क्षण यह आवश्यक नही है कि उसके समग्र रूप का ही मादक प्रभाव चित्त को आहूलादित करता है उसका कोई एक अवयव ही सम्पूर्ण चेतना को ऐसे मोहात्मक रग मे रग देता है कि व्यक्ति उस रग से मुक्त नही हो पाता है। फिर भी सम्पूर्ण सत्ता से पृथक् होकर उसके सौन्दर्य की कल्पना नही की जा सकती है। किसी मूर्ति या वाद्य के सगीत का एक अवयव पृथक रूप से सौन्दर्य की अनुभूति नही करा सकता है वरन् उसका समग्र रूप ही सौन्दर्यात्मक जादू से व्यक्ति के चित्त को आह्लादित करता है।

वस्तु का अपना जैसा सौन्दर्य है वैसा ही व्यक्ति को प्रतीत नही होता है व्यक्ति की कल्पनाए और वासनाए उसके सौन्दर्य को और सुन्दर बना देती है। यही कारण है कि सौन्दर्यात्मक अनुभूति वस्तुगत और आत्मगत के मिश्रण का प्रतिफल है।[1] मनुष्य की इच्छा शक्ति और वासना वस्तु को एक नया रूप प्रदान करती है। व्यक्ति की कल्पनाए ही उसे किसी एक सौन्दर्यपाश मे बधने नही देती है। सौन्दर्य की सापेक्षता ही व्यक्ति को चचल बनाती रहती है। प्रकृति की सम्पूर्ण कमनीयता को व्यक्ति एक ही स्थल मे देखना चाहता

---

१ यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी।
कुमाराणामन्त करण हरण नैव कुरूते।। नैषध २२/२५२

है। यदि सम्पूर्ण सौन्दर्य एक स्थान पर देखने को मिल भी जाए तो उसकी कल्पना तृषित ही रहती है। कालिदास का यक्ष अपनी प्रिया मे प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य का अन्वेषण करता है किन्तु उसकी कल्पना वन्ध्या रह जाती है। उसकी कल्पना तो उस सौन्दर्य--रसपान के लिए व्याकुल है जो सम्पूर्ण ससार मे अनुपलब्ध है केवल उसकी प्रिया मे सम्भावना इसलिए की जा सकती है कि उसकी दृष्टि मे उसकी प्रिया विधाता की निराली सृष्टि है।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणाभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ।। उ मे २२

इस श्लोक मे यक्ष–प्रिया के अङ्ग मे प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य का विलास समाहित है। पार्वती के सौन्दर्य वर्णन के अवसर पर कालिदास की कल्पना प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य को पार्वती के शरीर मे एकत्र रूप मे देखना चाहती है, इसलिए उसने लगभग बीस श्लोको मे पार्वती के सौन्दर्य को प्रकृति के सारे सुन्दर तत्वो से चित्रित किया है। कालिदास की पार्वती सम्पूर्ण सुन्दर वस्तुओ के सयोजन से बनी हुई है, इसलिए वह विधाता की अलौकिक सृष्टि है–

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नात् एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।

कु स १/४६

मानवीय कल्पना की सीमा नही होती है। उसका प्यासा मन न जाने किस सौन्दर्य–रस के पान के लिए व्याकुल रहता है। इसीलिए तो कालिदास की अतृप्त कल्पना यक्ष के स्वर मे कह उठती है–

श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्तच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषुकेशान् ।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्हन्तैक–
स्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।। उ मे ४६

कालिदास का सौन्दर्य– बोध जागतिक सौन्दर्य से पृथक् है। ससार की प्रत्येक वस्तु का मूर्त या अमूर्त सौन्दर्य एक सत्ता को प्राप्त है किन्तु मानवीय चेतना उस सौन्दर्य से परितृप्त नही है अत प्रकृति के विराट् सौन्दर्य को मानवीय कल्पना एक क्षण मे विद्रूप बना देती है वह तो उस सौन्दर्य का रसपान करना चाहती है जहॉ उसकी कल्पनाओ और वासनाओ को पूर्ण तृप्ति मिल सके। कालिदास का यक्ष व्यक्ति की सौन्दर्य–पिपासा को अभिव्यक्त करता है। जो है वही ही सम्पूर्ण नही है, उससे इतर एक ऐसा सौन्दर्य है जो व्यक्ति को आन्दोलित करता है, वह कैसा है, वह उसे ज्ञात नही है किन्तु फिर भी उसे प्राप्त करना चाहता है। एक सौन्दर्य व्यक्ति को तृप्त करता है किन्तु उससे उत्कृष्ट सौन्दर्य की पिपासा उसे व्याकुल करती रहती है। सौन्दर्य का एक पक्ष हमारे चित्त को आन्दोलित करता है हमारी वासना को जगाकर व्याकुल भी करता है। एक अदृश्य शक्ति व्यक्ति को सर्वदा विभिन्न प्राकृतिक सौन्दर्य मे उपस्थित कर सर्वदा आन्दोलित करती रहती है। जब व्यक्ति चित् के सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी कल्पना पूर्णता को प्राप्त कर लेती है। चित् या चेतन के आवरण के सौन्दर्य यद्यपि आह्लादक है किन्तु पूर्ण आनन्द की अनुभूति नही कराते वे केवल अल्पकाल के लिए हमारे चित्त के मल को दूर कर चेतन के सौन्दर्य की झाकी मात्र प्रस्तुत करते हैं। अनन्त सौन्दर्य की परमकाष्ठा, जो चित्त के आवरण से आच्छादित है, उसका आभास मात्र व्यक्ति को सर्वदा अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है। इसलिए सच्चे सौन्दर्य प्रेमी को जब तक चेतना के सौन्दर्य का साक्षात्कार नही होता तब तक उसे ढूँढता रहता है।

जहॉ तक दृष्टि जाती है, वहॉ सर्वत्र प्रकृति का विकासात्मक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। बिना साधना अथवा तपस्या के सौन्दर्य का

शिवत्व प्राप्त नही होता है। कालिदास के कुमारसम्भव मे काम असमय मे ही प्रकृति को वासन्ती सुषमा की मनोहारिणी साडी पहना देता है। उसके सम्पूर्ण अगो से सौन्दर्य की रसधारा बहने लगती है किन्तु एक क्षण मे सम्पूर्ण रसधारा सूख जाती है जबशिव का भक्त नन्दी केवल उगली से सकेतमात्र करता है। सौन्दर्य का देवता काम भी काप जाता है। सम्पूर्ण चचल सौन्दर्य चित्रलिखित हो जाता है।[1] किन्तु पार्वती का सस्कृत अथवा पवित्र सौन्दर्य काम को अवलम्बन देता है। सभी सौन्दर्य शिव के मानस मे हलचल उत्पन्न तो करते है किन्तु उन्हे अभिभूत नही कर पाते है। यही कारण है कि शिव एक क्षण मे ही सौन्दर्य के देवता काम को जलाकर नष्ट कर देते है। यही पर पार्वती का वह सौन्दर्य जिसका निर्माण प्रकृति के सम्पूर्ण तत्वो से हुआ है परम सौन्दर्य के शिवत्व–रूप से पराभूत हो जाता है। पार्वती को परमसौन्दर्य की प्राप्ति तभी होती है जब तपस्या की अग्नि मे अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को सुन्दर रूप प्रदान करती है।

काव्य भी वाह्य जगत् का न प्रतिबिम्ब है न उससे पृथक् । कहने का आशय यह है कि काव्य न वाह्य जगत् से असम्पृक्त होता है, न उसकी अनुभूति ही। कवि की कल्पनाए और वासनाए वाह्य जगत् को एक नूतन सौन्दर्य प्रदान करती है। कवि की कला अन्य कलाओ से श्रेष्ठ होती है। अन्य कलाओ मे वाह्य जगत् का अधिकाश सौन्दर्य को अपने कलात्मक ढाचे मे ढालकर अलौकिक बना देती है। कवि की वासना जिस सौन्दर्य को नूतन रूप प्रदान करती है उसका साक्षात्कार पाठक भी उसी मनोयोग से करता है अथवा उससे अधिक या कम। इस अनुभूति मे उसकी वासनाओ के उद्‌बोध की कारणता को अस्वीकृत नही किया जा सकता है। इस प्रकार काव्य वाह्य जगत् को नये रूप मे प्रस्तुत करता है और पाठक भी या तो कवि से तादात्म्य स्थापित कर या तो उसके समान ही आनन्द की अनुभूति

---

१ निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रर्पितारम्भमिवावतस्थे।। कु स ३/४२

कराता है, अथवा अपनी वासनाओ के वैशिष्टय के कारण कवि से भी अधिक आनन्द की अनुभूति करता है। इस प्रकार प्राकृतिक तथ्य काव्य के रूप मे उपस्थित होकर नित्य नूतनता की सर्जना करता रहता है और सौन्दर्य का भी यही रहस्य है कि वह क्षण—क्षण नवीनता की सर्जना करता रहे।

क्षण—क्षण नूतनता की अनुभूति का कारण वासनाओ की सुकुमारता सुन्दरता तथा उसकी उद्‌बुद्धता है। कवि की कल्पना या वासना की विराट्ता सम्पूर्ण प्रकृति के सौन्दर्य को नया रूप प्रदान करने के लिए व्याकुल रहती है।

आवर्जिता किचिदिव स्तनाभ्या वासो वसाना तरूणार्करागम्।
पर्याप्त पुष्पस्तबकावनमा सचारिणी पल्लविनी लतेव। कु स ३/५४

प्रकृति की सुषमा पल्लविनी लता मे ही देखी जा सकती है। प्रकृति की पल्लविनी लता मे जडता है अत उसमे सचरणशील का अभाव है। कवि को यह सौन्दर्य प्रिय नही है उसकी सौन्दर्यात्मक वासना तो उस पल्लविनी लता को सौन्दर्य को देखना चाहती है जो पर्याप्त पुष्प के भार से नम्र (झुकी) हो तथा सचरण कर रही हो। पुष्प—भार से झुकी हुई लता मे सचरण (सम्यक गमन, विलासात्मक गमन) की शक्ति आ जाय, प्रकृति की अपूर्ण सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त हो जाए। यही है कवि—सौन्दर्यात्मक वासना जो प्राकृतिक सौन्दर्य को भी नये रूप मे देखना चाहती है।

सौन्दर्य तो वह है जो शत—शत आखो को निर्निमेष बनाकर व्यक्ति की सम्पूर्ण चेतना को अपने मे समाहित कर ले और व्यक्ति केवल चेतना—रहित शरीर वाला बना रहे।

तस्मिन्विधानातिशये विधातु कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्त करणैर्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवलमासनेषु।। रघु ६/११

इन्दुमती के सौन्दर्य को देखकर सभी नृपति देहमात्र से ही अपने—अपने आसन पर स्थित रहे। देह केवल जड वस्तुओ का चयनात्मक रूप है। कवि

का देह शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि सौन्दर्य सम्पूर्ण चेतनता को शरीर से आकृष्ट कर लेता है। शरीर केवल हाड–मास का उपचय मात्र रहता है। इस प्रकार का सौन्दर्य भले ही लोक मे देखने को न मिले किन्तु कवि की कल्पना तो सृजन की अनन्ता को एक नया रूप देती रहती है।

रवीन्द्रनाथ का कहना है कि नारी तुम केवल विधाता की सृष्टि नही हो पुरूष ने अपने अन्तर के सौन्दर्य को सचित करके तुम्हे गढा है। वही से सोने के उपमा–सूत्र लेकर कवियो ने तुम्हारे लिए वस्त्र बुना है, शिल्पी ने तुम्हे नयी महिमा देकर तुम्हारी प्रतिभा को अमर बनाया है। तुम्हारे ऊपर प्रदीप्त वासना (की दृष्टि) पडी है। तुम आधी मानवी हो, आधी कल्पना हो।[१]

जागतिक पदार्थो की भाषा की गहनता का ज्ञान यदि हो जाय तो प्राकृतिक रहस्यो का किचित् आभास मिल जाय, प्राकृतिक सौन्दर्य व्यक्ति को इतना अभिभूत कर देता है कि व्यक्ति उसकी भाषा के गहनतम अर्थो को ठीक से समझ नही पाता है उसके वाह्य रूप को ही एक अर्थ मानकर उसी के साथ बहता चला जाता है। प्रकृति के कण–कण मे प्रत्येक स्पन्दन मे, प्रत्येक आवर्तन और स्खलन मे प्रत्येक सिहरन और चितवन मे काव्य की भाषा छिपी रहती है, जिसका बोध मनुष्य को नही हो पाता। मनुष्य की अन्तश्चेतना ज्यो–ज्यो विमुक्त होने लगती है, वह प्रकृति के सौन्दर्य की भाषा का अर्थ जानने लगता है और उसकी वासना उसके साथ अन्तर्भूत होकर विराट् सौन्दर्य की सृष्टि कर उसके अपरिमित रस मे विभार हो जाती है।

मनुष्य की लोकभाषा अथवा काव्य–भाषा समर्थ होकर भी बहुत से अनुभावो को अभिव्यक्त नही कर पाती है। काव्य की भाषा अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियो का आश्रय लेकर निरतिशय सौन्दर्य की सर्जना के लिए व्याकुल रहती है। इसी निरतिशय सौन्दर्य की अभिव्यक्तियो के परिप्रेक्ष्य मे सस्कृत साहित्य के आचार्यो ने रसात्मवाद ध्वनिवाद, लोकोत्तर आह्लाद् –

---

१ कालिदास की लालित्य योजना, पृ ११४

रमणीयतावाद या लोकोत्तर चमत्कारवाद की स्थापना की है। भरतमुनि और भामह से लेकर पण्डित राज जगन्नाथ तक आचार्यों ने काव्य के सौन्दर्य–बोध को अपने–अपने ढग से समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इस लम्बी–विवेचना मे शब्द और अर्थ के विविध सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन को अनेक आयाम देकर उनके सौन्दर्य और उनसे अभिव्यक्त होने वाले सौन्दर्य का विलास अन्तर्निहित है।

भारतीय आचार्यों मे भामह ने काव्य–सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए अलङ्कार का आश्रय लिया है। अलङ्कार वस्तु के नैसर्गिक सौन्दर्य को उद्घाटित कर उसे लोक–प्रत्यक्ष का विषय बना देते है। इनकी दृष्टि मे वक्रोक्ति के बिना अलङ्कार की सम्भावना आकाश–कुसुम के तुल्य है।[१] भामह का कान्तामुखी दृष्टान्त सौन्दर्य के दो स्वरूप शब्द और कवि–कौशल (अर्थात् अलकार–योजना) को अभिव्यक्त करता है। कवि–कौशल अलङ्कार–प्रयोग मे सन्निहित है इसी के द्वारा मूल–वस्तु का सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है।

आचार्य दण्डी की दृष्टि मे अलङ्कार काव्य की शोभा को प्रस्तुत करने वाले धर्म हैं। इनकी अलङ्कार–योजना जहॉ एक ओर शब्दार्थ की अङ्गता को प्राप्त करती है, वही दूसरी ओरसमस्त काव्य–सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। वामन ने अलङ्कार को सौन्दर्य मानकर सौन्दर्य को वस्तुगत तथा उक्ति वैशिष्ट्य के आश्रित स्वीकार किया है। इनका सौन्दर्य रूप अलकार, गुण मे सन्निहित है अर्थात् गुण तथा अलकारो से युक्त शब्दार्थ मे ही सौन्दर्य है। अलकार की अपेक्षा गुणो मे सौन्दर्य की चिरन्तनता की प्रतिष्ठा वामन की मूल देन है। शब्दार्थ के नित्य धर्म रूप गुण सौन्दर्य वस्तु के कारक हेतु होने से वस्तु–सौन्दर्य के प्राकृतिक मूल है। अलकार के बिना काव्य की सम्भावना हो सकती है किन्तु गुण के बिना नही। इस प्रकार यह

१ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलङ्कारो काव्या २/८५

सिद्ध होता है कि सौन्दर्य वस्तुगत और आत्मगत है। कहने का आशय यह है कि सौन्दर्य मूलत वस्तु मे है, कर्ता या ग्रहीता मे उसकी प्रतीति होती है। वामन ने गुणो के आधार पर ही रीतियो की विवेचना की है। इनकी विशिष्ट पद रचना रीति शब्द–गुण तथा अर्थ–गुण से युक्त सौन्दर्य विधायक रचनाशैली के अतिरिक्त और क्या है।

उद्‌भट ने तो गुण और अलङकार को शब्दार्थ रूप साहित्य मे समवायवृत्ति रूप मे स्वीकृति प्रदान की है। नैसर्गिक गुण और कृति–अलकार दोनो समान रूप से कवि–प्रतिभा से उद्‌भूत काव्य मे समवायवृत्ति से रहते है। आनन्दवर्धन ने गुण को रसाश्रित सिद्ध कर एक नयी प्रक्रिया प्रारम्भ की जिसका समर्थन बाद के आचार्यों ने समवेत कण्ठ से किया है। कुन्तक का चिन्तन कुछ मौलिक पृष्ठभूमि की उपज है। उनका सौन्दर्य आत्मगत दोनो से वस्तुगत निधि की सीमा से किचित् दूर है। उनका काव्य सौन्दर्य शब्द और अर्थ की परस्पर स्पर्धा का प्रतिफलन है। शब्दार्थ सौन्दर्य अभिव्यक्ति के सहायक मात्र हैं सौन्दर्य तो प्रेक्षक के आह्लाद मे स्थित है जिसे कवि–प्रतिभा ही उद्‌भूत कर सकती है। प्रेक्षक इस सौन्दर्य का साक्षात्कार कवि की विशिष्ट प्रकार की रचना (वक्रोक्ति) के द्वारा ही कर सकता है।

ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों ने रस को ही काव्य का सौन्दर्य माना है। इसी परिप्रेक्ष्य मे उन्होने गुण अलकार उक्ति वैचित्र्य शब्द–शक्तियॉ, दोषादि की विवेचना की है। उनकी दृष्टि मे काव्य–सौन्दर्य रसानुभूति मे ही अन्तर्निहित है। यद्यपि वस्तु और अलकार की अभिव्यजना मे भी सौन्दर्य की अनुभूति समान रूप से स्वीकार करने का प्रयास किया गया है किन्तु रसगत सौन्दर्य की प्रधानता को किसी न किसी रूप मे अवश्य स्वीकार किया गया है।

सम्पूर्ण विवेचनाओ का सार यह है कि कवि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए काव्य मे जिन शब्द, अलकार, गुण, छन्द, बन्ध–योजना (सघटनाया समास) आदि का चयन करता है उसका भी अपना महत्व है। चित्र, बिन्दु,

रेखा और रग आदि के बिना सौन्दर्य का सृजन नही कर सकता है। सम्पूर्ण कलाओ मे कवि की प्रतिभा और उसकी कल्पनाशक्ति का चमत्कार अनुस्यूत रहता है। एक ही विषय को लेकर विभिन्न कलाकारो की कृतियो मे महान् अन्तर पाया जाता है इस अन्तर का कारण कलाकार को आत्मनिष्ठ प्रतिभा की विशिष्टता है। साधन की एकता के रहने पर भी प्रतिभा अथवा कल्पना का वर्चस्व कला को विभिन्न रूपो मे अभिव्यक्ति करता है। कला की अभिव्यक्ति की विभिन्नता कलाकार को विभिन्न रूपो मे विभाजित करती है। सभी कलाओ के मूल मे कलाकार की प्रतिभा का विलास अर्न्तनिहित रहता है। प्राकृतिक सौन्दर्य जहॉ साधारण मनुष्य को आह्लाद प्रदान करता है वही कवि की कल्पनाओ तथा वासनाओ को उद्भूत कर अलौकिक सौन्दर्य का सृजन कराता है।

सुशील कुमार दे ने कालिदास के विषय मे कहा है कि उनका काव्य न कभी अवरूद्ध गति से चलता है और न अतित्वरान्वित होकर उसमे उत्थान और पतन की अनवच्छेद्य श्रृड्खला नही होती उनके सर्वोत्तम और निम्नतम मे कोई विशेष व्यवधान नही है। उनका काव्य श्रेष्ठता के एक निश्चित धरातल और महनीयता की एक नियत छाप की आद्योपान्त रक्षा करता है। सब प्रकार का नुकीलापन और खुरदरापन अत्यन्त सुकुमारता के साथ चिक्कन और मृसण बना दिया जाता है और इस प्रकार उनका पूर्ण विकास कविता का सुडौलपन प्रशान्त सौन्दर्य के अनुसरणशील ध्ववन द्वारा पाठक को आकृष्ट करता है, जो चाक्षुण और श्रुतिगोचर प्रभाव मे विचार तथा भावना के अन्तर्विलय का परिणाम है।' [१]

कालिदास की रचनाओ मे जिस अनुपम सौन्दर्य की अभिव्यक्लि हुई है उसका कारण यह है कि उनकी सम्पूर्ण रचनाए उनकी समाधिस्थ मन से प्रसूत हुई है। सत्वस्थ चित्त ही अनिन्ध्व सुन्दर रूप की सरचना कर सकता

---

१ सुशील कुमार दे – हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ १५२

है। समाधि मे विकार की सम्भावना नही रहती है। इसीलिए समाधिस्थ शिव[1] काम के विकार से प्रभावित नही होती है। काव्य का वास्तविक सौन्दर्य कवि के समाधिस्थ चित्त का प्रतिबिम्ब होता है। समाधि के बीज से प्रस्फुटित होने वाला पार्वती का सौन्दर्य शिव को आकर्षित कर पाता है। दिलीप का सौन्दर्य ब्रह्म की समाधि की उपज है।[2] शकुन्तला के सौन्दर्य की सृष्टि का रहस्य ब्रह्मा की समाधिस्थता ही है। यही कारण है कि शकुन्तला का सौन्दर्य विद्युत की तरलता को भी अभिभूत कर देता है।[3] विधाता की सभी रचनाओ मे उसके समाधिस्थ चित्त की कारणता नही रहती है। जिस रचना मे विधाता प्रयत्न करते है अथवा जिस रचना मे उनका मन समाधिस्थ रहता है वही रचना सौन्दर्य की निधि बन पाती है। रघुवश की इन्दुमती के सौन्दर्य का यही रहस्य है–

तस्मिन्विधानातिशये विधातु कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये

निवेतुरन्त करणैर्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवलमासनेषु।। रघु ६/११

समाधिस्थ मन की शिथिलता रचना–सौन्दर्य को विकृत बना देती है। कालिदास की मालिविका के चित्र का सौन्दर्य उसके वास्तविक सौन्दर्य से निकृष्ट है इसलिए हो गया है कि चित्र–निर्माण मे चित्रकार की समाधि मे शिथिलता आ गयी थी–

चित्रगतायामस्या कान्तिविसवादि मे ह्वदयम्।

सम्प्रति शिथिलसमाधि मन्ये यैनेयमालिखिता।। माल २/२

समाधिस्थ चित्त मे सत्व की प्रधानता रहती है, इसीलिए रचना का सौन्दर्य अलौकिकता को प्राप्त हो जाता है। जहॉ राजस भाव सत्व मन को अभिभूत करता है। चित्र का सौन्दर्य विकृत हो जाता है। कालिदास का यक्ष

---

१ आत्मेश्वराणा न हि जातु विघ्ना समाधिभेदप्रभवो भवन्ति। – कुस ३/४०

२ त वेधा विदधे नून महाभूतसमाधिना, रघु १/२६

३ चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगारूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
रत्रीरत्नसृष्टिपरा प्रतिभाति स मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्चतस्या। अभिज्ञान ३/२६

प्रिया–विरह मे रहकर भी समाधिस्थ मन से प्रिया का चित्र बना रहा है उस चित्र का सौन्दर्य चित्त के राजस् भाव के अभ्युदय के कारण पूर्णता को प्राप्त नही हो पाता है।

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागै शिलायाम्
आत्मान ते चरणतिता यावदिच्छामिकर्तुम्।
अस्रस्तावन्मुदुरूपचितैर्दृश्टिशलप्युते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नौ कृतान्त ।। उ०मे० (४७)

कालिदास की रचनाओ मे जहाँ एक ओर वाह्य सौन्दर्य का निर्झर झरता रहता है वही उसमे आन्तरिक सौन्दर्य का दिव्यालोक अन्तर्हित रहता है जिसकी अनुभूति उसी प्रेक्षक को होती है, जिसका मन समाधिस्थ रहता है। साधारण पाठक उसके आन्तरिक सौन्दर्य का भोग नही कर पाते है। कालिदास की सम्पूर्ण रचनाओ मे ऐसा समष्टिगत सौन्दर्य है जो चेतन तत्व का अमर वरदान है जिसका भोग सत्वस्थ मन ही कर सकता है।

जिस रचना का सम्पूर्ण अवयव अनवद्य होते है उसी मे निर्मल मन उसी प्रकार समाहित हो जाता है जैसे कुसुमित आम्र विटप पर भ्रमरावली अन्य वृक्षो का परित्याग कर पहुँच जाती है।[1]

कालिदास के काव्यो के वाह्य–सौन्दर्य मे यद्यपि श्रृङ्गार का विलास प्रतिबिम्बित होता है किन्तु उनके आन्तरिक सौन्दर्य मे तपस्या का मूर्तिमान रूप आलोकित होता है। कालिदास के काव्य का सबसे अलौकिक सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यजना है। तपस्या के विन्दु से निर्मित होने वाले रघुवश का सौन्दर्य तभी तक चिन्ताकर्षक रहता है जब तक राम की अलौकिक तपस्या रहती है। इसके पश्चात् तो वाह्य सौन्दर्य की प्राप्ति की गतिशीलता अग्निवर्ण तक रघुवश के सौन्दर्य को मिट्टी मे मिला देती

१ त प्राप्य सर्वावयवानवद्य त्यावर्तयाऽन्योपगमात्कुमारी।
नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य वृक्षान्तर काङ्क्षति षट्पदालि।
तस्मिन्समावशित्तचित्तवृत्ति मिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य। रघु ६/६८–६६

है। कुमार–सम्भव की रचना का सौन्दर्य पार्वती की तपस्या है। सौन्दर्य का देवता काम जिस शिव को अपने प्रभूततम सौन्दर्यात्मक साधन से जीत नही पाता है उसी परमसौन्दर्य की निधि शिव को तपस्या से उद्भूत पार्वती का दिव्य सौन्दर्य पार्वती का बिना मूल्य का दास बना देता है। मेघदूत का यक्ष अपनी प्रिया के उस सौन्दर्य से अभिभूत है जो उसकी तपस्या से आलोकित हो रहा है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो तपोभूमि के ऐसे दिव्य सौन्दर्य की रसानुभूति कराता है जिसका शाश्वत वैभव केवल तपस्या से प्राप्त किया जा सकता है।

वाक् और अर्थ

कालिदास काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य उनके द्वारा प्रस्तुत वाक और अर्थ मे अन्तर्निहित है। वाक् और अर्थ की शास्त्रीय व्याख्या की जा चुकी है। वाक और अर्थ का साहित्य ही लोकोत्तर सौन्दर्य की अनुभूति कराने मे समर्थ हैं कालिदास ने रघुवश के प्रथम श्लोक मे ही वाक् और अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए उमा और शिव की उपमानता को स्वीकार किया है। साहित्येतर शास्त्र के वाक् अथवा शब्द यदि सैकत है तो साहित्य के शब्दचन्दन–रज है। दोनो के अर्थों मे वही अन्तर है जो स्वर्ण और सौरभमय स्वर्ण–पुष्प के है। सारा जगत ब्रह्मण्ड अर्थ या पदार्थ है। कवि विधाता की सृष्टि को चुनौती देता हुआ नूतन पदार्थों की ऐसी कल्पना करता है जहॉ ब्रह्मा की जरठ बुद्धि स्वप्न मे भी नही पहुॅच सकती है। कवि की सृष्टि की कल्पना से जो सौन्दर्य की भावना रहती है, उसे देखकर ब्रह्मा भी तरूण हो सकता है।

कालिदास की वाणी केवल शास्त्र–स्वीकृत वाक् नही है। वाक् तो वह है जो अर्थों को अभिव्यक्ति दे। कालिदास के अर्थ भी वाक् है। उनकी जड प्रकृति की चेतन है पशु–पक्षी भी मनोरम भाषा का प्रयोग करते है। कालिदास के काव्य की सबसे बडी विशेषता यही है कि उनकी प्रतिभा के

स्पर्श से विधि की सम्पूर्ण अचेतन रचना जिस मनोरम अर्थ को अभिव्यजित करती है उसे देखकर यही प्रतीत होता है। सम्पूर्ण जडता मे अन्तर्हित चेतना सौन्दर्य को अद्वितीय वाणी मिल गयी है। कालिदास जैसा कवि आम्र की डाली को कोकिल की वाणी दे सकता है। आम्रडाली अपने प्रिय वसन्त को सन्देश देती है।

तया व्याहृतसदेशा सा बभौ निभृता प्रिये।
चतुयष्टिरिवाभ्याशे मधौ परभृतोन्मुखी।। कु स ६/२

भरतमुनि के नटी और नट ही अभिनय करते हैं किन्तु कालिदास की अचेतन प्रकृति भी सभी प्रकार के अभिनयो से योगी के मन को मोह लेती है। आम्र की डालिया के आङ्गिक और वाचिक अभिनय की मादकता वाणी से अवर्ण्य है।

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारूतकम्पितपल्लवा,
अमदयत्सहकारता मन सकलिका कलिकामजितामपि।। रघु ६/३३

कालिदास की आम्रलता के अभिनय की भाषा समझा सकते थे। आम्रलता मुग्धा नायिका की भाति अपने अभिनय से मुनि की समाधि को भडग कर रही है। वन की लताओ को साधारण व्यक्ति लतामात्र समझ सकता ह। कालिदास ता इन लताओ को नर्तकी के रूप मे देख रहे है जो भ्रमर की ध्वनि से मधुरगीत गा रही है अपने कुसुम रूप कोमलदसनावलियो के द्वारा मादक स्मित बिखेर रही है तथा लयानुगत किसलय रूप अरूणिम हाथो के व्यापार से मादकता की वर्षा कर रही है--

त्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतय कुसुमकोमलदन्तरूचो बभु ।
उपवनान्तलता पवनाहतै किसलयै सलयैरिव पाणिभि ।।

रघुवश ६/३५

सभी चेतन प्राणी कामदेव के प्रभाव का अनुभव मात्र करते हैं किन्तु

कालिदास का कामदेव नडग नही है वह तो मधुर वाणी खोलकर मानिनी युवतियो के मान के सैकत–सेतु को एक क्षण मे नष्ट कर देता है। कालिदास की प्रतिभा ने तो कामदेव को वाणी ही नही नया जीवन प्रदान किया है।

त्यजतमानमल वत विग्रहैर्न पुनरेति गत चतुरवय ।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्मवधूजन ।। रघुवश ६/४७
चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठ पुस्कोकिलो यन्मधुर चुकूज।
मनस्विनीमानविधातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य।। कु स ३/३२

कालिदास की लता के पास ही सुन्दर वाणी नही है वरन् चन्द्रमा और ताराओ के पास भी रहस्यात्मक वाणी है। इस वाणी को केवल कालिदास ही सुन सकते हैं। एक ओर चन्द्रमा ताराओ की रहस्यात्मक वार्ता सुनने के लिए व्याकुल है तो दूसरी ओर मुस्कुराता हुआ पूर्वदिशा के भेद को खोल रहा है।

चूताडकुरास्वादकषायमर्ण्ठ पुस्कोकिलो यन्मधुर चुकूज।
मनस्विनीमानविधातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य।। कु स ३/३२
मन्दरान्तरितमूर्तिन निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका।
त्व मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठत ।।
रूद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पुर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डल दिग्रहस्यमिव रात्रिचोदितम्।

कु स ८/५६–६०

कालिदास के कुमुदपुष्प ने भरपेट चादनी का पान कर लिया है किन्तु उसे पचा नही पा रहा है। अत भ्रमरो की गूज मे कराहते हुए अपने लोभ पर पश्चाताप कर रहा है।

एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दव बोढुमक्षयममिव प्रभारसम्।
मुक्तषट्पदविरावमज्जसा भिद्यते कुमुदमानिबन्धनात्।। कु स ८/७०

कालिदास की वेदना साधारण वेदना नही। इनकी वेदना के सताप को अज और रति के विलाप सीता के रूदन और विरही यक्ष की पीडा मे देखी जा सकती है। इनकी वेदना जड और चेतना को व्याकुल कर देती है। वन देविया मुक्ता के समान आसुओ की धारा बहाती है।[१] हिरण–घास खाना छोड देते हैं और मयूर नर्तन करना। और तो और हिसक पशुओ वाला कठोर वन भी रो उठता है।[२] अशोक लाल फूलो के बहाने आसू बहाता है।[३] तथा वृक्ष अपनी शाखाओ के रस–निस्पन्दन रूप आसू को बहाकर अपनी विकलता को अभिव्यक्त करते है।[४]

कालिदास ने जिन अचेतन पशु–पक्षियो को नूतन वाणी दी है उनमे उनकी निजी चेतना का सौन्दर्य का रस पूरित है। नन्दिनी[५] गो की वाणी मे जीवन का सगीत है जिसके स्वर मे मगलमय भविष्य की सुनहली किरणे फूट पडती है। दिलीप और सिह के सवाद के प्रसङ्ग मे सिह की वाणी सुनकर यही प्रतीत होता है कि हिसा के मन मे भी करूणा की धारा छिपी रहती है। सिह की वाणी का रहस्य शिव का अनुग्रह है। वृषभ पर आरूढ होते समय शिव के पद–स्पर्श से सिह का भीषण दहाड मनुष्य की वाणी भी बोलता है। कालिदास का सिह वाह्यरूप से तो हिसक प्रतीत होता है। वस्तुत उनको सिह कठोर परीक्षा–स्थल है जिसको जीत लेने पर मनुष्य की कामना सिद्ध हो सकती है।

---

१ पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवताना।
मुक्तास्थूलास्तरूकिसलयेष्व श्रुलेशा पतन्ति।। उ मे ४६

२ नृत्य मयूरा कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्य ।
तस्या प्रपन्ने समदु खभावमत्यन्तमासीद्रुदित वनेऽपि।। रघु १४/६६

३ स्मरतेव सशब्दनूपुर चरणानुग्रहमन्य दुर्लभम्। अमुना
कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वम शोकेन सुगात्रि। शोच्यसे ।। रघु ८/६३

४ विलपन्निति कोसलाधिप करूणार्थग्रथित प्रिया प्रति।
अकरोत्पृथ्वीरूहानपि सुतशाखारसवाष्पदूषितान्।। रघु ८/७०

५ स कीचकैर्मारूतपूर्णरन्ध्रै कूजद्भिरापादित वशकृत्यम्।
शुश्राव कुजेषु यश स्वमुच्चैरूदगीय मान बनदेवताभि ।। रघु २/१२

अयोध्यावासिनी नगरबधू को जब कालिदास वाणी दे देते है तो यही प्रतीत होता है कि कालिदास की समष्टि–मङगल भावना नगरवधू की वाणी मे बोल रही है। नगरवधू की पीडा मे वर्तमानकालीन राजनेताओ द्वारा की गयी भारत की दुर्दशा की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है।[1]

दिलीप के यशगान करने वाली वनदेविया मानो कालिदास के गौरव की कहानी कह रही है। इनके बास कृष्ण की मुरली की ध्वनि को उपस्थित कर रहे है।[2] कालिदास के मेघ की गर्जना शिव–उपासना के सगीत के शिवत्व ध्वनि की सृष्टि करती है।[3] कवि कैलाश पर्वत मे जिस समय शिव के अट्हास की ध्वनि सुनायी पडती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि अमूर्त हास की मूर्त रूप धारण कर शिवत्व की ध्वनि सुना रहा हो।[4] कालिदास का मेघदूत तो ऐसा काव्य है जिसके प्रत्येक अमूर्त या जड तत्व मे एक मधुर भाषा का समायोजन किया गया है। धूम ज्योति, सलिल से उत्पन्न होने वाले मेघ को सन्देश देने वाला कवि प्रकृति की मूक भाषा के जिस रहस्य को उपस्थित करता है उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि सारा जगत एक लयात्मक मधुर वाणी का समुच्चय है। कुमारसम्भव का जड पात्र– हिमालय को वाणी देकर कवि ने सम्पूर्ण जड जगत को चेतनता के अद्वितीय रग से रजित कर दिया है।

कवि अमूर्त आकाश की वाणी रति को ही जीवन प्रदान नही करती वरन् जीवन–सघर्ष मे हारे हुए सम्पूर्ण मानव जाति को अवलम्बन देकर यह बताती है कि मानव का प्यार का दामन सकुचित तथा सीमित है। उसे तो व्यापक आकाश ही आश्रय दे सकता है जो चित् शक्ति का अद्भुत विलास है।

१ निह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्देरेषु ध्वनि स्यात्सगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ।। पूमे० ५६

२ स कीचकैर्मारुत्पुर्णरन्ध्रै कूजद्भिरापादितवशकृत्यम्।
शुश्राव कुजेषु यश स्वमुच्चैरुद्गीयमान वनदेवताभि ।। रघुवश २/१२

३ निह्रादस्ते मुरज हव चेत्कन्दरेणु ध्वनि
स्यात्सगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ।। पू मे ५६

४ शृडगोच्छाये कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित रव,
राशीभूत प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्यादृहास ।। पू मे ५८

रामके धनुष के टूटने वाली ध्वनि केवल वज्र की ध्वनि नही है वरन् उस ध्वनि ने परशुराम को चुनौती देकर उनके गर्व को दूर कर दिया। सीता को अपने मे समाहित करने वाली वसुन्धरा की गडगडाहट की ध्वनि राम के सम्पूर्ण पुरूषार्थ पर प्रश्न चिन्ह लगाकर भावी मानव के स्त्री के प्रति किये गये अविवेक पूर्ण प्रहार पर विचार करने के लिए बाध्य करती है।[1] प्रात कालीन वनस्थली के पत्तो पर पडने वाली तिय् लिय्[2] की ध्वनि को कवि ने ऐसी जीवन्त भाषा दी है कि इस ध्वनि ने राम की सभा को पश्चाताप के सिन्धु मे निमज्जित कर दिया।[3]

कालिदास की वाणी केवल शास्त्रीय वाणी नही है। यह तो चित् शक्ति का एक भाग है, जिसके विभिन्न रूप ब्रहाण्ड मे व्याप्त है। कवि की सूक्ष्मदर्शिनी प्रतिभा ने प्रकृति के प्रत्येक कण–कण की ध्वनि को समझकर उसके रहस्य को अभिव्यक्त किया है। सारी प्रकृति केवल जडता का पुज नही है, उसके प्रत्येक क्रियाओ मे एक अनबूझ–भाषा का वैभव है जिसे भौतिकवादी दृष्टिकोण समझ नही सकता है। नदी की धारा की कल–कल ध्वनि पवन का बहना झरना की ध्वनि, पत्तो की मर्मरता कलियो का चिटकना, किरणो का प्रस्फुटन आदि प्राकृतिक ध्वनिया बिना मानवीय भाषा के अपनी अलौकिक भाषा से मानव को अनुपम अर्थ–वैभव प्रदान करते रहते है। इनकी भाषाओ का प्रयास करती रहती है। जागतिक पदार्थो की जडता केवल उसका आवरण मात्र है, उसके अन्तस्थल मे चेतना की अमर ज्योति अन्तर्निहित है। मानव की सीमित बुद्धि इस रहस्य को समझने मे असमर्थ है।

सस्कृत के आचार्यों ने सम्पूर्ण काव्यार्थ को तीन रूपो–वस्तु अलकार और रस के रूप मे विभक्त किया है। सम्पूर्ण पदार्थ कवि–शब्दो मे समाहित

---

१ भज्यमानमतिमात्र्कर्षणात्तेन वज्रपरूषस्वन धनु ।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुन क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत्।। रघु ११/४६

२ एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योमवाद्भुव ।
शातहृदमिव ज्योति प्रभामण्डलमुद्ययौ। रघु १५/८२

३ तद्गीतश्रवणैकाग्रा ससदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली। रघु१५/६६

होकर काव्यार्थ कहे जाते है। सभी अर्थों की बौद्धिक सत्ता को नकारा नही जा सकता है। काव्य के अर्थ लौकिक अर्थो के विलक्षण होते है इसीलिये हृदय होते है। कुछ काव्य के कुछ अर्थ हृदय के भाव—बीज को अकुरित कर उसे पल्लवित एव पुष्पित करते है कुछ तो बौद्धिक पिपासा को तुष्टिमात्र प्रदान करते है और कुछ कर्ण—विवर मे प्रविष्ट होकर समाप्त हो जाते है।

इसकी चर्चा की गयी है कि किसी वस्तु के सौन्दर्य की प्रतीति समग्र रूप मे होती है लेकिन उस समग्रता मे उसके किसी एक भाग अथवा विन्दु को सौन्दर्य भी चित्त को आह्लादित करता है। कालिदास ने रघुवश के प्रारम्भ मे उमा और शिव की जिस रूप मे वन्दना की है उसे देखने से यही प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण ससार का ब्रह्म अथवा शिव रूप है। इसी ब्रह्म या ईश्वर के दो रूप स्त्री और पुरूष बनते है और ये ही दोनो रूप जगत् के माता—पिता कहे जाते है—

स्त्रीपुसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्ते सिसृक्षया।
प्रसूतिभाज सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ।। कु स २/७

कालिदास का रघुवश एक उदात्तचरित्रवाला काव्य है। रस की दृष्टि से इसे वीररस प्रधान कहा जा सकता है किन्तु इस काव्य का सौन्दर्य स्त्री—पुरूष के वाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य की मीमासा है। रघुवश का प्रारम्भ राजा दिलीप जैसे आदर्श पराक्रमी, तपस्वी त्यागी दयाशील तथा प्रजाप्रिय राजा से होता है किन्तु उसका अन्त बडे ही मार्मिक ढग से किया गया है। जिस राज्य का प्रारम्भिक शासक पुरूष रहा हो, उसी राज्य की अन्तिम शासक महिला है।[1]

महारानी के हाथ मे शासन—सूत्र समर्पित करने वाले कालिदास इस बात को अभिव्यक्त करते है कि सम्पूर्ण ससार मे उमा और शिव का ही

---

१ मौलै सार्ध स्थविरसचिवैर्हेमसिहासनस्था
राज्ञी राज्य विधिवदशिवद्भर्तुरस्थाहताज्ञा।। रघुव १६/५७

विलास है। एक मे दोनो है अथवा दोनो की शाश्वत सत्ता है अथवा एक के अभाव मे दूसरा शासन–सूत्र का नियत्रण करता रहता है। कालिदास की नारी वाणी रूपा है और पुरूष अर्थ रूपा। यदि तपोजन्य सौन्दर्य नही रहता है तो उस अर्थ की सत्ता वाणी के गर्भ मे अन्तर्निहित हो जाती है केवल वाणी का चमत्कार रहता है।

कुमारसम्भव तो उमा और शिव के शाश्वत प्रेम का हिमालय है। स्त्री–पुरूष के शाश्वत प्रणय से कुमार ऐसे पुत्र की उत्पत्ति होती है जो असुरो का विनाश करता है। सम्पूर्ण काव्य श्रृगार रस के जिस श्रेयस्कार रूप को प्रस्तुत करता है उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि रघुवश के वाक और अर्थ कुमारसम्भव मे सम्पृक्त होकर विश्व का कल्याण करते है। कुमारसम्भव का वर्णन एक और आदर्श की सृष्टि करता है तो दूसरी ओर प्रणय के पावनरूप को प्रस्तुत करता है। जीवन न उमा रूप है न शिव रूप। तपस्विनी उमा रूपी कल्पना को ही शाश्वत शिव का सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है।

मेघदूत का यक्ष अर्थ रूप भावात्मक जगत का प्रतीक है, उसकी तपस्विनी प्रिया वाणी का श्रृडगार है। अर्थ बिना वाणी के पलाश का पुष्प है। अधिकाशत काव्यो मे नारी का विरह–वर्णन देखा जाता है किन्तु मेघदूत ही एक ऐसा काव्य है जिसका पुरूष पात्र प्रिया–विरह मे इतना व्याकुल है कि अचेतन मेघ को अपने ह्रदय की व्यथा सुनाकर उससे दौत्य कर्म करने के लिए प्रार्थना करता है। मेघदूत का यक्ष यथपि वाह्य रूप एक प्रकार का विशिष्ट जीव है किन्तु आन्तरिक रूप से तो वह राम तथा अर्थ का प्रतीक है। उसकी प्रिया भी सीता तथा वाणी की प्रतिमूर्ति है। मेघ पवनदूत तथा शक्ति का प्रतीक है। सम्पूर्ण काव्य मे एक शाश्वत सत्य बिना नारी के पुरूष का जीवन अधूरा है– की व्याख्या की गयी है। वस्तुत वही अर्थ काव्य का अर्थ है जो वाणी के लिए समर्पित हो और वही वाणी है जो अर्थ के लिए हो तो दोनो के साहित्य का सौन्दर्य विश्व का मगल कर सकता है।

रस–विवेचन

मातृगुप्त की दृष्टि मे रस तीन प्रकार के होते है–

१ वाचक, २ नेपथ्य और ३ स्वभावज।

रस के अनुरूप वार्तालाप श्लोक वाक्य तथा पदो का कथन वाचिक रस कहा जाता है।

कर्म रूप वय जाति–देश और काल के अनुरूप माला आभूषण वस्त्र आदि धारण करना नेपथ्य रस कहा जाता है तथा रूप–यौवन लावण्य स्थैर्य धैर्य आदि गुणो का कथन स्वाभाविक रस कहा जाता है।[1]

वाचिक रस

कालिदास रसवादी कवि है। इनकी लेखनी सर्वत्र रस–धारा को प्रवाहित करती रहती है। कुमारसम्भव के पचम सर्ग के उत्तरार्द्ध का वार्तालाप क्रमश श्रृङ्गाररस की परिणिति को प्राप्त होता है। इसी प्रकार इसी काव्य का सातवा सर्ग शिव और पार्वती की वार्तालाप श्रृङ्गार रस का मधुर समुद्र की सृष्टि करता है। रघुवश के रघु–इन्द्र–रघु–कौत्स राम–परशुराम आदि की सवाद योजना वीर रस के विभिन्न रूपो को व्यजित करती है। मेघदूत के यक्ष के द्वारा दिये गये मेघ के सन्देश मे तो विप्रलम्भ श्रृगार की विशद विवेचना की गयी है।

कालिदास की रस–विवेचना पूर्व के अध्याय मे प्रस्तुत की गयी है। यहाँ रस की समग्र विवेचना प्रस्तुत की जाती है। श्रृगार–वसन्त की अनुपम सर्जना करने वाले कालिदास का श्रृगार मनोवैज्ञानिक तथ्यो को अभिव्यक्त करता हुआ भारतीय दार्शनिको के सत्य–साक्षात्कार की भूमिका प्रस्तुत करता है। भारतीय आचार्यों की मान्यता रही है कि श्रृगार की पूर्णता स्वकीया के

---

१ द्र कालिदास ग्रन्थावली– समीक्षा–निबन्ध पृ २३ पर उदधृत।
भारतीय प्रकाशन अलीगढ, तृती० सस्करण

आलम्बन से प्राप्त की जा सकती है। रस एक है आलम्बन–भेद की विविध ाता उसका वाह्य अलकरण मात्र है वस्तुत रसानुभूति के एकात्म का अपलाप नही किया जा सकता है।

रसानुभूति पर्यन्त उसके माध्यमो की व्याख्या जितनी सूक्ष्मता से की जाय वह तो बौद्धिक–क्षमता का विलास है, किन्तु रसानुभूति की समरसता पर उगली नही उठायी जा सकती है। पार्वती हमारे समक्ष तीन रूप मे अपने सौन्दर्य की अनुभूति कराती है। सहज सौन्दर्य उनका प्रथम रूप है। पुष्प आदि अलकारो से अलकृत सौन्दर्य का द्वितीय रूप है। तपस्या के पश्चात् का तपोजन्य सौन्दर्य उसका तीसरा रूप है। तीनो प्रकार के सौन्दर्य–चित्रण की अपनी भूमिकाए है। प्रथम सौन्दर्य उनके यौवन का वरदान है। यह यौवन प्रकृति के प्रत्येक उपादान को सौन्दर्य प्रदान करता है किन्तु पार्वती तो विधाता की अनुपम रचना है। इस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कालिदास ने नख–शिख वर्णन का आश्रय लिया है।[1] पार्वती का यह सौन्दर्य कामदेव का अस्त्र बन जाता है।[2]

द्वितीय प्रकार का सौन्दर्य पुष्पाभरणो से सुसज्जित होकर जब शिव के समक्ष उपस्थित होता है तो शिव के मानस मे किचित मात्र ही हलचल होता है किन्तु इसी सौन्दर्य के बल पर काम शिव के ऊपर प्रहार करने मे सफल होता है। किन्तु शिव उसे जलाकर नष्ट कर देते है। कवि के काम दाह का रहस्य यही है कि अलकृत सौन्दर्य श्रृङ्गार के शिवत्व को नही प्राप्त कर सकता है। इसलिए पार्वती ने अपने सम्पूर्ण अलकारो का परित्याग कर दिया और अपने रूप को अवन्ध्या बनाने के लिए कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दिया। इस तपस्या जन्य सौन्दर्य ने शिव को पार्वती का क्रीत दास बना दिया। इस सौन्दर्य ने एक ओर पार्वती के मन को पूर्ण शान्ति प्रदान किया और दूसरी ओर शिव के मन को व्याकुल कर दिया।

---

१ उन्मीलित तूलिकयेव चित्र सूर्याशुभिभिन्नमिवारविन्दम।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्त नवयौवनेन।। कु स १/३२

२ कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्र बाल्यात्पर साथ वय प्रप्रेदे। कु स १/३१

अथ विश्वात्मने गौरी सदिदेश मिथ सखीम्।

दाता मे भूभृता नाथ प्रमाणीकियतामिति।। कु स ६/१

स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम्। कु स ६/३

शिव उमा के सौन्दर्य रस का पान करना चाहते है किन्तु उमा बिना पिता की आज्ञा से अपने सौन्दर्य को कलकित नही करना चाहती। शिव ने किसी--किसी प्रकार उमा को स्वीकृति देकर स्वय पार्वती से विवाह करने के लिए ऋषियो को बुलाया। शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रणय को पूर्वराग की सज्ञा दी जाती है।

शिव और पार्वती के विवाह के पश्चात् कालिदास ने जिस श्रृङ्गार का वर्णन किया है उस श्रृङ्गार के औचित्य पर आचार्यो की उगली उठी रहती है। किन्तु किसी भी दृष्टि से देखा जाय उस वर्णन मे किसी प्रकार का अनौचित्य नही है। शिव और पार्वती का प्रणय व्यष्टिगत नही है वरन् समष्टिगत है। जब तक स्थायी भाव का आवरण भङग नही होता तब वह उद्बुद्ध होकर रसता को प्राप्त रहता है। श्रृङ्गार और आवरण अथवा रसानुभूति और आवरण दोनो की सत्ता को स्वीकार करना सामाजिक मर्यादा अथवा कृत्रिमता को स्वीकार करना है। आचार्यों ने भी काव्य--अलौकिकता को स्वीकार किया है। काव्य की लौकिकता एक ओर उसे जागतिक रहस्यो को उद्घाटित करती है तो दूसरी ओर उसकी अलौकिकता निवारण को भग कर एकरसता की अनुभूति कराती है। लोक की करूणा आनन्द की सृष्टि नही करती किन्तु काव्य की करूणा आनन्दात्मक होती है। यदि मर्यादा की बात की जाय तो किसी भी नायिका के श्लील अनुभावो से श्रृगार रस की अनुभूति नही हो सकती है क्योकि भारतीय आचार्य के अनुसार पत्नी के अतिरिक्त सभी रमणिया माता होती है।

इस बात की चर्चा की गयी है कि कालिदास को सहजरूप आकर्षित करता है। कलाकार जिस समाधि अवस्था मे कला का निर्माण

करता है वहा न लोक मर्यादा रहती है न वाह्य आडम्बर वहाँ तो केवल एक चेतन का प्रकाश रहता है जहाँ उसे अपूर्व वस्तु निर्माण को क्षमता प्राप्त हो जाती है। काव्य की वस्तु बनने पर कोई भी पात्र अपने विशेष रूप का परित्याग कर साधारणीकरण की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

कालिदास की दृष्टि तो विश्वव्यापक सौन्दर्य–सर्जना मे आसक्त है। उनका श्रृङ्गार लौकिक नही है जो काम की पिपासा की पूतिमात्र है। कई वर्षो तक सम्भोग करने के बाद ही उनका वीर्य खलित होता है। इस वीर्य को धारण करने की क्षमता जब अग्नि मे है तो अन्य के धारण करने की बात ही नही उठती है। कालिदास का शिव शाश्वत सौन्दर्य का प्रतीक है इसीलिए उसे अलङ्कार की आवश्यकता नही होती है।

इसी प्रकार राम और सीता के श्रृङ्गार की अलौकिकता वर्णित है। कालिदास का ही पात्र अपने प्रणयी के वियोग का सहन नही कर सकता है चाहे पुरूष पात्र हो या स्त्री। अपने प्रणयी के वियोग मे व्याकुल हो जाते है। राम ऐसा पात्र भी धनुष उठा लेता है। राम का धनुष उठाना यह व्यक्त करता है कि सभी रसो की सृष्टि श्रृङ्गार के बीज से ही हुई है। जैसा कि शारदातनय ने भावप्रकाशन मे बताया है कि जिस समय भक्त आदि से सुशोभित शिव ने पार्वती से रति–कामना की, उस समय पार्वती की सखियो के चित्त हास की उत्पत्ति हुई। जब शिव ने एक ही बाण मे असुरो का विनाश किया उस समय शिव की वीरता को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। रूद्र की क्रोधावस्था ने यक्ष के यज्ञ को विध्वस कर दिया इसलिए सखियो के चित्र मे करूणा उत्पन्न हुई। श्मशान पर शिव के वीभत्स रूप को देखकर प्रमथादिगण भयविह्वल होकर शिव की शरण मे चले गये।[१]

कालिदास ने श्रृङ्गार के दोनो पक्षो का सुन्दर वर्णन किया है। मेघदूत शापज विपलम्भ का अलौकिक उदाहरण है।[२] कालिदास का श्रृङ्गार

१ द्र मा प्र, पृ ५५, ५७ ५८

२ त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागै शिलाया
मात्मान ते चरणपतिता यावदिच्छामि कर्तुम।
अस्रस्तावन्मुहूरू पचितेर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नौ कृतान्त ।। उ मे पृ ४७

वर्णन शाश्वत प्रणय का चित्रण उपस्थित करता है। कालिदास जन्मान्तर–प्रणय को स्वीकार कर प्रणय को चिरन्तनता पवित्रता और अद्वितीय सुन्दरता प्रदान की है। इनकी मान्यता है जीवन का सौन्दर्य नारी और पुरुष के समर्पित प्रणय मे है।

आज प्रिया के निष्ठुर वियोग का सहन कर सकता है। किन्तु दूसरा विवाह नही करते है। राम स्वर्ण की सीता को ही अपने शुद्ध प्रणय को समर्पित कर देते है। सीता ने अग्नि मे प्रविष्ट होकर अपने प्रणय के स्वर्ण को कलङ्कित नही होने दिया। यक्षमेघ को दूत बनाकर अपने पूर्ण प्रणय को चरितार्थ करता है। कालिदास के पात्रो के पात्रो के सौन्दर्यातिशय श्रृङ्गार के सागर मे सारा जड जगत तथा काल्पनिक सौन्दर्यात्मक जगत समाया हुआ है।

कालिदास को असयत कामभाव स्वीकार्य नही है। दशरथ की असयत कामासक्ति उन्हे पुत्र–वियोग की अग्नि मे जलाकर राख कर देती है। कुश की भी कामिनियो के साथ की गयी रगरेलिया[1] उसके पैतृक आभरर्णजैत्राभरण [2] को जल मे डुबा कर सम्पूर्ण रागात्मक चित्र को विषाद के अनल मे डाल देती है। अग्निवर्ण का अनियत्रित काम लोक–विश्रुत रघु के दीप को ही बुझा देता है। वस्तुत कालिदास धर्माविरूद्ध काम रूप ईश तत्व के ही उपासक है। तभी तो इनके श्रृङ्गार की मुक्तकठ से प्रशसा की जाती है।[3]

रति–विलाप और अज–विलाप के प्रसग मे कालिदास की करूणा का ऐसा मर्मान्तक चित्र खीचा जिसको देखकर वज्रहृदय भी अपनी ही

---

१ तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरा ताम्।
आकाशगङ्गारतिरप्तसरोभिर्वृतो मरूत्वाननुयातलीक ।। रघुवश १६/७१

२ तदस्य जैत्रभरण विहर्तुरज्ञातपात सलिले ममज्ज। रघुवश १६/७२

३ एकोऽपि जीयते इन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्र्यी किमु।।
श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासो विशिष्यते। राजशेखर

अश्रुधारा मे विभज्जित हो जाता है। रति ब्रह्मा के द्वारा चेतना प्राप्त करने के पश्चात् विलाप विह्वला रति के इस उद्गार– हे नाथ। तुम्हारे जिस सुन्दर शरीर से विलासियो की उपमा दी जाती थी उसकी इस दशा को देखकर भी मेरा हृदय विदीर्ण नही होता है। वास्तव मे स्त्रियो का हृदय अत्यन्त कठोर होता है।[1] रति की विकलता की पराकाष्ठा को द्योतित करती है। कालिदास ने पूरे सर्ग मे केवल रति के करूणात्मक भाव को मार्मिक ढग से उपस्थित किया है।

रति–विलाप के द्वारा कवि ने जहॉ स्त्री की करूणा को चित्रित किया है वही अज–विलाप के माध्यम से पुरूष की करूणा को अत्यन्त सवेदनशील बना दिया है। प्रिया–वियुक्त अज कहता है कि यदि इस माला मे मारने की शक्ति है तो लोऽसे मै अपने हृदय पर रख रहा हूँ, किन्तु मेरे प्राणो का अपहरण नही करती है। अत ज्ञात होता है कि दैव की इच्छा से कही विष भी अमृत हो जाता है तो कही अमृत भी विष।[2]

शोक–विह्वल अज की मूच्छित चेतना यह नही चाहती कि इन्दुमती का मृत शरीर भी चिता पर रखा जाय क्योकि उसके शरीर की जो कोमलता नव पल्लव के विस्तर से भी पीडित होती थी वह किस प्रकार चिता की विद्रूप कठोरता सह सकेगी।[3]

कवि की करूणा वविध रूपो मे प्रकट होती है। कवि की करूणा चेतन या अचेतन को भी शोक–सागर मे विमज्जित कर देती है।

रसो के साथ गुणो का विवेचन अपेक्षित है। आचार्यों ने इस धर्म गुणो के महत्व को अत्यधिक रूप मे स्वीकार किया है। पद्–रचना वस्तु के

१ उपमानमभूद्विलासिना करण यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिद गतमीदृशीं दशा, न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय ।। कुस ४/५

२ स्रगिय यदि जीवितापहा हृदये किम् निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृत क्वचिद्भवेदमृत विषयीश्वरेच्छया।। रघु ८/४६

३ नवपल्लवसस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदडगमर्पितम्।
तदिद विषहिष्यते कथ वद वामोरू। चिताधिरोहणम्।। रघु ८/५७

स्वरूप मे निखार लाती है। कालिदास की पद–सरचना की विशेषता अर्थानुकूलता की सुन्दर अभिव्यक्ति है। इनकी पद–शैय्या माधुर्य–व्यजक वर्णो से सघटित होती है अत उसमे लालित्य रहने के कारण समास अथवा अल्पसमास की सत्ता का विलास रहता है। पारभाषिक भाषा मे इनकी पद–सरचना का होती है।

कालिदास की अलङकार–योजना की रमणीयता ने कालिदास को उपमा का कवि सिद्ध कर दिया है। सम्पूर्ण रचनाओ के अलड्कारो के प्रयोग की स्वाभाविकता किस सहृदय को आकर्षित नही करती है। अलङकार–प्रयोग के चारूत्व का प्रतिपादन पूर्व के अध्याय मे किया है अत उनकी विवेचना पिष्टपेषण को चरितार्थ करना है।

कालिदास का वाह्य प्रकृति का चित्रण जितना आकर्षक है उसे अधिक मानसिक–प्रक्रियाओ की विवेचना मे रमणीयता और यथार्थ की सुन्दरता है। कालिदास का मन वह अद्वितीय कोश है जिसमे जन्म जन्मान्तर के अर्थ सस्कार रूप मे पडे रहते हैं।[१] इसीलिए मन की अनन्त गति को मापना सूर्य की किरणो को मुट्ठी मे बाध रखना है।[२] यही मन भावी घटनाओ को प्रकाशित कर देता है।[३] मन को किसी विषय मे आसक्त कर देने से न मन को विषय से परावर्तित किया जा सकता है न इन्द्रियो को ही।[४]

काम आधुनिक मनोवैज्ञानिक का प्रत्येक कार्यो का बीज है। कालिदास का काम, अड्ग और देव भी है। इस काम का सयत रूप ही शिवत्व का सम्पादन कर सकता है। कामार्त व्यक्ति अधा हो जाता है वह चेतन और अचेतन के भेद को भूल जाता है।[५] काम–भावना जीवन को अपने ढग से

---

१ मनो हि जन्मान्तरसगीतज्ञम्' रघु ७/१५

२ मनोरथानामगत्तिर्न विद्यते। कु स ५/६४

३ आगामिसुखदु स वा हृदयसमवस्था कथयति। मालवि ५/६

४ स्वादुभिस्तु विषयैर्हतस्ततो दु खमिन्द्रियगणो निवार्यते। रघु १६/४६

५ कामार्ता हि प्रकृतिकृपणा चेतनाचेतनेषु' पू मे १/५

प्रभावित करती है। स्वार्थ के अनुकूल देखने वाला काम अपने विरूद्ध कुछ सुनना नही चाहता है।[1] प्रेम का मूलतत्व काम है। कालिदास का प्रेम जीवन का शाश्वत सगीत है। यह प्रेम दो प्रेमियो मे शाश्वत उसी प्रकार रहता है जैसे सूर्य और कमल की शोभा।[2] शुद्ध–प्रणय किसी की अपेक्षा नही करता है।[3]

कालिदास की रचनाओ मे वाह्यजगत और अन्त प्रकृति की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

स्वाभाविक रस

कालिदास की दृष्टि, स्त्री और पुरूष की शाश्वत असम्पृक्तता की पृष्ठभूमि मे ही उनके सौन्दर्य की विवेचना करती है। नाट्यशास्त्रो मे वर्णित बीस योषिद्अलकारो मे तीन अलङ्कार–भाव हाव हेला–अङ्गज है। शोभा कान्ति, दीप्ति, माधुर्य धैर्य प्रगल्भता और औदार्य–अयत्नज अर्थात् बिना किसी प्रयास के होने वाले है तथा रस अलङ्कार–लीला विलास विच्छित्ति, विभ्रम किलकिचित् मोस्ट्टायित, कुट्टमित ललित और विल्हत स्वाभाविक है।[4] पुरूषो के शोभा, विलास माधुर्य स्थैर्य, गाम्भीर्य आदिअलङ्कार है।

कालिदास सहजरूप के मादक सौन्दर्य पर अपनी समग्र प्रतिभा और भाव को न्यौछावर कर देने वाले है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की शकुन्तला नैसर्गिक रूप की मनोहारिणी प्रतिमा है।[5] इसलिए उसके मधुर रूप के लिए मण्डन की आवश्यकता नही पडती है और तो और उसके रूप के लिए उपस्थित किये उपमानो से भी उसका रूप रमणीय है। उपमान रम्य और लक्ष्मी से युक्त है किन्तु शकुन्तला का सौन्दर्य तो उन दोनो उपमानो से

---

१ न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते, कु स ५/८२
२ सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् । उ मे २०
३ 'न शोभते प्रियजने निरपेक्षता' (मालवि ३/२०)
४ द्र दशरूपक २/३० – ३२
५ सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापिरम्य मलिनमपिहिमाशोर्लक्ष्मलक्ष्मीतनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्।। अ शा २/२६

अधिक मनोज्ञ है। रम्यता और मनोज्ञता मे मूलभूत अन्तर है कि रमणीय वस्तु मे मन की गतिशीलता ध्वनित होती किन्तु मनोज्ञ मे रमणीय वस्तु की ही मन मे गमनशीलता—द्योतित होती है।

कालिदास ने रमणी के यौवन को शरीर—लता का सहज अलङ्कार माना है। यह यौवन रसिक को बिना आसवपान के ही मादक बना देता है। मदिरा सेवन के पश्चात् ही मदमत्त बनाती है किन्तु यौवन दृष्टि का विषय बनते ही व्यक्ति को मदमत्त कर देता है। काम के पुष्पबाणत्व की प्रसिद्धि को भी तिरस्कृत करने वाला यौवन काम का बिना पुष्प का बाण है।[१] कालिदास ने इसे चरितार्थता भी प्रदान की है। कामदेव ने जिस समय शिव पर प्रहार करने के लिए वसन्त की सर्जना उस समय की जब शिव को देखकर वह कम्पित हो गया था किन्तु वही पर उपस्थित पार्वती के यौवन ने ही शिव पर प्रहार करने की क्षमता प्रदान की। कालिदास की पार्वती सम्पूर्ण अङ्ग से अनिन्दनीय है। यही कारण है कि उनके रूप को देखकर रति भी लज्जित हो जाती है। पार्वती के ऐसे ही सहज और मादक रूप का अवलम्बन लेकर काम ने शिव—विजय की कामना की—

ता वीक्ष्य सर्वावयवानवटा रतेरपि ह्रपदमादधानाम्।
जितेन्द्रिये शुलिनि पुष्पचाप स्वकार्यसिद्धि पुनराशशरे।। कु स ३/५७

यद्यपि पार्वती ने अपने रूप को पल्लवादि से अलङ्कृत किया था किन्तु काम उसके अनवद्य सहज रूप को शिव—विजय का साधन बनाता है।

शकुन्तला के रूप पर मोहित होने वाला राजसीवृत्ति का राजा दुष्यन्त है। पार्वती का रूप इतना मादक है कि शिव ऐसा समाधिस्थ योगी का भी मन चचल हो जाता है। कालिदास की उमा केवल अपने अरूणिम अधर के सौन्दर्य से ही शिव के तृतीय नेत्र की ज्वाला को शान्त कर श्रृङगार के रस का मेघ बना देती है।

---

१ असम्भृत मण्डनमडगयष्टेरनासवाख्य करण मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्र बाल्यात्पर साथ वय प्रपेदे। कु स १/३१

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि ।

उमामुखे बिम्बफला धरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि। कु स ३/६७

शिव के किंचित आसक्ति का कारण पार्वती का मुख का अद्वितीय सौन्दर्य है उनके मुख पर चन्द्रमा और कमल दोनो की कमनीयता का विलास था यही कारण है कि पार्वती के मुख मे सौन्दर्य लक्ष्मी का चिरन्तन निवास हो गया–

चन्द्र गता पद्मगुणान्न भुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।

उमामुख तु प्रतिपद्य लोला द्विसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ।।

कु स १/४३)

कवि की कल्पना ने चन्द्रमा और कमल की सत्ता को एक ही मुख मे स्थापित कर विधाता की सृष्टि को निरर्थक सा बना दिया। ऐसे सुन्दर मुख के अरूणिम अधर पर विलसित होने वाली पार्वती की स्वच्छ मुसकान ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो लाल किसलय पर उज्ज्वल पुष्प रखा गया हो अथवा विद्रुम के ऊपर मुक्ताफल का विलास हो।[1]

शिव के मन के विकार ने पार्वती के सहज सौन्दर्य की लोकोत्तरता को प्रमाणित कर दिया है। किन्तु उस समय एक क्षणवाद पार्वती का रूप सौन्दर्य उस समय दरिद्र व्यक्ति की अभिलाषा बन जाता है जब शिव काम को जलाकर राख कर देते है। ऐसी स्थिति मे पार्वती स्वत अपने रूप की निन्दा करने लगती है।[2]

कालिदास की सौन्दर्य–दृष्टि अत्यन्त विलक्षण है। सदा इन्होने सहज रूप की प्रशसा की है। पार्वती तपस्या के लिए जटाधारण करने पर इसी प्रकार रमणीय लगती है जैसे शैवाल से आवृत्त कमल। कालिदास की

---

१ पुष्प प्रवालोपहित यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरूच स्मितस्य।। कु स १/४४

२ निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती प्रियेषुसौभाग्यफला हि चारूता। कु स ५/१

दृष्टि मे सौन्दर्य की प्राप्ति अखण्ड तपस्या का फल है। सौन्दर्य मेपापाचरण की कल्पना करना सूर्य को प्रकाशविहीन बताना है।[1] पार्वती का सौन्दर्य उनके सच्चरित्र की पूर्ण कसौटी है। तपस्या के पूर्व का पार्वती का सौन्दर्य सम्भवत किंचित् विकारग्रस्त था इसलिए पूर्ण सौन्दर्य रूप शिवत्व को आकर्षित नही कर सका। सौन्दर्य की देवी पार्वती पहले स्वत शिव के पास गयी थी। किन्तु तपस्या के कारण जब उनका सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तब शिव स्वय पार्वती के पास जाकर पार्वती के सौन्दर्य के सच्चे उपासक बनकर[2] स्वय विवाह की याचना करते है किन्तु पार्वती का सौन्दर्य व्यभिदरित नही होता है एक मर्यादा का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करता है।[3]

सौन्दर्य के परम उपासक कालिदास ने सौन्दर्य—वर्द्धक योषिदलङकारो की सुन्दर विवेचना की है। निर्विकारात्मक सत्व से उत्पन्न होने वाला प्रथम विकार रूप भाव[4] सौन्दर्य के पुष्प को सौरभमय बना देता है।

सा युनितस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाकशालीनतया न ववतुम्।
रोमाचलक्ष्येण सा गात्रयष्टि भित्वानिराक्रामदरालकेश्या ।। रघु ६/८१)

इन्दुमती के सात्विक मन मे अज के दर्शन से प्रथम विकार उत्पन्न हो रहा है। इसलिए उसके भाव ने उसके सौन्दर्य को सुरभित बना दिया है।

विवृष्वती शैलसुतापि भावभङ्गै स्फुरद्बालकदम्बकल्पै ।
साचीकृता चारूतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन।। कु स ३/६८

अपने विम्बाफल के समान अधर—पान के लिए ललचाये शिव नेत्र को देखकर पार्वती के मन मे विकार उत्पन्न हो गया अत उन्होने अपने हाव[5]

---

१ यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तदवच।
तथा हि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युदेशता गतम्।। कु स ५/३६
२ अयप्रभृत्यवनाड्गि तवास्मि दास क्रीतस्तपोभिरित वादिनि चन्द्रमौलो।। वही ५/२५ कु स
३ अथ विश्वात्मने गौरी सदिदेश मिथ सखीम्।
दाता मे भूभृता नाथ प्रमाणीक्रियतामिति।। कु स ६/१
४ निर्विकारात्मकात्सत्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया। द रू २/३३
५ भाव एव सलक्ष्यविकारो हाव उच्यते। सा द ३/६४

को जिस रूप मे अभिव्यक्त किया उसे कालिदास ही वाणी दे सकते है। विकसित कोमल कदम्ब के समान पुलकित अङगो से अपने प्रणय–भाव को अभिव्यक्त करती हुई पार्वती लजीली आखो से युक्त अपने मुख को तिरछे करके स्थित हो गयी। साचीकृत मुख की कल्पना ने शिव जैसे योगी के मन को क्षुब्ध कर दिया।

सौन्दर्य शोभा के द्वारा और आकर्षक हो जाता है। रूप उपभोग और तारूण्य के द्वारा अङगो को विभूषित होना शोभा है। पार्वती के सौन्दर्य के समक्ष श्रृङ्गार–प्रसाधन लज्जित हो जाते है।

ता प्राङ्मुखी तत्र निवेश्य वाला क्षण व्यलम्बन्त पुरो निषण्णा।
भूतार्थशोभाप्रियमाणनेत्रा प्रसाधने सन्निहितेऽपि नाथै।। कु स ७/१७

कालिदास ने पार्वती की कान्ति को लगभग बीस श्लोको मे मूर्तिमान रूप प्रदान किया है। कालिदास ने यद्यपि अलङ्कृत सौन्दर्य का भी वर्णन किया है किन्तु उनका सारा मानसिक प्रयास सहज सौन्दर्य को मूर्तिमान रूप देना है। रघुवश के अन्त मे कृत्रिम सौन्दर्य का वर्णन कर यह अभिव्यक्त किया है कि कृत्रिमता जीवन का अन्त है और स्वाभाविक सौन्दर्य जीवन का उल्लास है।

कालिदास की दृष्टि व्यापक है, इसलिए वे कभी चेतन के सौन्दर्य को अचेतन मे देखते है और कभी अचेतन सौन्दर्य को चेतन मे प्रतिबिम्बित करते है। अचेतन की चेतनता का दर्शन कालिदास की ही प्रतिभा कर सकती है। सन्ध्याकालीन पश्चिम दिशा उस कन्या के समान सुन्दर प्रतीत हो रही है जिसने अपने माथे पर केसर से भरे बन्धुजीव के पुष्प का तिलक लगा रक्खा हो।[१] कालिदास का चन्द्रमा ही रसिक नायक की भाति अपनी किरण रूपी उगलियो से रातरूपी नायिका के मुख पर फैले हुए अधेरी रूपी बालो

---

१ दूरलग्नपरिमेयरश्मिना वारूणी दिगरूणेन मानुना।
भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका।। कु स ८/४०

को हटाकर उसका मुख चूम रहा हो और रात भी उस चुम्बन का रस लेने के लिए नेत्र मूद कर बैठी हो।[1]

कालिदास ने प्रकृति और मानव को एक रूप मे ही देखते है। उनके मन मे भेद की कल्पना ही नही है। उनकी ऊषा सन्ध्या लता पुष्प झरना सरिता आदि मानव के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति रूप है। प्रकृति सौन्दर्य का सचेतन रूप है। उसका समग्र सौन्दर्य मानव की कल्पनाओ मे समाया हुआ है। कवि उसके सौन्दर्य को नवीनता प्रदान करने के लिएसतत प्रयास करता रहता है। सम्पूर्ण प्रकृति समग्र रूपात्मक सौन्दर्य की चेतनता की सृष्टि करती है। उसके विविध रूप केवल वाणी के विषय मात्र है, उसका पर्यवसान एक विराट् सौन्दर्य मे उसी प्रकार हो जाता है जैसे सम्पूर्ण भाव एक रस मे विलीन हो जाते हैं।

कालिदास ने सौन्दर्य—अभिवृद्धि के लिए अलङ्करण और प्रसाधन की भी विवेचना की है। इनके अलङ्करण प्रकृति के उपहार है। स्वर्ण, मुक्ता रत्न आदि को भी अलङ्कार के रूप मे स्वीकार करते है। इनके काव्यो मे अलङ्कारो की लम्बी सूची है। प्रसङ्ग के अनुकूल इनके पात्र अलकारो को धारण करते है। लेकिन इन अलकारो के प्रति कालिदास के मन मे गौरव नही है। उनका श्रृङ्गार श्रृङ्गार के लिए नही है वरन् सम्पूर्ण श्रृङ्गार की सार्थकता प्रिय को आकर्षित करने मे है। कालिदास के प्राय सम्पूर्ण प्रमुख नारी—पात्र अपनी तपस्या के उद्भूत सौन्दर्य के द्वारा ही प्रिय को अपने सौन्दर्य मे विलीन करते है।

कालिदास की लेखनी ने पुष्पमाल्य के आभरण से नारी—पात्रो को इस प्रकार अलङकृत किया है जिसे देखकर सौन्दर्य भी एक बार लज्जित हो सकता है। कवि की पार्वती के वसन्त—पुष्पो के आभरण रत्नो को श्री विहीन

---

१ अगुलीभिरिव केशसचय सन्निगृह्य तिमिर मरीचिभि ।
कुडमलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीष रजनीमुख शशी।। कु स ८/६३

करने वाले है। पद्मराग की शोभा को तिरस्कृत करने वाले अशोक–पुष्प स्वर्ण की पीतिमा को ललचाने वाले कर्णिकार के पुष्प और मोतियो के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले सिन्दुवार के पुष्पो से पार्वती अलङकृत रति को भी लज्जित कर दे रही है–

अशोकनिर्भर्त्सित्पदमरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम्।

मुक्ताकलीपीकृत सिन्धुवार वसन्तपुष्पाभरण बहन्ती।। कु स ३/५३

अलका की विलासिनिया हाथ मे लीला–कमल केशो मे कुन्द के पुष्प चूडा–पाश मे नवीन कुखक के सुमन कपोल देश पर लोघ्र–पुष्प के पराग कानो मे शिरीष–पुष्प और सीमन्त मे कदम्ब पुष्पो को धारण कर पुष्पसौरभ से सुरभित सौन्दर्य की वर्षा करती है–

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्ध

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री।

चूडापाशे नवकुरवक चारू कर्णे शिरीष

सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम्।। उ मे २

विदिशा नगरी की पुष्प–चयन करने वाली रमणियो के कमल–पत्र के बने कर्णभूषण की तो अद्वितीय शोभा है।[1] कालिदास को अशोक के नवीन पुष्प ही उनके प्रणय को उद्दीप्त करने वाले है वरन् सुन्दरियो के कणो मे आरोपित किसलय भी उनके मन को मदमत्त बना देते है।[2]

कवि की नायिकाए केशो को विभिन्न पुष्पो से अलङ्कृत करती है। विवाह के समय पार्वती के केश मधुक–पुष्पो से अलङ्कृत किये जाते है।[3] उनकी नायिकाओ के श्यामल कुन्तल की जूडा मालती पुष्पो से अलकृत की

१ गण्डस्वेदापनयनरूजाक्लान्तकर्णोत्पलाना।
छायादानात्क्षणपरिचित पुष्पलावीमुखानाम्।। पू मे १/२६

२ कुसुममेव न केवलमार्तव नवमशोकतरो स्मरदीपनम्।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिना मदयिता दयिताश्रवणार्पित।। रघुव ६/२८

३ पयाक्षिपतकाचिदुदारबन्ध दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना कु स ७/१४

जाती है और यही केश गोरे कपोल पर लटकते रहते है तब उसे लाल–लाल अशोक, पुष्पो से सजाये जाते है। पुष्पो के अतिरिक्त यवाकुर[1] पल्लव तमाल–दल, मृणाल वलय आदि प्राकृतिक अलङ्कारो से इनकी नायिका सौन्दर्य की चादनी को सुरभित बनाती है। कर्पूर कुमकुम अजन चन्दन अगरू कस्तूरी गोचना उबटन आदि से अलङ्कृत सौन्दर्य भी इन्हे प्रिय है।

स्वर्ण मणि मोती रत्न से निर्मित अलङकारो से सुसज्जित नायिकाओ का सौन्दर्य उसी प्रकार निखर उठता है जैसे पुष्प से सज्जित लताए तारो से अलङ्कृत निशा और रग–बिरगे पक्षियो से पूरित सरिता का सौन्दर्य जगमगा उठता है।

सा सम्भवदिभ कुसुमैर्लतेव ज्योतिभिरूद्यद्भिरिव त्रियामा।

सरिद्विहङ्गैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे।। कुस ७/२१

कालिदास के सभी अलङ्कार अलङ्कार के लिए है। ये अलङ्कार स्वाभाविक रूप से अलङ्कृत है। कालिदास के द्वारा प्रयुक्त सभी प्रकार के अलङ्करणो की विवेचना एक पुस्तक का निर्माण कर सकती है। अन्त मे यही कहा जा सकता है, कि कालिदास समष्टिगत सौन्दर्य के उपासक है। उनका समष्टिगत सौन्दर्य विश्वमूर्ति शिव है।[2] जिसे किसी प्रकार के अलङ्कार की आवश्यकता नही है। स्वाभाविक सौन्दर्य का आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जब चित् का भङ्ग–आवरण व्यापक सौन्दर्य मे विलीन हो जाय। इस विलीनता के लिए भावेकरसानुभूति की आवश्यकता है।[3]

कालिदास का काव्य–सौन्दर्य भारतीय सस्कृति की परिपूर्णता के निष्पादन मे है। ये यही चाहते है कि प्रेम ही स्त्री और और पुरूष को वाक् और अर्थ के समान एकाकार कर सकते है। इस प्रेम को पाने के लिए उनके

---

१ अरूणरागनिषेथिभिरशुकै श्रवणलब्धपदैश्च यवाकुरै। रघु ६/४३

२ विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखर न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु।। रघु ५/७८

३ ममात्र भावैकरस मन स्थित न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।। रघु ५/८२

सभी पात्र तपस्या के खड्गधार पर चलते है। प्रणय की उत्कर्षता तपस्या की पराकाष्टा मे ही प्राप्त की जा सकती है। सयमित जीवन के बीज से आनन्द वटवृक्ष की शीतल छाया प्राप्त की जा सकती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो मे यही कह सकते है कि– तपोवन मे सिह–शिशु के साथ नर–शिशु का जैसा क्रीडा–कौतुक है वैसे ही उनके काव्य–तपोवन मे योगी और गृही के भाव समन्वित है। काम की कारसाजी ने उस सम्बन्ध को विच्छिन्न करने की चेष्टा की थी। इसी से कवि ने उस वज्र–निपात करके तपस्या द्वारा कल्याणमय गृह के साथ अनासक्त तपोवन का पवित्र सम्बन्ध फिर से स्थापित किया है। कवि ने आश्रम की नीव पर गृहस्थधर्म का मन्दिर प्रस्तुत किया है और कामदेव के हठात् आक्रमण से नर–नारी के पवित्र सम्बन्ध का उद्धार करके उसे तप पूत औरनिर्मल योगासन के ऊपर प्रतिष्ठित किया है। भारतीय शास्त्रो मे स्त्री–पुरूष का सयत सम्बन्ध कठिन अनुशासन के रूप मे आविष्ट है और वही कालिदास के काव्यो मे सोन्दर्य के उपादानो से सुशोभित हुआ है। यह सौन्दर्य थी, ही और कल्याण से उद्भासित है गम्भीरता की ओर से नितान्त एकाकी और व्याप्ति की ओर से विश्व का आश्रयस्थल। यह त्याग से परिपूर्ण दु ख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निश्चित है। इसी सौन्दर्य से स्त्री–पुरुष के दुर्निवार और दुर्गम प्रेम के प्रलयकारी वेग ने अपने को सयत करके मगलरूपी महासमुद्र मे परमस्थिरता प्राप्त की है। इसी से यह सयत प्रेम बन्धनहीन दुर्घर्ष प्रेम की अपेक्षा महान और आश्चर्यजनक है।[1]

१ कालि ला यो पृ १५७
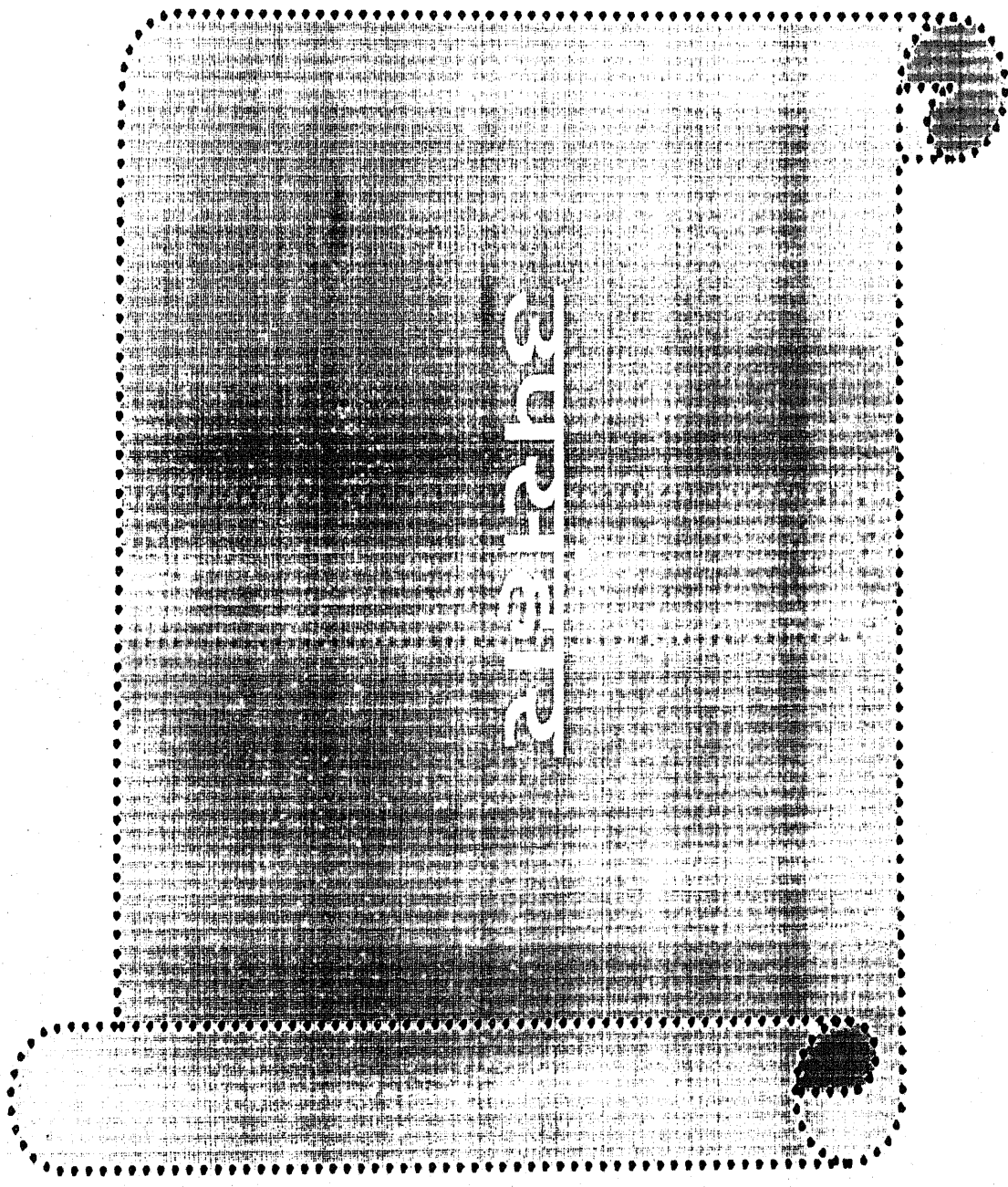
उपसंहार

उपसंहार

कालिदास ने पार्वती के सौन्दर्य के विषय मे जो बात कही है—

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेश विनिवेशितेन।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।। कु०स० १/४६

वही बात कालिदास की काव्य—प्रतिभा के सौन्दर्य के विषय मे कही जा सकती है। इनकी रचनाए स्रष्टा की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि नहीं तो और क्या है ? कालिदास की रचनाए सस्कृत साहित्य की ही सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं है वरन् विश्व—साहित्य इनकी रचनाओ की किरणो से आलोकित है। कालिदास की कविता की चॉदनी सुगन्ध वसुधा के कण—कण मे व्याप्त है। ऐसे कवि की रचनाओ का मूल्याङ्कन करना—

क्व? सूर्यप्रभवो वश क्व? चाल्पविषया मति।

तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम।। रघु १/२

को चरितार्थ करना है।

लेकिन 'मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति। रघु १/४ का अनुकरण कर मेरे द्वारा यह शोध—प्रबन्ध लिखा गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे पाश्चात्य और पौर्वत्य विद्वानो के द्वारा प्रतिपादित शैली—स्वरूप का अध्ययन करके उनका समन्वयात्मक रूप दिया गया है और उसी के माध्यम से कालिदास के ग्रन्थो—— रघुवश, कुमारसम्भव और मेघदूत की शैलीगत रूढियो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

कालिदास की रचनाओ मे सर्वत्र सौन्दर्य का उसी प्रकार विलास है जैसे परब्रह्म की सत्ता चराचर मे व्याप्त रहती है। कालिदास के काव्यो मे

विश्व की सम्पूर्ण कलाओ का सौन्दर्य परिव्याप्त है। इनके काव्य के पात्र यद्यपि ऐश्वर्य सम्पन्न है। किन्तु उनमे जो तप त्याग और मानवीय मूल्यो के प्रति आस्था है व उन्हे जल कमल सिद्ध करते है। उनका ऐश्वर्य अपने लिए नही है वरन् प्रजा और मानवता की रक्षा के लिए है। कालिदास का दिलीप नन्दिनी गौ की पत्नी सहित सेवा करता है और नन्दिनी की रक्षा के लिए अपना शरीर अर्पण करने के लिए तैयार है। रघु अकिचन रहने पर भी कौत्स के अपरमित स्वर्ण मुद्राए आदरपूर्वक देता है। युवक अज ही इन्दुमती के दिवगता हो जाने पर भी अपने विधुर यौवन को पुनर्विवाह के दलदल से मुक्त रखकर प्रजा के हित के लिए समर्पित कर देता है। कालिदास का पात्र राम विश्व का अद्वितीय इतिहास है। जो प्रजा को सुख देने के लिए अग्नि परीक्षिता गर्भवती पत्नी सीता को लक्ष्मण के द्वारा निर्वासित कर देता है। इनके काव्य का राजा प्रजा रजन की वलि–वेदी पर समर्पित होने के कारण ही राजा है।[१] यह अपने प्रजा के लिए पिता है वह अपनी प्रजा का भरण–पोषण तथा रक्षण कर सन्मार्ग की ओर ले जाता है।[२]

स पिता पितरस्तासा केवल जन्महेतव ।। रघु० १/२४

प्रजा प्रजानाथ! पितेव पासि।। रघु० २/४८

कालिदास का दाम्पत्य प्रेम शाश्वत प्रणय–सूत्र मे बधा हुआ है। वाक् और अर्थ के साहित्य का रहस्य स्त्री और पुरुष के शाश्वत प्रणय की कहानी है। राम से निर्वासित सीता भी घोर तपस्या के द्वारा दूसरे जन्म मे भी राम का ही सहचर्य चाहती है।[३] इनका प्रकृति–पुरुष शाश्वत सहचर्य का सौन्दर्य चेतन मे ही नहीं अचेतन मे भी व्याप्त है।[४]

---

१ राजा प्रकृतिरञ्जनात् रघु० ४/१२ "राजा प्रजारजनलब्धवर्ण' रघु ६/२१

२ प्रजाना विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तेसा केवल जन्महेतव ।। रघु १/२४

३ साऽह तप सूर्यनिविष्टदृष्टिरूध्वै प्रसूतेश्चरितु यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग ।। रघु १४/६६

४ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भा स्वयतरड०गाधरदानदक्ष
अनन्यसामान्यप्रवृत्ति पिवत्यसौ पाययते च सिन्धू। रघु १३/६

कालिदास की दृष्टि इतनी व्यापक है कि इनकी लेखनी भारतीय सस्कृति और आदर्शो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयो को उसी प्रकार चित्रित करती रहती है जैसे प्रकृति प्रत्येक सौन्दर्यात्मक उपादानो का मनोरम चित्र प्रस्तुत करती है। इस महान कवि के काव्यो मे प्रकृति की जितनी सुषमा विभिन्न प्रकार के चित्रो मे समायी हुई है। सम्पूर्ण भारत के प्रति कवि का प्रेम इतना अलौकिक है कि वहा भावना जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

सचारिणी पल्लविनी लता की भाति इनकी काव्यकला अपने भाव–पुष्पो के सौरभ से सम्पूर्ण वसुधा वसुधा के कण–कण मे अनुपम सौरभ विखेरती है। इनकी सस्कारवती[1] वाणी जीवन के प्रत्येक क्षण को सस्कृत बनाती रहती है। इनके काव्य के वर्ण पद वाक्य छन्द आदि एक लय और ताल मे आबद्ध होकर अलौकिक अर्थ को अभिव्यक्त करते है। उनके प्रत्येक वर्ण पद समास वाक्य आदि मे विश्वात्मा शिव का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता रहता है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे कालिदास के द्वारा अपने काव्य मे चयन किये गये प्रकृतिवर्णन रीति, रस छन्द अलडकार लोकोक्ति इस आदि के सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया गया है। इस कवि का प्राकृतिक सौन्दर्य मानव सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए चित्र के सुन्दर रगो का काम करता है। उनके काव्य का सौन्दर्यात्मक रूप अत्यन्त महनीयता को प्राप्त है। कालिदास विधाता से भी श्रेष्ठ कलाकार है। इसीलिए इनकी कल्पना ने जिस सौन्दर्य की सर्जना की है वह विधि की अखिल सृष्टि मे उपलब्ध नहीं होती है।

वस्तुत इनकी कविता का सौन्दर्य विश्वमूर्ति शिव का सौन्दर्य है, जो प्रत्येक अवस्था मे शाश्वत सौन्दर्य से युक्त है।[2]

---

१ सस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।, कु स १/२८

२ विभूषणोद्भासि पिनद्धयोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखर न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु ।। कु स ५/७८

उनके काव्य उन्हे राष्ट्रीय कवि के पद पर सुशोभित करते है। तीनो काव्यो[1] के माध्यम से उन्होने सम्पूर्ण भारत का चित्र प्रस्तुत किया है। उनका हिमालय—वर्णन उनके राष्ट्र—प्रेम का गौरव मय रूप है। कवि ने त्रिवेणी के सगम का जैसा चित्र खीचा है वह उनके सात्विक चित्त की प्रतिमूर्ति है।[2] भारत के स्थल भाग लता—कुज वृक्ष वन पर्वत गुफा निर्झर नदी समुद्र आदि सभी अचेतन तत्व उनके लिए चेतन प्रतीत होते है। इनके वर्णन को देखकर यही प्रतीत होता है कि कवि की आत्मा भारत के कण—कण मे बसती है। कालिदास गृहस्थ जीवन के सभी पक्षो की विधिवत विवेचना करते है। उनकी दृष्टि मे पत्नी केवल भोग की वस्तु नहीं है वरन् गृहणाी सचिव सखी आदि सब कुछ है।[3] पत्नी का एक क्षण का वियोग भी कालिदास को सह्य नहीं है।[4] बिना पतिव्रता पत्नी के ग्रहस्थ का कोई भी कार्य पूर्ण नही होता है।[5] कालिदास स्त्री और पुरुष मे भेद मानते ही नही । इस तथ्य को इन्होने अपने काव्य के माध्यम से चरितार्थ कर दिया हे। सक्षेप मे कालिदास के काव्य भारतीय सस्कृति और कला की अक्षय निधि है।

१ द्र० रघु० ६/३५, ४३ ६/२४–४७ १३/३३–४६ / ५० मे० कु०स० प्रथम सर्ग।

२ रघुव० १३/५४–५७

३ गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ। रघु ८/६७

४ *मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता* विप्रयोग । उ मे ५८

५ क्रियाणा खलु धर्म्याणा सपत्न्यो मूलकारणम् कु०स० ६/१३

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की सूची

क आधारभूत रचनाए

१ रघुवश कालिदास – निर्णयसागर प्रकाशन १९४८

२ कुमारसम्भव – कालिदास – कलकत्ता, स १९२५

३ मेघदूत – कालिदास – चौखम्भा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी १९५३

ख आलोचनात्मक ग्रन्थ

१ अभिनवभारती, अभिनवगुप्त – भूमिका लेखक डा नगेन्द्र

२ अभिज्ञानशाकुन्तलम् – कालिदास – डा कपिलदेव द्विवेदी

३ औचित्यविचारचर्चा – क्षेमेन्द्र – मोतीलाल बनारसीदास १९६०

४ काव्यप्रकाश – मम्मट ओरियण्टल सीरीज पूना १९२१

५ काव्यमीमासा – राजशेखर – विहार राष्ट्रभाषा परिषद् प्रकाशन

६ काव्यादर्श – दण्डी – चौ०स०सी० वाराणसी

७ काव्यालङकार – रुद्रट, चौ वि भवन वाराणसी १९६४

८ काव्यालङकार – दण्डी , चौ०, वि०, भवन वाराणसी १९७२

९ काव्यालङकार सूत्र–वृत्ति – वामन, आत्माराम एण्ड सस, काश्मीरीगेट दिल्ली ६१

१० कालिदास ग्रन्थावली – सीताराम चतुर्वेदी भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ २०/९

११ कालिदास की लालित्य योजना–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नैवेद्य निकेतन वाराणसी १९६५।

१२ ध्वन्यालोक– आनन्दवर्धन व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर प्रकाशन ज्ञानमडल लिमिटेड वाराणसी।

१३ नाट्यशास्त्र – भरतमुनि – गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बडौदा।

१४ निरुक्त – यास्क – खेमराज कृष्णदास मुम्बई स १८८२

१५ नैषधीयचरितम् – श्रीहर्ष – प्रकाशन – मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी।

१६ पाश्चात्य काव्यशास्त्र – डा कृष्णदेव शर्मा

१७ भारतीय काव्यशास्त्र – बलदेव उपाध्याय ।

१८ नैषधीय महाकाव्य – श्रीहर्ष निर्णय सागर १६१६।

१६ बालरामायण – राजशेखर – गीताप्रेस गोरखपुर।

२० महाभाष्य – पतञ्जलि – मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरीज १६४२

२१ रसगङगाधर – पण्डितराज जगन्नाथ चौ०वि०भ० वाराणसी।

२२ रीतिविज्ञान – डा० विद्या निवास मिश्र प्रथम सस्करण।

२३ वक्रोक्ति जीवितम्– कुन्तक व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी १६६७

२४ वृहदारण्यक उपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर १६७०

२५ ध्वन्यालोक – दीक्षित – चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी १६६४

२६ शैली विज्ञान – डा भोलानाथ तिवारी।

२७ शैली विज्ञान – डा० नगेन्द्र – नेशनल पत्लिशिग हाउस नई दिल्ली।

२८ शैली विज्ञान – सुरेश कुमार

२६ शैली विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका – रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव १६७२

३० शैली और शैली विज्ञान – केन्द्रीय हिन्दी सस्थान, आगरा १६७६

३१ सरस्वती कण्ठाभरण – भोजराज व्याख्याकार डा० कामेश्वरनाथ चौ०वि०भ० वाराणसी।

३२ सस्कृत काव्यशास्त्र – एस०के०डे०

३३ सस्कृत साहित्य का इतिहास – कीथ, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी।

३४ सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय – शारदा निकेतन, वाराणसी।

३५ सस्कृत साहित्य का इतिहास, डा कपिल देव द्विवेदी ।

३६ सुवृत्ततिलक – क्षेमेन्द्र – मो० ला० बनारसीदास वाराणसी।

३७ हर्षचरित – वाणभट्ट

३८ साहित्यदर्पण – विश्वनाथ चौखम्भा, विद्याभवन वाराणसी स० २०१४

ग अग्रेजी गन्थ-

१ एन एप्रोच टू दी स्टली आफ स्टाइल–स्पेसर १६६४

२ स्टाइल – वाल्टर रेले

३ स्टाइल – एफ एल लुक्स

घ कोश -

१ अमरकोश – निर्णयसागर १६१५

२ एन साइक्लोपीडिया विट्रोनिका

३ सस्कृत इग्लिश डायरी – वी एम आप्टे

४ हिन्दी साहित्य भाषा कोश – डा० राजवश सहाय हीरा

५ सस्कृत साहित्य कोश – डा आदित्येश्वर कौशिक